

अग्नि ज्वाला

मनोज पाण्डेय

प्रकाशकः

ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान

ब्रह्मपुरा मिर्जापुर उत्तर प्रदेश

भारत

वितरक

ज्ञान विज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान

वैदिक विश्वविद्यालय

ब्रह्मपुरा

प्रथम संसकरण

इलेक्ट्रानिक 2018

मुल्यः - 75.00

सम्पर्क सुत्रः-

0 9467557954

Email manojpandey94@yahoo.com

Email gyanviegyanbrhamgyan98@gmail.com

अग्नि ज्वाला

विषय सुचि

प्रस्तावना

आज के आधुनिक समय में जब कम्प्युटर, मोबाइल और इन्टरनेट कि महत्त्वकांक्षा अत्यधिक बढ़ चुकी है, लोगों का इसके बिना आज आधुनिक युग में के जीना असंभव-सा प्रतित हो रहा है। एक प्रकार से आज लोगों का जीवन काफी हद तक इन संसाधनों पर निर्भर-सा हो गया है और हर व्यक्ति अपने ज़रूरत कि सभी जानकारियों के लिये व्यापार के लिये या किसी प्रकार कि ज्ञान कि जिज्ञासा को शान्त करने के लिये भी इस मोबाईल, कम्प्युट का भरपुर सहयोग ले रहा है और इसका हर एक क्षेत्र में प्रयोग है रहा है धड़ल्ले से, एक तरफ इसकी व्यापकता के साथ अत्यधिक विस्तार हो रहा है। जिसके कारण सभी प्रकार कि भौतिक दूरिया कम हो रही है, मनुष्य ने पृथ्वी के सिमा को पार करके अपने पैर अंतरिक्ष और सूदूर दूसरें मंगल, चादादि ग्रहों पर अपने पैर जमाने के लिये भर सक प्रयास रत है और इसके विपरित इसके कारण होने वाले विकार से हमारे समाज को बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ रहा है। जैसा कि हम सब जानते है कि किसी भी वैज्ञानिक खोज का शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के परिणाम भी आते है जिनसे बचने का उपाय भी तलासना पड़ता है, जिस प्रकार से सूर्य कि गर्मी पृथ्वी के सभी प्राणियों को ना मिले तो उनाक जीवन यहाँ पर रहना संभव नहीं है और यदि अधिक गर्मि सूर्य से मिलने लगे तो भी जीना बहुत कठिन है। दोनों स्थित में सबसे अधिक खतरा जीवन को ही उठाना पड़ेगा। सूर्य को इससे कोई नुकसान नहीं है, जिस प्रकार से चाकु तरवुज पर गिरे या तरवुज चाकु पर गिरे नुकसाना या कटना तो तरवुज को ही है। चाकु का नुकसान नहीं होगा। इसी प्रकार से इन सभी आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का मानव जीवन में अत्यधिक समावेश होने का कारण और जब इनका कोई सिमित दायरा नहीं है। और यह जब संतुलन के अस्तर से अधिक हो कर मानव को अपने जालिम पंजों में फंसा लेती है। तो उसके दुस्परिणाम भी सामने आने लगते है। जैसे समाज में भयंकर हिंशा उपद्रव, मानशिक अशान्ति और प्रत्येक प्रकार के आन्तरिक सद्‌गुणों का लोप हो रहा है। लोगों के अन्दर के जगत के परम आनन्द से अत्यधिक दूर निरंतर होते जा रहे है। जिसके कारण ही समाज में अत्यधिक अज्ञान का प्रचार प्रसार बढ़ रहा है। आधुनिकता के नाम पर लोग पशुओं के समान जीवन जीने के लिये निरंतर अग्रसर किया जा रहा है। लोगों का झुकाव दिन प्रतिदिन चारित्रिक पतन कि तरफ बढ़ रहा है। जीवन में सदाचार भक्ति भावना सद्‌गुणों का आभाव होता जारहा है। सारे रिस्ते, नाते, सम्बंध प्रेम भाव का आभाव और सम्बंध टुट कर एकांगी जीवन में परिवर्तित होते जा जारहे है। लोगों कि गोपनियता समाप्त हो रही है, लोगों में भरोशा विश्वास के भावों का आभाव तिब्रता से हो रहा है। लोग इनके अस्थान पर नशें का शिकार और अनेक प्ररकार कि उच्छृखलता और स्वछन्दता को अपना आधार बना रहें है। जिसके के कारण सब कुछ जीवन का जो मुख्य आधार है। वह सब विखर रहा है। प्रेम, करुणा, दया, स्नेह, सहानुभुति, आस्था दैविय शक्तियों के प्रति अविश्वास जिसके कारण अस्थान-अस्थान पर निरंतर वैमनस्यता का ही विस्तार हो रहा है। यह सब एक प्रकार कि ऐसी असाध्य विमारियाँ है जिसका इलाज आज के आधुनिक विज्ञान और उसके द्वारा उतपन्न संसाधनों के द्वारा संभव नहीं प्रतित हो रहा है। इन सब का समाधान हमारें पुरुषों ने बहुत पहले ही हम सब को सुझाया है, जैसा कि हमारी संस्कृति के मुख्य आधार भुत स्तम्भ वेद, वेदांङ्ग, उपनिषद, दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराणादि जो हमारी मानविय संवदनावों को समझने वालों ने,

मानव जाती के कल्याण के लिये कठिन तपस्या और साधना से ज्ञान अज्ञान में अन्तर करने के लिये निश्चित किया है। और हम सब लोगों के जीवन को सुन्दर, सुरम्य और आनन्दपूर्ण बनाने के लिये ही, इन नैतिक विचार और नैतिक सद्‌गुणों के उद्भव विस्तार से ही किसी भी प्राणि का कल्याण संभव है। उसके प्रति लोगों का ध्यान आकर्सित हो और लोगों के जीवन में सूमधुरता आयें। इस प्रयोजन के लिये यह सारे मार्ग हमारे महापुरुषों नें हमें सुझाये है। आज ज़रूरत आगई है कि हम सब उनके सुझाये मार्ग का अनुसरण करें और उसको हृदयंगम करके जीवन को सउन्नत करे, और हर प्रकार उत्थान के लिये अग्रसर हो और अपने जीवन कि उन समस्या का समाधान प्राप्त करें जिनका समाधान विज्ञान के पास नहीं है।

मनोज पाण्डेय,

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर हरयाण, भारत

भूमिका

भारत बहुत प्राचीन एवं विविधताओं से भरा देश है। भारत में हर धर्म के लोग निवास करते है यहाँ बहुधर्मी लोगो की कमी नहीं है। इसलिए भारत सबसे प्राचीन और महान देश है। लेकिन क्या आप जानते है? आज हम जिस भारत को देखते हैं अतीत में भारत ऐसा नहीं था। भारत बहुत विशाल देश हुआ करता था। ईरान से लेकर इंडोनेशिया तक सारा भारत ही था, लेकिन समय के साथ-साथ भारत के टुकड़े होते चले गये जिससे भारत की संस्कृति का अलग-अलग जगहों में बटवारां हो गया। आज हम आपको उन देशों को नाम बतायेंगे जो कभी भारत का हिस्सा हुआ करते थे।

बता दें सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीन भारत की सीमाएं विश्व में दूर-दूर तक फैली हुई थीं। भारत ने राजनीतिक आक्रमण तो कहीं नहीं किए परंतु सांस्कृतिक दिग्विजय अभियान के लिए भारतीय मनीषी विश्वभर में गए। शायद इसीलिए भारतीय संस्कृति और सभ्यता के चिन्ह विश्व के अधिकतर देशों में मिलते हैं। आज हम आपको बता रहे हैं कि हमारा प्राचीन सांस्कृतिक भारत कहां तक था।

1. ईरान – ईरान में आर्य संस्कृति का उद्भव 2000 ई. पू. उस वक्त हुआ जब ब्लूचिस्तान के मार्ग से आर्य ईरान पहुंचे और अपनी सभ्यता व संस्कृति का प्रचार वहां किया। उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम आर्याना पड़ा। 644 ई. में अरबों ने ईरान पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। 2. कम्बोडिया – माना जाता है कि प्रथम शताब्दी में कौंडिन्य नामक एक ब्राह्मण ने हिन्द-चीन में हिन्दू राज्य की स्थापना की। इन्हीं के नाम पर कम्बोडिया देश हुआ। हिन्द-चीन ने मिलकर यहां खमेर साम्राज्य की स्थापना की थी। यह भी माना जाता है कि भारतीय राज्य कम्बोज के उपनिवेश के रूप में कम्बोडिया की स्थापना हुई थी। कम्बोडिया को पहले कंपूचिया और उससे पहले कम्बोज के नाम से जाना जाता था, यह दक्षिण-पूर्व एशिया का एक प्रमुख देश है। पहले यह हिन्दू राष्ट्र था, अब बौद्ध राष्ट्र है। लगभग 600 वर्षों तक फूनान ने इस प्रदेश में हिन्दू संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार करने में महत्वपूर्ण योग दिया, तत्पश्चात इस क्षेत्र में कम्बुज या कम्बोज का महान राज्य स्थापित हुआ। 3. वियतनाम – वियतनाम का पुराना नाम चम्पा था। दूसरी शताब्दी में स्थापित चम्पा भारतीय संस्कृति का प्रमुख केंद्र

था। यहां के चम लोगों ने भारतीय धर्म, भाषा, सभ्यता ग्रहण की थी। 1825 में चम्पा के महान हिन्दू राज्य का अन्त हुआ। 4. मलेशिया – प्रथम शताब्दी में साहसी भारतीयों ने मलेशिया पहुंचकर वहां के निवासियों को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित करवाया। कालान्तर में मलेशिया में शैव, वैष्णव तथा बौद्ध धर्म का प्रचलन हो गया। 1948 में अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो यह सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य बना। 5. इण्डोनेशिया – इण्डोनिशिया भी किसी समय में भारत का एक सम्पन्न राज्य था। आज इण्डोनेशिया में बाली द्वीप को छोड़कर शेष सभी द्वीपों पर मुसलमान बहुसंख्यक हैं। फिर भी यहाँ के लोग हिन्दू धर्म एवं हिन्दू देवी–देवताओं से से जुड़े हुए है एवं हिन्दू संस्कृति का निर्वहन कर रहे है। इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता जाने वाले यात्रियों के लिए उत्तर–पश्चिम तट पर स्थित शहर के बीचोंबीच भव्य निर्मित अनेक घोड़ों से खिंचने वाले रथ पर श्री कृष्ण–अर्जुन की प्रतिमा सर्वाधिक आकर्षित करने वाली है। इस शहर में जगह–जगह आपको हिंदू स्थपत्य कला का दर्शन होता रहेगा। वहीं इंडोनेशिया में पांच बड़े–बड़े हिंदू मंदिर भी हैं। भारत के भगवान राम और अन्य कई देवताओं की मूर्तियां या मंदिर आपको सहज ही मिल जाएंगे जो की इंडोनेशिया को भारत की संस्कृति से कहीं न कहीं जोडऩे का कार्य करते हैं। 7. फिलीपींस – फिलीपींस में किसी समय भारतीय संस्कृति का पूर्ण प्रभाव था पर 15 वीं शताब्दी में मुसलमानों ने आक्रमण कर वहां आधिपत्य जमा लिया। आज भी फिलीपींस में कुछ हिन्दू रीति–रिवाज प्रचलित हैं। 8. अफगानिस्तान – अफगानिस्तान 350 इ.पू. तक भारत का एक अंग था। सातवीं शताब्दी में इस्लाम के आगमन के बाद अफगानिस्तान धीरे–धीरे राजनीतिक और बाद में सांस्कृतिक रूप से भारत से अलग हो गया। 9. नेपाल – नेपाल विश्व का एक मात्र हिन्दू देश है, जिसका एकीकरण गोरखा राजा ने 1769 ई. में किया था। पूर्व में यह प्राय: भारतीय राज्यों का ही अंग रहा।

10. भूटान – प्राचीन काल में भूटान भद्र देश के नाम से जाना जाता था। 8 अगस्त 1949 में भारत–भूटान संधि हुई जिससे स्वतंत्र प्रभुता सम्पन्न भूटान की पहचान बनी। 11. तिब्बत – तिब्बत का उल्लेख हमारे ग्रन्थों में त्रिविष्टप के नाम से आता है। यहां बौद्ध धर्म का प्रचार चौथी शताब्दी में शुरू हुआ। तिब्बत प्राचीन भारत के सांस्कृतिक प्रभाव क्षेत्र में था। भारतीय कांग्रेसी नेताओं की अदूरदर्शिता के कारण चीन ने 1957 में तिब्बत पर कब्जा कर लिया। 12. श्रीलंका – श्रीलंका का प्राचीन नाम ताम्रपर्णी था। श्रीलंका भारत का प्रमुख अंग था। 1505 में पुर्तगाली, 1606 में डच और 1795 में अंग्रेजों ने लंका पर अधिकार किया। 1935 ई. में अंग्रेजों ने लंका को भारत से अलग कर दिया। 13. म्यांमार (बर्मा) – अराकान की अनुश्रुतियों के अनुसार यहां का प्रथम राजा वाराणसी का एक राजकुमार था। 1852 में अंग्रेजों का बर्मा पर अधिकार हो गया। 1937 में भारत से इसे अलग कर दिया गया। 14. पाकिस्तान – 15 अगस्त, 1947 के पहले पाकिस्तान भारत का एक अंग था। हालांकि बटवारे के बाद पाकिस्तान में बहुत से हिन्दू मंदिर तोड़ दिये गये हैं, जो बचे भी हैं उनकी हालत बहुत ही जर्जर है। बांग्लादेश – बांग्लादेश भी 15 अगस्त 1947 के पहले भारत का अंग था। देश विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान के रूप में यह भारत से अलग हो गया। 1971 में यह पाकिस्तान से भी अलग हो गया। इसके अलावा भारतीय संस्कृति चीन, जापान, मंगोलिया, लाओस, हॉन्गकॉन्ग, ताइवान, मकाउ, सिंगापुर, दक्षिण कोरिया एवं उत्तर कोरिया सहित विश्व के अनेकों देशों में फैली हुई थी। बौद्ध धर्म विश्व का दूसरा सबसे बड़ा धर्म है और इस धर्म का जन्म ई.पू. छठी शताब्दी में भारत में हुआ था।

''विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रंधया शासद व्रतान्।" यह ऋग्वेद का मंत्र 1/51/8 है तथा 'उत शूद्र उतार्ये।' यह अथर्ववेद का प्रमाण है। कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुषों का और इन से विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकु, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है। जब वेद ऐसे कहता है, तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। और देवासुर संग्राम में आर्यावर्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि, हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु-मलेच्छ-असुरों का जो युद्ध हुआ था, उसमें देव अर्थात् आर्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने को सहायक हुए थे। (अर्जुन व दशरथ के काल अलग अलग होने से यह भी सम्भावना लगती है कि यह देवासुर संग्राम अनेक बार हुआ)। इससे यही सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान, देश में मनुष्य रहते हैं, उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब जब हिमालय प्रदेशस्थ आर्यों पर (विदेशी दस्यु व असुर) लड़ने को चढ़ाई करते थे, तब तब यहां के राजा-महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्यों के सहायक होते। और जो श्री रामचन्द्र जी से दक्षिण में युद्ध हुआ है, उसका नाम देवासुर संग्राम नहीं है, किन्तु उस को राम-रावण अथवा आर्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं। किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा है कि आर्य लोग ईरान से आये और वहां के जंगलियों को लड़कर, विजय पा के, निकाल के, इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का (पक्षपात से पूर्ण) लेख माननीय कैसे हो सकता है? (अर्थात् नहीं हो सकता)। महर्षि दयानन्द ने अपने वचनों में सृष्टि की आदि में मनुष्य की उत्पत्ति के स्थान को तिब्बत बताया है। अन्य प्राचीन प्रमाणों से भी यही स्थान सिद्ध होता है। इसके लिए विख्यात विद्वान स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी की पुस्तक 'आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता' पठनीय है। महर्षि दयानन्द जी ने अंग्रेजों की इस मिथ्या मान्यता का भी सप्रमाण प्रतिवाद कर दिया है कि आर्य इस आर्यावर्त्त के मूल निवासी नहीं हैं। उनके अनुसार आर्य किसी अन्य देश में आकर यहां आर्यावर्त्त भारत में नहीं बसे अपितु सृष्टि की आदि में, जब पूरा भूलोक व पृथिवी खाली पड़ी थी, तिब्बत से सीधे यहां आकर बसे व इसको उन्होंने ही बसाया था। अंग्रेजों ने जो आर्यों के ईरान व अन्य किसी देश से आने की मान्यता प्रचलित थी, उसके पीछे उनका निजी स्वार्थ था। वह यह प्रचारित करना चाहते थे कि जिस प्रकार हम विदेशी हैं उसी प्रकार से वर्ण व आश्रम धर्म-व्यवस्था को मानने वाले आर्य भी हैं। महर्षि दयानन्द का अंग्रेजों की इस स्वार्थपूर्ण मान्यता का सप्रमाण खण्डन उनकी ऐतिहासिक तथ्यों पर सूक्ष्म तथ्यात्मक दृष्टि व दूरदर्शिता सहित देशहितैषी होने का प्रमाण है। हम आशा करते हैं कि लेख के पाठक महर्षि दयानन्द के दोनों ही निष्कर्षों से सहमत होंगे। आवश्यकता इस बात की है कि महर्षि दयानन्द की मान्यता का डिन्डिम घोष से प्रचार व प्रसार हो और भारत सरकार इस तथ्यात्मक मान्यता को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल कर न्याय करे।

मनोज पाण्डेय

1-मैं कल्याण कारक अग्नि हूं

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम। होतारं रत्नधातमम्॥ ऋग्वेद 1.1

यह ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है, इसमें जो मुख्य उपदेस परमेश्वर कर रहा है, वह परमेंश्वर कह रहा है कि मैं स्वयं अग्नि के समान या फिर जितने प्रकार कि अग्नी है, उन सब का मैं मुल हूं। मुझे तुम जानों मैंने इस जगत में सब कुछ अग्नि से ही बनाया है। जो मेरे गुणों से ओत प्रोत है और जो भयंकर ज्वलन शील है। यह सब दृश्यमय जगत साक्षात अग्निकुण्ड है। जिसमें मैं तुम सब प्राणियों कि आहुति दे रहा हूं, तुम्हारा जन्म और मृत्यु का उद्देस्य केवल एक ही है। भष्म होना मैंने तुम्हारा निर्वाण भष्मों से ही किया है और तुम्हें भष्म में ही मिल जाना है। यही साश्वत सत्य है कालजई ज्ञान है। इसको तुम्हें धारण करना है, तुम्हे भी इस यज्ञ को करते हूए अपने जीवन को व्यतित करना है, अपने जीवन की परवाह ना करके इस यज्ञ की अग्नि को हमेंशा प्रज्वलित ही रखना तुम्हारा परम कर्तव्य है। मैं अग्नि स्वरूप मेरे अनन्त रूप है, एक भौतिक अग्नि, एक दैविक अग्नि, एक आध्यात्मिक अग्नि। यह तिन प्रकार की मुख्य अग्नि को जानों, मैं तुम में हूँ तुम मुझमें हो हम तुम एक है। यह तुम्हारे सामने अग्नि का साक्षात रूप संसार के सत्य को जानने से ही होगा। यह संसार ही तुम्हारी शरीर है। यह शरीर ही यह पृथ्वि है, यह तुम्हारी शरीर ही ज्वलन शील ब्रह्माण्ड के समान है। तुम मेंरी कामना करों मुझे ही चाहों मुझमें ही तुम्हारा ध्यान हो, मेरे अतिरीक्त तुम्हार ध्यान हमेसा तुम्हे केवल अतृप्त करने वाला होगा और तुमको जलाने वाला ही होगा। मैं ही सब प्रकार के श्रेष्ठ सब ऐश्वर्यों का मुख्य केन्द्र बिन्दु ईश्वर हूं। तुमने सब कुछ प्राप्त कर लिया यदि मुझको नहीं प्राप्त किया, तो तुम्हारा सब कुछ पाना ऐसे ही है, जैसे तुमने अपनी आत्मा का तो त्याग कर दिया और अपने शरीर रुपी राख कि भष्म को एकत्रित कर के संजो कर रख लिया है। जागों होश में आओं मैं तुम्हे पुकार रहा मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। तुम्हे हमारी ज़रूरत है, हम तुम एक दूसरे के पुरक है। इस संसार रुपी अग्नि कुण्ड में भष्म होने से पहले तुम मुझसे आ मिलो। जिससे ही तुम्हारा और तुम्हारे नगर रूपी देश और शरीर रूपी पुर का कल्याण होना निश्चित है। यह सब यज्ञ के समान कृत्य हमारे द्वारा ही हो रहा किया जा रहा है। इस कृत्य से तुम भाग नहीं सकते हो, इसमें तुमको मेरा सहयोग मेरा साथ देना है। इसके लिये ही मैंने तुमको अग्नि मय बनाया है और अग्निमय ज्वलनसील संसार में तुमको झोक दिया है। जिस प्रकार सोने को आग में डाल देते है, उसे तपा कर शुद्ध करने के लिये, उसी प्रकार से तुम्हारा शुद्ध रूप मैं ही हूं। सबसे बड़ा तपस्वी जिससे कारण ही इस तप से ही इस विश्व ब्रह्ममाणंड को धारण किया है। केवल तुम मेरे सहारे मेरी उंगली पकड़ कर ही तुम इस आग के समुद्र के समान भव सागर को तर सकते हो। जब तुम तपस्वी बनोगें क्योंकि यहा सब कुच तप से ही आच्छादित किया गया है। इसके अतिरीक्त कोई दूसरा मार्ग मैंने तुम्हे निकले का इस संसार रूपी शरीर से बनाया ही नहीं है। इसी हमारे बताये गये मार्ग का अनुसरण करके ही तुमसे पहले जितने भी ज्ञानी, विद्वान, योगी, रहस्यदर्शी, साधु, संत, महात्मा, महापुरुष हुए है और जो तुम्हारे बाद होगें, आगें भी इस भूमंडल पर वह भी मेरे द्वारा नियत मार्ग पर चल कर हि मुझ तक पहूंच सकते है। ऐसा ही सभी देवताओं ने भी किया है और इसी प्रकार यज्ञ के समान कार्य को करते हुए, उन्होंने अपनी मृत्यु को भी जीत लिया है। अर्थात वह सब काल को भी जित लिया है, सब के सब अमर हो चुके है। जिसका प्रमाण यह सूर्य और पृथ्वी आज भी दे रहे है। यह सब उन देवताओं का ही प्रताप है, जिसके कारण ही जगत आज सत्य के अलौकिक अद्‌भुत आनन्द से भावबिभोर हो रहा है। जिसकी कुछ बुदें ओश कि तरह तुम्हारे जीवन में भी टपक रही है और उनके द्वारा उपार्जित पुरुषार्थ के द्वारा हि तुम सब आज रत्नों को धारण कर रहे हो, इस सारे रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न तो मैं ही मुझको छोड़ कर तुम सब कंकड़ पत्थर को ही प्राप्त कर सकते हो। वह तुम्हारें लिये शिवाय भार के और क्या है?

मैं ही सब ब्रह्माण्डों को गती देने वाला अग्नि स्वरूप और सभी प्राणियों की उन्नति का साधक, सबसे अग्रणी, सारे ऐश्वर्यों का उत्पादक ईश्वर हूं। तूम अपने कृत्यों के द्वारा जाने अन्जाने में हर प्रकार से मेरी ही संरक्षण में रहते हो। मुझसे ही कामना करते हो और मुझसे ही तुम सब कुछ प्राप्त करते हो, मेरी ही उपासना के द्वारा तुम धारणा ध्यान समाधि में तुम लिन होते हो और अपने जीवन की सारी समस्यायों का समाधान प्राप्त करते हो। मैं ही तुम्हारी सारी मंजीलो का आधार भूत केन्द्र हूं। जो पहले से हि रखे हुए है, अर्थात जो इस श्रृष्टि के बनने से पहले हि विद्यमान है। मैं जो कभी ना बनता हू ना हि बिगड़ता हूं। मैं स्वयं भू अपने आप होने वाला हूँ और तुम सब जीवों का परम आदर्श रूप से तुम सब में अदृश्य रूप से विद्यमान तुम सबका अन्तर्यामी हूं। तुम्हारा परम जीवन उद्देश्य है कि तुम सब हमारे अनुकूल बनों, ऐसा नहीं है कि तुम हमारे प्रतिकुल बन सकते हो, यद्यपि सत्य तो यह कि तुम सब जीव जब प्रकृति के संसर्ग में आते हो तो तुम्हारा अधिकतर साक्षात्कार प्राकृतिक तथ्यों से ही होता है। जिसके कारण ही तुम सब का झुकाव प्रकृति की तरफ अधिक होता है। तुम सब जीवों का मैं परमेश्वर तुम्हारी स्वेच्छा पर ही मैं तुम सब के लिये उपलब्ध होता हूं। मैं तुम्हारे कर्तव्य कर्मों का निर्धारण करने वाला हूं और तुम सब का अग्रणी नेता तुम सब मेरे द्वारा बताये गये मार्ग से चलकर इन वेद वाणियों के साक्षात्कार से ही, तुम मुझ तक पहुच सकते हो और अपने प्रत्येक कर्मों का निर्धारण करके ही उस कर्म के अनुरूप शुभ और अशुभ कर्मों के फलों के भोक्ता तुम बन सकते हो। जिसके फलस्वरूप ही तुम सब आत्मा के लिये बहु उपयोगी मानव शरीर रूपी रत्न या कोई और अशुभ शरीर जो तुम्हारे लिये पिड़ा और दुःख कारण तुम्हारी परतंत्रता पशुआदि शरीर या किड़े मकौणे कि शरीर को धारण करते हो। क्योंकि तुम सब कर्म करने में स्वतंत्र हो फल में तुम्हारी स्वतन्त्रता नहीं है।

इस आग का आभाश तुम अपने जीवन के प्रत्येक दिन में कर सकते हो। यहा संसार में हर आदमी जल रहा है, आदमी चलता फिरता ज्वालामुखि के समान है। कोई काम की अग्नी से जल रहा है, तो कोई क्रोध के अग्नि से जल रहा है, कोई ईर्श्या और द्रोह कि अग्नि में जल रहा है। कोई पाप कि अग्नि में जल रहा है। तो कोई पुण्य कि अग्नि में जल रहा है, हर व्यक्ति यहाँ जल रहा है और वह तब तक जलता रहेगा जब तक कि उसकि शरीर उस अग्नि को बर्दास्त करने के अयोग्य नहीं हो जाती है। यह अग्नि जब सार्थक दिशा में बहती है। तो तुम्हारा कल्याण करती है, जिस प्रकार से गृहों में जब तक आग नियंत्रत रहती है। तब तक तुम्हारा सबसे श्रेष्ठ दास है और जब यह अनियंत्रित हो जाती है, तो यह बहुत खतरनाक स्वामी बन जाती है। इसमें उस समय हर प्रकार के दोष आ जाते है, जो तुम्हारा हर प्रकार से अकल्याण करने के लिये पर्याप्त होती है। जिस प्रकार से परमाणु से विद्युत प्राप्त कर सकते हो और अपने जीवन के प्रत्येक कार्य को सिद्ध कर उर्जा प्राप्त कर सकते हो और यह परमाणु शक्ति ही है जब यह अनियंत्रित हो जाती है। तब यह तुम्हारे साथ इस भुमंडल का भी तहस नहश कर सकता है। इसलिये ही मैंने तुम्हें वुद्धि और समझ दिया है। किसी भी कार्य को करने से पहले उसके परिणाम के बारें में अवश्य विचार लो अन्यथा यह अग्नि तुमको बहुत तरह से प्रताड़ित भी करेगी, जिससे तुम्हे असहनिय पिड़ा क्लेश और संताप की अनुभूति होगी।

इस अग्नि रूप सुक्ष्म उर्जा से ही यह परमाणु बना है और इन परमाणुओं से ही यह सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड बन रहा है और इस अग्नि से हि सभी जीवों कि शरीर निर्मित हो रही है और इसी अग्नि से ही सभी जीवों की शरीरों का कल्याण संभव है और यह अग्नि ही यज्ञ से रूप हो कर अपने सद्‌गुणों कि आहुतियों के द्वारा ही सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मण्ड के साथ संम्पूर्ण जगत के सभी प्राणियों का हर प्रकार से पालन पोषण और संहार कर के संसार को निरंर गति दे रही है। यही अग्नि तुम्हारी आत्मा स्वरूप है। जो इस अग्नि स्वरूप परमेश्वर यानी मेरी अनुकंपा के द्वारा ही हर प्रकार के सर्वगुणों और हर प्रकार के बहुमुल्य रत्नों को धारण करते हो।

आज के हमारे आधुनिक वैज्ञानिक भी यह मानते है कि यह संपूर्ण जगत उर्जा रीप अग्नि ले ही बना है। इससे केवल बाहरी जगत अर्थात सूर्य पृथ्वी या ब्रह्माण्ड ही नहीं हम सब की शरीर भी इसी से बनी है। इसी से यह मुख्यतः जो पांच तत्व है अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश भी बना है।

इस शरीर रूपी संसार में जब तक रहते हो, तब तक इस चेतन अग्नि को द्वारा ही तुम सब मानव के साथ सभी जीव जन्तु प्राणी जैसा कर्म करते हो। उसी प्रकार उसके परिणाम स्वरूप फलों को उपलब्ध होते है। जिसके कारण ही देवता और दैत्य में अग्नि विभाजित हो जाती है और जब इस संसार रूप शरीर को छोड़ने के बाद, तुम सब कि चेतना के द्वारा जैसा कर्म किया जाता है। उसके कर्म के आधार पर ही यह देवो के मार्ग का अनुसरण करती है या फिर दैत्यों के मार्गों का अनुसर्ण करते हुए अपने और लोकों का विचरण करती है। इसी को उपनिषदों में देवयान और पितृयान मार्ग से अभियक्त किया गया है।

अग्नि रूप परमेश्वर कि उपासना तथा देवयान और पितृयान मार्गः-

इन खण्डों में अग्नि रूप परमेश्वर की उपासना के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है और देवयान मार्ग तथा पितृयान मार्ग के मर्म को समझाया गया है। ये दोनों मार्ग, मृत्यु, के पश्चात् जीव (आत्मा) जिन मार्गों से ब्रह्मलोक जाता है, उन्हीं के विषय को दर्शाते हैं। ये दोनों मार्ग भारतीय उपनिषदक दर्शन की विशिष्ट संकल्पनाएँ हैं। इनका उल्लेख 'कौषीतकि' और 'बृहदारण्यक' उपनिषदों में भी विस्तार से किया गया है।

एक बार आरुणि-पुत्र श्वेतकेतु पांचाल नरेश जीवल की राजसभा में पहुंचा। जीवल के पुत्र प्रवाहण ने उससे पूछा कि क्या उसने अपने पिता से शिक्षा ग्रहण की है? इस पर श्वेतकेतु ने 'हां' कहाँ तब प्रवाहण ने उससे कुछ प्रश्न किये-प्रवाहण-'क्या तुम्हें पता है कि मृत्यु के बाद मनुष्य की आत्मा कहाँ जाती है? क्या तुम्हें पता है कि वह आत्मा इस लोक में किस प्रकार आती है? क्या तुम्हें देवयान और पितृयान मार्गों के अलग होने का स्थान पता है? क्या तुम्हें पता है कि पितृलोक क्यों नहीं मरता? क्या तुम्हें पता है कि पांचवीं आहुति के यजन कर दिये जाने पर घृत सहित सोमादि रस' पुरुष'संज्ञा को कैसे प्राप्त करते हैं?'

प्रवाहण के इन प्रश्नों का उत्तर श्वेतकेतु ने नकारात्मक दियाँ तब प्रवाहण ने कहा-'फिर तुमने क्यों कहा कि तुम्हें शिक्षा प्रदान की गयी है?' श्वेतकेतु इस प्रश्न का उत्तर भी नहीं दे सका। वह त्रस्त होकर अपने पिता के पास आया और उन्हें सारा वार्तालाप सुनाया। आरुणि ने भी उन प्रश्नों का उत्तर न जानने के बारे में कहा। तब दोनों पिता-पुत्र पांचाल नरेश जीवल के दरबार में पुनः आये और प्रश्नों के उत्तर जानने की जिज्ञासा प्रकट की। राजा ने दोनों का स्वागत किया और कुछ काल अपने यहाँ रखकर एक दिन कहा-'हे गौतम! प्राचीनकाल में यह अग्नि-विद्या ब्राह्मणों के पास नहीं थी। इसी कारण यह विद्या क्षत्रियों के पास रही।' राजा ने आगे कहा-'हे गौतम! यह प्रसिद्ध द्युलोक ही अग्नि है। आदित्य अग्नि का ईधन है, किरणें धुआं हैं, शदिन ज्वाला है, चन्द्रमा अंगार है और नक्षत्र चिनगारियाँ हैं इस द्युलोक अग्नि में देवगण श्रद्धा से यजन करते हैं। वे जो आहुति डालते हैं, उससे' सोम'राजा का प्रादुर्भाव होता है।' राजा ने आगे कहा-'हे गौतम! इस अग्नि-विद्या में पर्जन्य ही अग्नि है। वायु समिधाएँ हैं, बादल धूम्र हैं, विद्युत ज्वालाएँ है, वज्र अंगार है और गर्जन चिनगारियाँ हैं। इस देवाग्नि में सोम की आहुति डालने से वर्षा प्रकट होती है।' राजा ने फिर कहा-'हे गौतम! पृथ्वी ही अग्नि है, संवत्सर समिधाएँ हैं, आकाश धूम्र है, रात्रि ज्वालाएँ हैं, दिशाएँ अंगारे हैं और उनके कोने चिनगारियाँ हैं। उस श्रेष्ठ दिव्याग्नि में वर्षा की आहुति पड़ने से अन्न् का प्रादुर्भाव होता है।' राजा ने चौथे प्रश्न का उत्तर दिया-'हे गौतम! यह पुरुष ही दिव्याग्नि है, वाणी समिधाएँ हैं, प्राण धूम्र है, जिह्वा ज्वाला है, नेत्र अंगारे हैं और कान चिनगारियाँ हैं। इस दिव्याग्नि में सभी देवता मिलकर जब अन्न की आहुति देते हैं, तो वीर्य, अर्थात् पुरुषार्थ की उत्पत्ति होती है।' पांचवें प्रश्न का उत्तर देते हुए राजा ने कहा-'हे गौतम! उस अग्नि-विद्या की स्त्री ही दिव्याग्नि है, उसका गर्भाशय समिधा है, विचारों का आवेग धुआं है, उसकी योनि ज्वाला है, स्त्री-पुरुष के सहवास से उत्पन्न दिव्याग्नि अंगारे हैं और आनन्दानुभूति चिनगारियाँ हैं उस दिव्याग्नि में देवगण जब वीर्य की आहुति डालते हैं, तब श्रेष्ठ गर्भ का अवतरण होता है। इस पांचवीं आहुति के उपरान्त प्रथम आहुति में होमा गया' आपः '(जल-मूल जीवन) काया में स्थित पुरुषवाचक' जीव या प्राणी' के रूप में विकसित हो जाता है।

'समय आने पर यही जीव, जीवन-प्रवाह में पड़कर नया जन्म ले लेता है और निश्चित आयु तक जीवित रहता है। इसके बाद शरीर त्यागने पर कर्मवश परलोक को गमन करते हुए वह वहीं चला जाता है, जहाँ से वह आया था। जो साधक इस पंचग्नि-विद्या को जानकर श्रद्धापूर्वक उपासना करते हैं, वे सभी प्राणी, प्रयाण के उपरान्त' देवयान मार्ग 'और' पितृयान मार्ग'से पुनः द्युलोक में चले जाते हैं।'

देवयान और पितृयान मार्ग-देवयान मार्ग'के अन्तर्गत प्राणी मृत्यु के उपरान्त अग्निलोक या प्रकाश पुंज रूप से दिन के प्रकाश में समाहित हो जाते हैं। चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष से वे उत्तरायण सूर्य में आ जाते हैं। छह माह के इस संवत्सर को आदित्य में, आदित्य को चन्द्रमा में, चन्द्रमा को विद्युत में, विद्युत को ब्रह्म में पुनः समाहित होने का अवसर प्राप्त होता है। इसे ही आत्मा के प्रयाण का' देवयान मार्ग'कहा जाता है। इस मार्ग से जाने वाले जीव का पुनर्जन्म नहीं होता।' पितृयान मार्ग' से वे प्राणी मृत्यु के उपरान्त जाते हैं, जिन्हें ब्रह्मज्ञान किंचित मात्रा में भी नहीं होता। वे लोग धुएँ के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। धुएँ के रूप में वे रात्रि में गमन करते हैं। रात्रि से कृष्ण पक्ष में और कृष्ण पक्ष से दक्षिणायन सूर्य में समाहित हो जाते हैं। ये लोग देवयान मार्ग से जाने वाले जीवों की भांति संवत्सर को प्राप्त नहीं होते। ये दक्षिणायन से पितृलोक आकाश में और आकाश से चन्द्रमा में चले जाते हैं। इससे आगे वे ब्रह्म को प्राप्त नहीं होते। अपने कर्मों का पुण्य क्षय होने पर ये आत्माएँ पुनः वर्षा के रूप में मृत्युलोक में लौट आती है। ये उसी मार्ग से वापस आती हैं, जिस मार्ग से ये चन्द्रमा में गयी थीं। वर्षा की बूंदों के रूप में जब ये पृथ्वी पर आती हैं, तो अन्न और वनस्पति-औषधियों के रूप में प्रकट होती हैं। तब उस अन्न और वनस्पति का जो-जो प्राणी भक्षण करता है, ये उसी के वीर्य में जीवाणु के रूप में पहुंच जाती हैं पुनः मातृयोनि के द्वारा जन्म लेती हैं। पितृयान से जाने वाले जीव पुनः जन्म लेते हैं। फिर वह चाहे पशु योनि में आयें, चाहे मनुष्य योनि में। जीवन और मरण का यही रहस्य है।

यहाँ तक दो प्रकार कि अग्नि कि बात कही गई है, पहली एक सर्व प्रथम परमेंश्वर नाम कि अग्नि दूसरी जीवात्मा रूप अग्नि है जिसको ही यहाँ पर एक देवता दूसरा दैत्य के नाम कि चेतना कहा गया है। जिसका कर्म श्रेष्ठ होते है वह परमेश्वर के सद्गुणों को धारण करके वह देवता के समान हो जाता है। दूसरा जो कर्म से गिर जाता है जिससे ही उसका पतन होता है। प्रायः ऐसा देखा गया इस जगत में कि देवता किस्म को लोग बहुत हि कम होते है। जबकि दैत्यों कि ज़्यादा संख्या असिमित है। इसी को आज के वैज्ञानिक दो नामों से पुकारते है एक तत्व है जो विश्व ब्रह्माण्ड का समर्थन करता है दूसरा तत्व है जो इस ब्रह्माण्ड के पतन का कारण है। इसी को हम सुक्ष्म जीव वैक्ट्रिया और फंजाई (फफुंद) कहते है। यह दो प्रकार के सुक्ष्म जीव है जो एक दूसरे से भिन्न कार्य करते है एक जीवन के विकास का कारक है तो दूसरा मृत्यु का कारक है। एक तीसरा भी है जिसे परमेश्वर कहते है जो इनको इनके नियत कर्मों के लिये इनको नियत करता है। जिसको ही त्रिदेव कहते है, इसको ही ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान कहते है। ज्ञान मतलब जो जीवाणु है, विज्ञान का मतलब है, फंफुद से है जो जीवन के संहार का कारय करता है। जो सबको को मृत सिद्ध करता है। ब्रह्मज्ञान का मतलब उस अदृश्य ब्रह्मा से है जो दोनों के कर्मों को निश्चित करता है।

इनको समय के साथ नये नामों से परिभाषित किया गया है। जिस प्रकार से एक परमाणु में तिन कण होते है। जो जिसको सत, रज, तम कहते है। इनको ही सर्व प्रथम परमेश्वर का मुख्य निज नाम ओ३म् कहा गया है। अर्थात यह ओ३म् ही वह परमाणु है जिसमे तीन कण के रूप में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा गया। यही तीन प्रथम में मुख्य दोवता है जिनके द्वारा हि आगे अमैथुन श्रृष्टि का प्रारंम्भ होता है जिसका उपदेस अगले मंत्र में परमेश्वर स्वयं कर रहा है।

2-मैं ऋषियों का पुर्वज हूं

ओ३म् अग्निः पुर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नुतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति॥ ऋग्वेद 1.2

जैसा कि प्रथम ऋग्वेद के मंत्र से परमेंश्वर ने उपदेस दिया कि परमेश्वर स्वयं अग्नि का सुक्ष्म से सुक्ष्मतम स्वरूप है और उसने बताया कि वह सब कुछ इस अग्नि से ही बनाया है। इसलिये यह सम्पूर्ण जगत दृश्य मय विश्व ब्रह्माण्ड अग्निवत है। अर्थात बहुत अधिक ज्वलनशील है, इसमें सिर्फ़ वहीं सही मार्ग पर गति कर सकते है जो इस अग्नि का सद्उपयोग करना नियंत्रित रूप से जानते है। यह अग्नि ही दो रूपों में व्यक्त कि गई है। एक दृश्य रूप हो दृश्य ब्रह्माण्ड है और एक अदृश्य ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला स्वंय परमेश्वर है। इसको उसी परमेंश्वर कि निश्वास वाणी वेदों के माध्यम से जान कर जब इसका सद्उपयोग करता है। तो इस श्रृष्टि का उदय होता है और जब अनियंत्रित होती है तो यह भयंकर संहारक सिद्ध होती है। उसी अग्नि रूप शक्ति का विस्तार करते हुए परमेश्वर कहते हैं कि मैं ही अग्नि स्वरूप सर्वप्रथम श्रृष्टि के आदि में ब्रह्माण्ड को गती देने वाला आगें चल कर ऋषियों के पुर्वज के रूप में अवतरित हुआ हूं। इस विश्व ब्रह्माण्ड को नविनता प्रदान करन के लिये इस दृश्यमय जगत में और इन ऋषियों से ही सभी देवात और दैत्य आदि उत्पन्न हुए. जिनका आपस में संघर्ष के कारण स्वरूप ही यह जगत निरंतर गति को प्राप्त कर रहा है।

इस तरह से सर्वप्रथम ऋषियों का उदय परमेंश्वर स्वयं करता है या स्वयं ऋषियों के रूप में अवतरित होता है। जब परमेश्वर ऋषि रूप में अवतरित हुये, वह श्रृष्टी अमैथुन थी। क्योंकि सर्वप्रथम श्रृष्ठि के आदि में अमैथुनि श्रृष्टि ही होती है। ऋषि का मतलब ही होता है (ऋ) अर्थात जो अदृश्य है जो शाश्वत है जो सब का मुख्य कारण है। जिसका कारण कोई नहीं जो अकारण है वह ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। अर्थात जो शुद्ध ज्ञान है, (ष) अर्थात वह जो दूर दिखाई देने वाला चेतन प्राणि ज्ञान वान है वह ऋषि है। अर्थात ऋषि वह है जो दृष्य और अदृष्य को जोड़ने वाला संगम कि तरह से है। ऋषिरवैः द्रष्टा अर्थात ऋषि द्रष्टा कि तरह साक्षी है वह दोनों को देखने वाला है और दोनों से परे भी है। जैसे गंगा और जमुना को जोड़ने वाली अदृश्य नदी सरस्वती है। जिससे संगम बनता है, सरस्वती नाम ज्ञान के देवी का भी है। ज्ञान को भी तीन रूपों में विभक्त किया है इड़ा, सरस्वति और महि, अर्थात ज्ञान, कर्म, उपासना यह तीन प्रकार है। अर्थात ज्ञान स्वतः अपने आप में पूर्ण परमेश्वर रूप और निर्दोष है, कर्म अर्थात जिसका सम्बंध शरीर से है जो मानव है। तीसरा उपासना आर्थात जो पहले से विद्यमान ज्ञान स्वरूप परमात्मा है। उसके समिप कर्म के द्वारा उपस्थित होने को उपासना कहते है। जिसकी कामना साधक गायत्री मंत्र में करता है। वुद्धि ज्ञान को धारण करने वाली है। साधक आत्मा है वह कामना करता है कि परमेंश्वर कि कृपा से मुझे धि मही, अर्थात मेरी वुद्धि श्रेष्ट ज्ञान को धारण करें जिसकी लोग प्रशंशा करते है। जैसा कि मंत्र में स्वयं परमेश्वर कह रहा है कि वही ऋषियों के पुर्वजों के रूप में अवतरित होता है अग्नि रूप जिसने त्रयी विद्या ऋग, यजु, साम, अर्थात वेद का ज्ञान क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश को दिया इनसे ही आगें चल कर मैथुनि श्रृष्टि का प्रारंम्भ किया गया।

सर्वप्रथम विश्व ब्रह्माण्ड कि उत्पत्ती से पहले कुछ भी नहीं था, शिवाय परमेस्वर रूप अदृश्य शक्ति के उस परमेंश्वर ने इच्छा कामना कि-कि मैं अनन्त रूपों में हो जाऊ और उसने स्वयं का स्मरण किया अर्थात स्वयं के निज नाम से ओ३म् का जिससे शब्द का उच्चारण किया। इस शब्द से ही परमेश्वर रूप अदृश्य से दृश्य परमाणु रूप हुआ और इस परमाणु रूप अग्नि से धिरे-धिरे समय के साथ अनन्त ब्रह्माण्ड कि उत्पत्ति हुई निरंतर हो रही है क्योंकि इसके पिछ स्वयं परमेश्वर कि अनन्त शक्ति कार्य कर रही है। इस परमाणु रूप अग्नि के तीन कण रूप ही यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश हूये। इनसे आगे चल कर चार ऋषि हुए अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा यह

ही चार ऋषि प्रथम ऋषि है जिन्होंने सर्वप्रथम क्रमशः चारों वेदों का साक्षात्कार किया था और इनसे ही मैथुनि श्रृष्टि का आभिर्भाव हुआ।

शब्द को भी ईश्वर कहते है, इस नाम के उच्चारण मात्र से अदृश्य जगत से दृश्य जगत में बहुत सुक्ष्म एक अणु का सर्जन हुआ जिसमें प्रथम ब्रह्म कण, दूसरा विष्णु कण, तीसरा महेश कण कहते है। यह एक परमाणु बन गये और यह ब्रह्म कण निरंतर विस्तार करने लगा। यही तीन कण में से एक से शरीर है दूसरे से मन बना है, तीसरे से आत्मा है। यह तीनों क्रमशः एक दूसरे से सुक्ष्म है। यह मन जिससे आकाश का जन्म हुआ, जिससे मन बना और उसी एक मन को अनन्त ब्रह्माण्डों का गर्भ कह सकते है। यह उस परमेंश्वर के लिये कच्चा पदार्थ की भाती था। जिससे ही वह अनन्त किस्म की इस अद्‌भुत जगत की रचना की, जैसा कि हमारें प्राचिनतम शास्त्रों में आता है कि अग्नी, वायु, जल और पृथ्वी यह पांच प्राकृतिक भौतिक दृश्य मय पदार्थ है। जिस हम अपनी नग्न आखों से देख सकते है। यही महेश कण है, यह एक ही पदार्थ से अलग-अलग रुपों में बिभक्त हुये है। जैसा कि हम सब जानते है कि जल एक ऐसा पदार्थ है जिसमें आग और हवा भी है। जिस प्रकार से वायु आक्सिजन जीवन के लिये अवश्यक तत्व है। जिसको जल के अन्दर रहने वाले जलिय जीव मछली आदी पानी में से छान लेते है और अपने आप को पानी के अन्दर जीने लायक बनाते है। जैसा की हम सब जानते है कि हाइड्रोजन एक ज्वलनशिल पदार्थ है जो आक्सिजन के परमाणु के साथ अभिक्रिया करके जल के एक परमाणु को बनाता है। यही हाड्रोजन भविष्य के लिये बहुत बड़ा उर्जा को श्रोत है। जिससे भविष्य में सभी वाहन आदि आसानी से चल सकते है। जबकी जैविक इधन जैसे पेट्रोल डीजल आदी खत्म होने के कगार पर है। पानी के एक परमाणु में दो तत्व है आग और हवा तीसरा स्वयं जल है चौथा तत्व आकास है, इनके मध्य में ही विद्यमान है पांचवा तत्व यह पृथ्वी है, जो इन चारों के मेल से बनी है। सर्व प्रथम ज्वलनशिल गैसें थी। जो आगे चल कर अग्नी का रूप धारण किया जिनसे बहुत सारें तारों का उदय हुआ। इन तारों से अनन्त ग्रहों का उद्भव हुआ और फिर इन ग्रहों पर जीवों का उद्भव हुआ क्रमशः समय के साथ जब ग्रह और तारें आकाश गंगा में स्थापित हो गये तो उसके बाद इसमे उपस्थित कुछ ग्रहों पर जैसे शुक्र, वृहस्पती, मंगल, आदि ग्रहों पर जीवन का उद्भव हुआ। इनको व्यवस्थित रूप से उस परमेश्वर ने पैदा किया सबसे पहले शुक्र ग्रह पर आज के अरबो खरबों साल पहले वायु मंडल निर्मित किया गया, उसके बाद उस ग्रह पर वनस्पती युग आया तरह-तरह के वृक्ष लतायें पेड़ पौधों को उत्पन्न किया गया, उसके उपरान्त देव युग, मन फिर मनु युग आया अर्थात मन का सर्जन हुआ जो आकाश का ही एक रूप है। यह विष्णु कण के रूप में है क्योकि मन ही है, जो दोंनों में एक साथ भाषता है। अर्थात मन विशुद्ध रूप से ब्रह्म के स्वरुप को साक्षात्कार करके उनसे एकात्म कर सकता है और यही मन प्रकृती के मुख्य देवता महेश से भी विशुद्ध रूप से जुण कर इस दृश्य मय जगत का सर्जन कर सकता है। जो मन पहले ग्रहों में तारों में रहा फिर वनस्पतियों में रहा फिर इसने एक कदम आगे बढ़ कर चलते फिरते प्राणियों और सुक्ष्म से बृहद जीवों के शरिर का रूप ग्रहण किया सबसे अन्त में मानव को शरीर का उद्भव हुआ। इस मानव को स्वयं का ज्ञान पर्मेश्वर के सामन था। प्रारंभ से इसका झुकाव प्रकृती की तरफ अधिक रहा जिसके कारण ही यह निरंतर अवनती ही करता रहा। जिसको हम यह कह सकते है कि यह मन ही बहुत अधिक शरीरों को धारण किया जिसमें बहुत सारें देवी देवता और अवतार आते है ऋषि महर्षि के शरीर में यह मन उपस्थित हुआ। अवनती के कारण ही यह एक ग्रह को नष्ट करता हुआ दूसरे ग्रह पर अपना निवास बनाता रहा। शुक्र ग्रह के वायुमंडल को और वहाँ क सभी जीवों का अन्त करके, यह बृहस्पती पर अपनी वस्तिया वशा लिया और अरबों सालों तक उस ग्रह के संसाधनों का दोहन किया और उसको भी अधमरा करके जब देखा कि इस पर जीवन का रहना संभव नहीं है। तो वह मंगल ग्रह पर अपना निवास स्थान बनाया। वहाँ पर भी अरबों सालों तक रहा जब उस ग्रह के जैविक संसाधन अंत हो गये, तो वह पृथ्वी पर अपना निवास बनाने के लिये आया। यह मन ही परमेश्वर के साथ एक हो कर ज्ञान वान बन कर अपने ज्ञान से ही सभी जीव जन्तुओं का पुनः सर्जन कर दिया यहाँ पृथ्वी पर। सर्व प्रथम ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन पुरुष हुए इन तीनो के अधिकार में ही यह सम्पूर्ण दृश्य मय जगत हो गया। जैसा की मैंने पहले बताया कि महेश जिनको हम शीव के नाम से भी जानते है यह संहार के रूप में माने जाते है। विष्णु अर्थात जो मन के स्वामी है जिनके अधिकार में

दृश्य और अदृश्य दोनों प्रकार के जगत में संतुलन बनाने का कार्य है। जो इस जगत के पालन करता है। तीसरे ब्रह्मा जिनका मुख्य कार्य है जगत का निरंतर सर्जन करना। ब्रह्मा ने ही सर्व प्रथम अपनी वुद्धि से ब्राह्मणी नाम की स्त्री को जन्म दिया इससे दो पुत्र उत्पन्न हुए. एक यक्ष दूसरा रक्ष अर्थात जैसा की नामों से प्रतित हो रहा है कि यक्ष नाम का जो पुत्र ब्रह्मा के थे। वह सिर्फ़ पवित्र कार्यों को करते थे जिसमें यज्ञ सर्व श्रेष्ठ कर्म है जिससे ही इस विश्व ब्रह्माण्ड की रक्षा संभव है। दूसरे पुत्र रक्ष थे, जिसका कार्य था यज्ञ रूपी श्रेष्ठ कर्मों की निरंतर रक्षा करना। जो आगे चल कर देवता और दैत्य के रूप में विख्यात हुये इस जगत में। जब इस जगत में बहुत समय तक देवता और दैत्यों ने राज्य किया और इस दृश्यम जगत के आकर्षण में आशक्ती के कारण दोनों अपने मुख्य कर्मों से विरक्त होने लगे। जिससे उन दोनों में द्वेश और राग ने अपना स्थाई निवास स्थान बना लिया। जिसके परिणाम स्वरूप काम और क्रोध ने भी अपनी जड़े गहरी जमा ली। इसका परिणाम यह हुआ की यज्ञ रूपी कर्म निरंतर कम होता गया और निकृष्ट कर्मों की मात्रा में इजाफा होने लगा जिसके कारण दोनो में संघर्ष होने लगा। यहाँ भारत भुमि पर उनको आर्य और अनार्य के नाम से जानते है। जैसे राम कृष्ण आदी के पुरखे आर्यों में आते है, रावण आदी के पुरखे राक्षस में आते है। इन्हीं को देवता और दैत्य कहते है, यह दोनो ही ऋषि महर्षियों की संताने थी जिनके पिता स्वयं ब्रह्मा है। इनकी ही वंसज आज ही इस जगत में चल रही है। एक श्रेष्ठ किस्म के मानव है जो देवता के समान है जो दूसरों के दुःख दर्द पिड़ा को समझते है। जिनकी संख्या अत्यधिक कम है। दूसरे राक्षश दैत्य है जिनकी संख्या बहुत अधिक है। जैसा की हम सब जानते है कि जो श्रेष्ठ लोग पहले थे जिनमे से कुछ के बारें हम अच्छी तरह से जानते है। जैसे राम या कृष्ण जिनको भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। उनको लोग भगवान और विष्णु का अवतार मानते है। इनके पास इतनी क्षमता थी की यह जिसे हम आज जड़ समझते है जैसे पानी जो सागर में विद्यमान है। जिसने उनको रास्ता दिया था उसके उपर पुल बना कर वह रावण को मारने के लिये लंका गये थे। दूसरा कृष्ण ने गोबर्धन पर्वत को अपनी कानी उगंली से उठ लिया था। अगस्त ऋषि ने सागर को पी लिया था। राम के ही बंसज थे भगिरथ जिन्होंन गंगा को आकाश से जमिन पर लाये थे। इसके पिछे मैं यह बताना चाहते हूँ कि पहले लोग इन पदार्थों के देवता शिव की आरधना करके उनसे अपना मन चाहा कार्य सिद्ध कर लेते थे। दूसरी बात जो मैं बताना चाहता हू। वह है कि पहले जो शुक्र, वृहस्पती, मंगल पर श्रृष्टि कैसे खत्म होगई, उसका कारण यही है कि दैवता और दैत्यों का निरंतर युद्ध संग्राम होता रहा। जब देवताऔं की संख्या कम होने लगी दैत्यों का अधिकार ग्रहों पर हने लगा। हर तरफ त्राही-त्राही मचने लगी हर कोई प्रताणित होने लगा। तब जैसा कि कृष्ण गीता में कहते है यदा-यदा जब जब पृथ्वी पर दुष्टों की संख्या और अत्याचार बढ़ेगा तब-तब मैं यहाँ जन्म लेकर उस ग्रह का उद्धार करुगा और उन सब का सामराज्य सामाप्त करके धर्म और सत्य के राज्य कि स्थापना करुग। यह एक सिद्धान्त है, इसी पर चल कर परमेश्वर ने मानव शरीर में कुछ समय के लिये अवतरित हो कर संपूर्ण जगत को अधर्म से मुक्त किया जिसमे उस ग्रह के राक्षस बंशों को खत्म करने के लिये खतरनाक युद्ध हुए. जिसमें आज से भी आधुनिक और खतरनाक हथियारों का प्रयोग किया गया था। उनके पास परमाणु बम हाइड्रोजन बम न्युट्रान, बम आदि की श्रेष्ठतम और उत्तम किस्म के खतरनाक अस्त्र शस्त्र थे। इसका नया प्रमाण पृथ्वी पर मिला है सिन्धु घाटी सभ्यता और वैदिक सभ्यता के अन्त का कारण परमाणु बम पृथ्वी पर गिराये गये थे। पहले के समय में अति उत्तम विमान और स्पैसक्राफ्ट थे। जो प्रकाश की गती से यात्रा करके एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर आसानी से पहुंच जाते थे। पहले के समय में एक राक्षस राजा शाल्व था जो लाखों साल जिन्दा वाला था, क्योंकि उसने अपनी चिकित्सा की उत्तम विधियों के सर्जन से उसने मृत्यु पर अधिकार कर लिये था। जिसके पास बहुत बड़ी सेना और बहुत अच्छे स्पैस क्राफ्ट थे। जिसने शुक्र ग्रह, वृहस्पती ग्रह और मंगल पर अपना अधिकार कर लिया था और देवताओं को वहाँ से भगा दिया था। देवताओं ने अपनी जान बचा कर यहाँ पृथ्वी पर अपना गुप्त स्थान रहने का बना लिया था। जिसकी खोज उसने करके यहाँ पृथ्वी पर भी हमला करना शुरु कर दिया था। जिसके सम्पर्क में रावण आदि राक्षस भी थे, जिनके राज्य और अत्याचार को राम ने एक बार समाप्त कर दिया था और रामराज्य स्थापित कर दिया था। लेकिन कृष्ण के समय आते-आते राक्षस फिर बढ़त को प्राप्त कर लिया था। जिसमें दुर्योधन आदि प्रथम थे, इस पृथ्वी पर, जिसके लिये कृष्ण नें महाभारत जैसे भयंकर युद्ध को कराया। जिस युद्ध में तीन हिस्सा पुरी पृथ्वी की आबादी के लोग सभी मार दिये गये थे। जब शाल्व को यह को यह ज्ञात हुआ की

उसकी योजना कामयाब नहीं हो रही है। उसके सारे जो योद्धा है वह मारे जा रहे है। पृथ्वी पर सत्यता और धर्म का राज्य स्थापित हो रहा है। उसने अपने तिनो ग्रहों से एक साथ कृष्ण जो उस समय द्वारिका में रहते थे। उसपर भंयकर आक्रमण कर दिया और पृथ्वी पर उसने बहुत आतंक मचा दिया था। जिससे कृष्ण बहुत परेशान हो गये थे। उन्होंने भगवान शीव साधना करके उनको प्रसन्न किया और-और उनसे ऐसे अस्त्र शस्त्र लिये जिनकी सहायता से शाल्व के रहने के स्थान शुक्र ग्रह, वृहस्पती ग्रह और मंगल ग्रह के जीवन को हमेशा के पूर्णः नष्ट कर दिया। इस लिये ही शीव का एक नाम त्रीपुरारी है। अर्थात तीनों ग्रहों के शत्रुओं को एक साथ नष्ट करने वाले शक्ति शाली वैज्ञानिक देवता।

इस तरह से यह बात सिद्ध होती है कि यहाँ इस जगत में जीवन और मृत्यु हमेशा से विद्यमान है और इनका आपस में संघर्ष भी प्राचिन काल से ही चल रहा है। लेकिन इनमे स्वतंत्रता मानव के पास है क्योंकि इसके पास वुद्धि है जिसकी साधना से अपनी इन्दियों को संयमित करके इस शरीर के पार जो परमेंश्वर है उस तक पहूंच सकता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है॥ कि वह मानव देवता है या दैत्य है देवता भी दैत्य बन सकता है यदि वह अपने कर्मों से दैत्यों वाले कृत्यों को करता है और दैत्य भी देवता बन सकता है। यदि वह देवों वाला कर्म करता है। जैसा कि हम देखते है कि दोनो हि ऋषियों के ही पुत्र है। जिस प्रकार से पुलुस्त ऋषि का हा नाती रावण हुआ था।

आधुनिक वैज्ञानिको ने ब्रह्माण्ड कि उत्पत्ति और तथाकथित गॉडपार्टिकल जेनेवा स्थित यूरोपियन ऑर्गनाइज़ेशन न्यूक्लियर रिसर्च (सर्न) द्वारा दुनिया के सबसे बड़े महाप्रयोग में १०० से ज़्यादा देशों के करीब ८००० वैज्ञानिकों ने हिस्सा लिया और इस पर १० अरब अमेरिकी डॉलर से भी ज़्यादा खर्च हुये जिसके परिणाम में तथाकथित गॉड पार्टिकल (हिग्स बोसोन) की खोज करने का दावा कर रहे वैज्ञानिकों की यह सारी खोज आधी अधूरी अपूर्ण के साथ-साथ अनुमान पर आधारित है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि "हिग्स बोसोन" यानी वस्तु में मिलने वाला वह सूक्ष्म कण जिसके कारण वस्तु में भार है। जिसके कारण ही सभी वस्तुएँ आपस में संघठित हैं, जो अरबों साल पहले हुये एक महाविस्फोट के बाद अस्तित्व में आया जिसे ही आज के वैज्ञानिक हिग्स बोसोन, ईश्वरीय कण, ब्रह्म कण को अलग-अलग नामों से सम्बोधित कर रहे हैं। इस वैज्ञानिक खोज को भारतीय धर्म गुरु धर्माचार्य भी यह कहते हैं। कि कण-कण में भगवान है जिसको विज्ञान ने भी प्रमाणित कर दिया। वैज्ञानिकों का मानना है कि हिग्स बोसोन (ब्रह्म कण) समझ लेने से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के रहस्य को जानने में बड़ी मदद मिलेगी, यह पता चल सकेगा कि ब्रह्माण्ड जिससे हमारी धरती, चाँद, सूरज सितारे, आकाश गंगायें हैं, कैसे बना? अभी तक विज्ञान मान रहा है कि अरबों साल पहले हुये एक महाविस्फोट जिसे बिग बैंग कहा जाता है, के बाद पदार्थ बने और फिर हमारा ब्रह्माण्ड, लेकिन यह महाप्रयोग उस राज से पर्दा उठा देगा कि ऊर्जा से पदार्थ कैसे बनता है? सर्व प्रथम शब्द से उर्जा और उर्जा से पदार्थ निर्मित हुए.

विज्ञान के इस आधे-अधूरे अप्रमाणित अनुमानित खोज से कई प्रश्न पैदा हो जाते हैं, जैसे कि महाविस्फोट कब और कहाँ हुआ? महाविस्फोट किन-किन पदार्थों के बीच हुआ? महाविस्फोट में प्रयोग होने वाले पदार्थों कि उत्पत्ति कैसे हुई? और कब हुई? ये हिग्स बोसोन के कारण जो वस्तुओं में भार है इसका ओरिजिन कहाँ से है? फिर इस कण से आगे यह ऊर्जा की उत्पत्ति कहाँ से हुई? फिर यह ब्रह्माण्ड जिस विस्फोट से बना आखिर वह महाविस्फोट क्यों हुआ? उसका कारण क्या था? महाविस्फोट में कौन-कौन से पदार्थ थे और पदार्थों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई? ब्रह्माण्ड में पदार्थों में पायी जाने वाली ऊर्जा शक्ति की उत्पत्ति कहाँ से हुई? आदि-आदि बहुत प्रश्न हैं। जिसका जवाब न तो इन वैज्ञानिक के पास है, न इन तथाकथित धर्मगुरूओं के पास है। पदार्थ में पाये जाने वाले सूक्ष्म कण हिग्स बोसोन को ही कण-कण में भगवान घोषित करना आधे-अधूरे ज्ञान की पहचान है। कण-कण में उर्जा है जीव भी नहीं है, चेतन भी नहीं है। बल्कि जिस कण में चेतन विहीन शक्ति है, चेतन विहीन शक्ति को ही आजकल के वैज्ञानिक और आध्यात्मिक लोग परमात्मा-परमेश्वर-भगवान कह कर घोषित

करने में लगे हैं और परमात्मा-परमेश्वर-भगवान-खुदा-गॉड के पृथक अस्तित्व को मिटाने में लगे हैं जो कि घन घोर भगवद्द्रोही कार्य है। जब-जब धरती पर ऐसा असुरता रूप नास्तिकता फैलता है तब-तब इस धरती पर स्वयं परम प्रभु-परमेश्वर-खुदा-गॉड-भगवान सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्माण्ड के रहस्यों को उजागर करने हेतु तथा विज्ञान और अध्यात्म का भी रहस्य उजागर करने के लिए अवतरित होते हैं। वास्तव में इस सृष्टि ब्रह्माण्ड का रहस्य और भगवान का रहस्य इस संसार से लेकर सम्पूर्ण सृष्टि में कोई जानता ही नहीं है। चाहे वैज्ञानिक लोग महाप्रयोग करें और आध्यात्मिक लोग जितने भी आध्यात्मिक अनुसन्धान करें, पूरा जीवन लगा दें, लाखों करोड़ों वर्ष लगा दें तब भी इस सृष्टि का और परमात्मा का रहस्य कोई नहीं जान पाएगा। यह सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्माण्डों का रचनाकार उत्पत्ति कर्ता स्वयं परमात्मा-परमेश्वर-भगवान हैं, इस सृष्टि के सम्पूर्ण रहस्य मात्र उसी के पास हैं।

विज्ञान की पहुँच पदार्थ (कण) जड़ तक ही होती है। पदार्थ से पहले शक्ति का रहस्य, इसका उत्पत्ति रहस्य विज्ञान से मिलना कदापि सम्भव नहीं है। ठीक उसी प्रकार किसी भी ध्यान-साधना की अवस्था में दिखाई देने वाले आत्मा ज्योति, दिव्य ज्योति, ब्रह्म ज्योति, शिव शक्ति, अलिमे नूर की उत्पत्ति का रहस्य किसी भी योगी यति आध्यात्मिक के पास नहीं होता। अर्थात वैज्ञानिकों का जड़ पदार्थ और अध्यात्मिकों का चेतन ज्योति का रहस्य केवल अवतार (अर्थात जिसने परमेंश्वर का साक्षात्कार कर लिया है) भगवान के तत्त्वज्ञान में होता है।

ऋग्वेद का नासदिय सुक्त इसके संदर्भ कुछ इस तरह से कहता है। -:

"जब कहीं कुछ भी नहीं था, न यह सृष्टि था, न यह ब्रह्माण्ड, न यह ब्रह्माण्ड में दिखाई देने वाला आकाश, वायु, अग्नि, जल, थल, न सूरज, न चाँद, न तारे, न आकाश गंगायें, न पदार्थ, न चेतन न यह हिग्स बोसोन, न यह ब्रह्म कण अर्थात् जब यह सृष्टि थी ही नहीं तब वह परमात्मा-परमेश्वर-भगवान-खुदा-गॉड'शब्द रूप' वचन रूप में परम अदृश्य शुन्य रूप परम धाम में था। उसे ही शब्द ब्रह्म भी कहा जाता है। जिस शब्द वचन रूप परमात्मा के अन्दर सृष्टि रचना का संकल्प हुआ। संकल्प यानी कुछ हो, भव, कुछ यह भाव होते ही उस शब्द रूप परमात्मा से एक शब्द निकल कर अलग हुआ यानी एक शब्द उस परमात्मा से छिटका जो शब्द प्रचण्ड तेज पुञ्ज से युक्त था यानी उस में इतना ज्योति तेज शक्ति से युक्त था। इसको ही आदिशक्ति, मूल प्रकृति, अव्यक्त प्रकृति भी कहा जाता है। उस शब्द रूप परमात्मा से एक शब्द छिटकने के पश्चात्त भी उस परमात्मा वाले शब्द में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि वह एक सम्पूर्ण शब्द ही बना रहा, यही इस परमात्मा की आश्चर्यमय विशेषता थी। शब्द रूप भगवान से जो शब्द निकला, जो प्रचण्ड तेज पुञ्ज अक्षय ज्योति से युक्त था उसको ही सम्पूर्ण सृष्टि का कार्य भार सौपा गया। यानी मूल प्रकृति को ही सृष्टि का कार्यभार परमात्मा ने सौंपा और सृष्टि करने के लिए इच्छा शक्ति दिया। (इसी शब्द रूप भगवान से एक शब्द निकलकर छिटककर प्रचण्ड तेज पुञ्ज हुआ इसको विज्ञान अनुमान के आधार पर महाविस्फोट कहता है) फिर इस प्रचण्ड तेज पुञ्ज शब्द शक्ति से शक्ति उर्जा निकलकर पृथक हुई जो आगे चलकर आकाश, वायु, अग्नि, जल और थल का रूप लिया यानी पदार्थ का रूप लिया फिर इस सृष्टि का संरचना हुआ यानी उस शब्द मय उर्जा शक्ति से ही पदार्थ बनते हुये इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई.

सृष्टि की उत्पत्ति:-

आदि के पूर्व में जब मात्र "परमतत्त्वम् आत्मतत्त्वम् रूप शब्द ब्रह्म ही थे। उन्हे संकल्प उत्पन्न हुआ कि कुछ हो। चूँकि वे सत्ता सामर्थ्य से युक्त थे और उनके कार्य करने का माध्यम संकल्प ही है। इसलिए कुछ हो संकल्प करते ही उन्ही शब्द ब्रह्म का अंग रूप शब्द शक्ति अदृश्य उर्जा सः (आत्मा) छिटककर अलग हो गयी, जो संकल्प रूपा आदि शक्ति अथवा मूल प्रकृति कहलायी। तत्त्व ज्ञान शब्द ब्रह्म के निर्देशन में (सः आत्मा) रूप शब्द शुन्य उर्जा शक्ति को सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी कार्य भार मिला अर्थात् सृष्टि (ब्रह्माण्ड) के सम्बन्ध में निर्देशन, आज्ञा एवं आदेश परमतत्त्वम् आत्मतत्त्वम् रूप शब्द ब्रह्म स्वयं अपने पास, उत्पत्ति संचालन और संहार से सम्बंधित क्रिया-कलाप (सः) आत्मा रूप शब्द शक्ति के पास सौंपा परन्तु स्वयं को इन क्रिया कलापों से परे रखा।"

शब्द शक्ति रूप आदि-शक्ति ही मूल प्रकृति भी कहलायी, क्योंकि प्रकृति की उत्पत्ति इसी आदिशक्ति रूप में हुई इसलिए यह मूल प्रकृति भी कहलायी। पुनः आदिशक्ति ने शब्द उर्जा अदृश्य ब्रह्म के निर्देशन एवं सत्ता-सामर्थ्य के अधीन कार्य प्रारम्भ किया। इन्हे कार्य के निष्पादन हेतु इच्छा शक्ति मिला। तत्पश्चात् आदिशक्ति ने सृष्टि उत्पत्ति की इच्छा की तो इच्छा करते ही शब्द शक्ति रूपा आदिशक्ति का तेज दो प्रकार की ज्योतियों में विभाजित हो पहला भोग प्रकृती दूसरा भोक्ता जीवात्मा हो गये, जिसमें पहली ज्योति तो आत्मा ज्योति अथवा दिव्य ज्योति कहलायी तथा दूसरी ज्योति मात्र ज्योति ही कहलायी अर्थात् पहली ज्योति आत्मा जो चेतनता से युक्त है तथा दूसरी ज्योति शक्ति कहलायी इसी से प्राकृति पदार्थ की उत्पत्ति हुई.

ब्रह्माण्ड की उत्तपत्ति के विषय में वेदों में ऋग्वेद कहता है कि सर्व प्रथम कुछ भी नहीं था यहाँ तक आकाश भी नहीं था केवल परमेश्वर था जो अपनी अद्वितिय अद्भुत सामर्थ से शांसे ले रहा था। सर्व प्रथम उसमें इच्क्षा उत्तपन्न हुई की वह विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हों, ऐसी इच्छा परमेश्वर के हृदय में आते ही शब्द रूप ब्रह्म प्रकट हुआ उसके साथ हि भोग और भेक्ता भी शब्द रूप शुन्य उर्जाये प्रकट हुई अदृश्य जगत से दृश्य जगत में, जिससे एक अद्भुत अलौकिक अकल्पनिय अचानक अग्निपिण्ड प्रकट होगया भोग रूप प्रकृति और दूसरा उसका भोग करे वाला जीव उसमें प्रवेश करके उसका विस्तार करने लगा और उसमें निरंन्तर बिस्फोट होने लगा जिसमें अनन्त ब्रह्ममाण्ड, जिसमें से सबसे छोटा ब्रह्माण्ड हमारा है। उसमें भी सबसे छोटी आकाश गंगा हमारी है। उसमें एक किनारें पर हमारा सूर्य अपने सौर्यमंडल उपस्थित है। जो आकाश गंगा के केन्द्र का अपने सम्पूर्ण ग्रहों के साथ चक्कर लगा रहा है। अनन्त आकाश गंगायें, अनन्त सौर्य मंडल के साथ बहुत सारे सूर्य पैदा हो गये छोटे सूर्य हमारे सौर्य मंडल का उत्पन्न हुआ और इसमें भी विस्फोट हुआ जिससे सभी ग्रह उत्तपन्न हुये जिसमें से ही एक हमारी पृथ्वी भी है। हमारी पृथ्वी लग-चार अरब वर्ष पुरानी हो चुकी है।

जैसा कि पृथ्वी हमें आज दिखाई देती है वह प्रारम्भ में ऐसा बिल्कुल नहीं थी। यह अपने प्रारम्भिक काल में, सूर्य से निकलने के कारण सूर्य के समान भयंकर ज्वलनशील गैसों का अग्निपिण्ड थी। इसको ठंडा किया गया लगातार अरबों सालों तक बारीष के कारण से, उसके बाद एक विशाल धुम केतु आकर अंतरीक्ष से हमारी पृथ्वी से टकरा गया, जिसकी वजह से पृथवी दो टुकड़ों में बिभक्त हो गई और उसके बाद एक छोटा टुकड़ा जिसे हम चंद्रमा कहते वह पृथवी से तीन लाख चौरासी हजार किलोमिटर दूर होकर पृथ्वी का चक्कर लगाने लगा। जैसा की पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है। सूर्य आकाशगंगा के केन्द्र का चक्कर लगाता है। आकाशगंगायें ब्रह्माण्ड के केन्द्र का चक्कर लगाती है और यह सारें ब्रह्माण्ड परमेंश्वर जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का केन्द्र है अदृश्य केन्द्र बिन्दु ध्वनी रूप शब्द ब्रह्म का चक्कर लगाते है अस्तु। इस ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार के मुख्य कार्य कर हो रहा है। पहला कार्य ईश्वर द्रष्टा स्वरूप साक्षी बन कर निष्पक्ष हो कर सभी प्रकार के कृत्यों को देख रहा है जो भोक्ता रूप जीव जिसे आत्मा कहते वह प्रकृती रूप भोग सामग्री का किस प्रकार से उपभोग कर रहा है। दूसरा कार्य जीव नये-नये रूपों में स्वयं को निरंतर बिभक्त कर रहा है। प्रकृती के पदार्थों के आवरण के अन्दर व्यवस्थित होकर। जिसमें से एक सबसे श्रेष्ठ अद्भुत रूप मानव शरीर के रूप में भी विद्यमान है। तीसरा कार्य प्रकृती स्वयं का निष्पक्ष भाव से जीव का हर प्रकार से रक्षात्मक सहोग कवच की भाती बन कर-कर रही है।

जब पृथ्वी के दो टुकड़े हो गये उसके बाद पृथ्वी पर बहुत सालों तक सूर्य का प्रकाश पृथ्वी की सतह तक नहीं आसका। क्योंकि धुमकेतु के टकराने से इतना भयानक बिस्फोट हुआ जिसकी कल्पना हम नहीं कर सकते है। चन्द्रमा पृथ्वी के जिस हिस्से से अलग हुआ वहाँ पृथवी में बहुत बड़ा गड्ढा बन गया जो करीब बारह किलोमिटर गहरा था। जिसमें पानी जो अन्तरीक्ष से बरसता है। धिरे-धिरे अपने मिट्टी के कड़ों को बहाकर ले जा कर उसमें जमा एकत्रित होने लगा। जो सबसे गहरा महासागर प्रशान्त सागर के रूप में आज पृथ्वी पर विद्यमान है। क्योंकि चन्द्रमा के उपर का जो पर्वत है। वह ठीक उतना ही उचां है जितना गहरा प्रशान्त महासागर है। अर्थात पृथ्वी का वही का टुकड़ा चांद है जहाँ आज प्रशान्त महासागर के रूप में है।

जब पृथ्वी से चंद्रमा अलग हुआ जिसकी वजह से धुल–धुसर का बवन्डर गुबार पृथ्वी के वायुमंडल में दसों दिशाओं से छा गये और पृथ्वी का सतह बहुत तिब्रता ठंडा होने लगा। जिस प्रकार से एक वाल्टी में बहुत सारे पदार्थों के कुछ बहुत हल्के कचरें को पानी घोल कर कुछ समय के लिये किसी ठंडे स्थान पर रख दे तो जो कचरा का भारी हिस्सा होगा वह तलहटी में जम जायेगा और जो हल्का होगा यह सबसे उपर पानी में तैरने लगेगा, ठीक इसी प्रकार से पृथ्वी के साथ हुआ। एक प्रकार से पृथ्वी जैसे किसी लिफाफे में बन्द हो गई और लाखों वर्षों तक सूर्य के प्रकाश से दूर रही। पृथ्वी में उपस्थित बिभिन्न प्रकार की गैसे पानी को पाकर अपने को वास्पित करके पृथ्वी की सतह से उपर उठने लगी जो गैस ज़्यादा द्रव्यमान घनत्व वाली थी वह निचे रही और जो बहुत अधिक हल्की थी। वह पृथ्वी की सतह से बहुत उपर उठकर अपने चर्मोत्कर्ष पर जाकर जमने लगी जैसे ओजोन की परत है। जिसके कारण सूर्य की पैरा बैगनी खतरनाक किरणें पृथ्वी की सतह पर नहीं आ पाती है। वह ओजन की परत से टकरा कर जिस प्रकार सीसा किसी सूर्य के प्रकाश की किरणों को वापिस उसी दिशा में भेज देता है, ठीक इसी प्रकार से यह पारदर्शी ओजोन की परत पृथ्वी के लिये वह अवस्था पैदा करने लगा जिससे कोई जीव यहाँ पर जीवित रह सके, एक प्रकार से यह ओजोन पर जीवन के लिए पृथ्वी पर किसी प्राणी के लिये सुरछा कवच का कार्य करती है। ओजोन की परत आक्सिजन के दो कणों से मिल कर बनी है। पानी में आक्सिजन का केवल एक अणु है जो दो अणु हाइड्रोजन का लेकर पानी का एक परमाणु बनाता है। यह ओजोन कि परत बनने के बाद जो पानी अन्तरिक्ष से सिधा पृथ्वी की सतह पर वरषता था वह भी बन्द होगया। इस परत के कारण पानी के कणों में विद्यमान आक्सिजन ओजोन के कणों के साथ रासायनिक अभीक्रिया कर ओजोन की परत को और सक्त करने लगा, जिसके कारण पानी का दूसरा कण हाइड्रोज उससे दूर सूर्य कि किरणों के साथ मिल कर वापिस अन्तरिक्ष में जाने लगा। इस प्रकार से पृथ्वी पर पहले से विद्यमान पानी जब पुनः सूर्य प्रकाश का ताप पाकर पृथ्वी की सतह पर आना प्रारम्भ हुआ, तब शुद्ध रूप में यह जीवन के लिये सहयोगी बना और दूसरी तरफ पृथ्वी पर उपस्थित पानी वास्पित हो कर पृथ्वी के वायुमंडल में बादल के रूप में एकत्रीत होने लगा और समय–समय पर जैसे पृथ्वी जब सूर्य के करीब से गुजरती तब यह बादल पानी की बुदों के रूप में बरषने लगे, इस प्रकार से पृथ्वी पर ऋतुए मौसम का प्रारम्भ हो गया। सर्दि, गर्मी, बरसात, बसन्त पतझण इत्यादी।

अभी भी पृथ्वी काफ़ी गरम थी फर्क सिर्फ़ यह आया था कि लाखों करोणों सालों तक बारिष हुई, जब पृथ्वी से चन्द्रमा अलग नहीं हुआ था। वारिष का पृथिवि पर यह असर पड़ा कि पृथ्वी के सम्पर्क में आने से पहले ही पानी की बुदें वास्प में परीवर्तन होती रही, यह प्रकृया लाखों सालों तक चलता रहा। यह वास्प जब पृथ्वी के सतह पर बहुत सघन हो गये तो स्टिम की एक मोटी परत पृथ्वी के सतह से कुछ किलोमिटर उपर तक बना लिया। इस वास्प स्टिम के कई किलोमिटर उपर ठिक उससे सट कर झाग फाग कोहरे बादलों का कई एक किलोमिटर मोटाई में चारों तरफ लेयर की परत बन गई. ठीक इसके उपर बर्फ की मोटि परत कई एक किलोमिटर मोटी पर बन गई. जिस प्रकार से पृथ्वी का उत्तरिय और दक्षिणी ध्रुव है। जहाँ बीसों किलोमिटर मोटाई में समन्दर के वर्फ की परत है। यहाँ फर्क यह है कि यह बर्फ की मोटी परत समन्दर के ठंडे पानी के उपर है। जबकि पहले जो पृथ्वी के चारों तरफ बर्फ की कई एक कीलोमिटर की जो परत थी वह फाग कोहरें, बादलों और स्टिम, भाप के उपर थी। उसके निचे पृथ्वी ज्वलनशील भयंकर गैसों की पिंड थी। पृथ्वी के केन्द्र से सतह के विच में लग–भग तीस से चालिस किलोमिट अन्दर तक कुछ बिल्कुल तरल बिभिन्न प्रकार की गैसे उसके उपर ठोस और सबसे उपर सतह से कुछ किलो मिटर तक भयंकर गैसों की वास्प की परत थी। जब पृथवी से धुमकेतु टकराया उसके परिणाम स्वरूप पृथ्वी से चन्द्रमा अलग हुआ और जब सूर्य कि कीरणों से पृथ्वी का सिधा सम्पर्क ना होने के कारण। क्योंकि पृथ्वी से धुमकेतु के टक्कर के बाद धुल–धुसर का बवन्डर कई एक सालों तक पृथ्वी के चारों तरफ फैला रहा जिसके परिणाम स्वरूप ही पृथ्वी का वायुमंड बना और पृथ्वी पर मौसम ऋतुवों का अभिर्भाव हुआ। अब तक पृथ्वी पर पानी का बहुत बड़ा भंडार जमा हो चुका था। कई लाखों साल अंतिरीक्ष से बारिष होने के कारण। जब पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश नहीं आ रहा था। उस समय पृथ्वी की सतह ठंडी होने के कारण सारा वास्प जो पृथ्वी के सतह के ठीक उपर जमा था कई एक किलोमिट

वह सब जम कर बर्फ का रूप धारण करने लगे और पृथ्वी बहुत अधिक ठंडी होगई कई किलोमिटर अन्दर तक सतह से बिल्कुल ठोस रूप होगई. इस तरह धुमकेतु से जब कई सौ सालों के बाद जब सब धुल-धुसर चन्द्रमा के पृथ्वी के अलग होने के कारण उठ रहे थे। सब शान्त और व्यवस्थित होगये और उजोन की परत के कारण वायुमंडल बन गया पृथ्वी पर, सूर्य का प्रकाश शुद्ध रूप से बिना बैगनी किरणों के पृथ्वी की सतह तक पुनः आने लगे। तब उसके बाद सिर्फ़ बारीष चार महिनों तक होने लगी, चार महिने गर्मि और चार महीने सर्दी पड़ने लगी। जब बारीष होती तो वह पानी रूप तरल बन कर बर्फ के निचे बह कर हर तरफ से उस स्थान पर एकत्रीत होने लगा जो बिशाल गड्ढा पृथवी चन्द्रमा के निकलने के कारण बना था। पानी के साथ बहुत सारे रसायन मिट्टि के कण भी बर्फ की परत के निचे उस गड्ढें में जाकर एकत्रीत होने लगे, लाखों सालों तक यह प्रक्रिया चलने के कारण उस गड्ढे में सबसे उपर बर्फ उसके निचे पानी तरल रूप में खारा कई किलो मिटर निचे पृथ्वी के समकछ सतह तक भर गया। जिसमें कोई लहर नहीं थी ना ही उसमें कोई ज्वार भाटा ही आता था। क्योंकि सारा पानी बर्फ के निचे विद्यमान था। उस पानी के निचे जो पृथ्वी के चारों तरफ से कचड़ा बह कर जाता था। वह सब पानी बर्फ के निचे एकत्रीत होने लगा। जो आगे चल कर लाखों सालों में पर्वत बन कर उभरा पृथ्वी कि सतह से उपर, इसके पिछे कारण है। कि पृथ्वी दोनों ध्रुओं से बंधी एक बिशाल चट्टान रूप है जो फैल तो सकती नहीं और पानी या बर्फ पृथ्वी की सतह से उपर जा नहीं सकते। क्योंकि पृथ्वी इतनी तीब्रता से घुम रही है पुरब से पश्चिम की तरफ इस तरह से एक बैक्युम बन गया है। जो पृथ्वी को फैलने से रोकता है जो समन्दर के अन्दर पर्वत बनने का कारण बना। इस तरह से पृथ्वी पर उपस्थित समन्दर से हिमालय रूपी सर्वप्रथम पर्वत का जन्म हुआ, जो समन्दर की सतह से आज लगभग नौ किलोमिटर उचां है और आज भी वह बढ़ रहा है। जहाँ आज पृथ्वी पर हिमालय पर्वत है। वहाँ कभी बहुत लाखों करोड़ों साल पहले टेनिथ नामक समन्दर हुआ करता था। आज भी हिमालय पर बहुत बड़ी मात्रा में बर्फ के अतिरीक्त उसकी चोटियाँ नमक से ढकी है। जो यह सिद्ध करती है कि यह समन्दर से आई है।

जैसा की ध्रूओं पर है ऐसा ही पृथ्वी के चारों तरफ बर्फ था। पहले जब हिमालय नहीं था ना ही कोई समन्दर ही था। जो अभी पृथ्वी के वायुमंडल गरम होने के कारण बहुत तिब्रता से ध्रुओं की बर्फ गल कर समन्दर के पानी में मिल कर समन्दर की सतह को उचां कर रहा है। ऐसा ही चलता रहा तो कुछ एक सौ सालों के अन्दर ही समन्दर के किनारे जो बड़े-बड़े देश बशायें गयें है वह सब समन्दर में डुब जायेगें। ऐसा पहले भी हो चुका है। समन्दर में महाभारत कालिन कृष्ण की द्वारिका नगरी जो अहमदाबाद के पास थी वह समन्दर में समा गई है। समन्दर के एक या दो किलोमिटर अन्दर आज भी कृष्ण की नगरी द्वारीका का अवषेश विद्यमान है।

मनुष्य वह है जो चिन्तन मनन विचार और सत्य का निर्णय करने में सक्षम हो जिसके पास यह सामर्थ नहीं वह मानव कहलाने के योग्य नहीं है। हम प्रायः दूसरे को बदलना चाहते है, दूसरे को सुन्दर समझते है दूसरे से प्रेम करते है दूसरे जैसा बनना चाहते है। हर वस्तु को अपने इच्छा, राग, द्वेश से देखते है। यहाँ तक हम स्वयं को भी हम पूर्णतः नहीं स्विकारते हमेशा हम दूसरे का ही अनुसरण करते है। क्योंकि यह तरिका बहुत परिश्रम से तैयार किया गया है। जिससे मानव का शोशण भरपुर करने में सफलता निरंतर मिलती रहे। आज दुनिया एक अजायब घर या यातना गृह बन कर रह गई है, इसको बनाने वाला कोई और नहीं वही लोग है, जो दूसरे जैसा बनने में लगे है। यह हम नहीं जानते की हम कौन है? जब हम स्वयं को जान जायेगे तो हमारे जैसा कोई दूसरा नहीं है, हम अद्वित और अद्भुत शक्ति समपन्न है। हम हमेशा दूनिया को समझना चाहते है। दूनिया को बदलना चाहते या फिर दूनिया के साथ चलना चाहते है। जबकी दूनिया बहरी, लुली, लंगड़ी, अपाहिज और ब्यर्थ है। यहाँ सब कुछ जण नश्वर है। हम स्वयं को प्रेम करें स्वयं को बदले स्वयं के लिये जिवन को जीये हमारे लिये सब कुछ संभव है, जब हमारा ध्यान स्वयं पर होगा। तभी हमें स्वयं का ज्ञान होगा। हम सबसे पहले भारतीय है। हमारा पहला धर्म है, भारत को जानना भारत कोई व्यक्ति नहीं भारत एक आत्मा है जिस प्रकार बिना आत्मा के शरिर रुपी पृथ्वी बेकार उसी प्रकार बिना भारत के दुनिया का अस्तित्व संभव नहीं है। क्योंकि दुनिया का प्रारम्भ

या श्रृष्टि का प्रथम अवतण भारतिय उप महाद्विप तिब्बत के हिमशिखर पर हुआ, यह श्रृष्ठि अमैथुन श्रृष्टि थी। अर्थात बिना किसी गर्भ की सहायता के यहाँ पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीवों को युवा ज्वान रूप में पैदा किया गया था। इसके पिछे बहुत बड़ा कारण था कि बच्चों को पैदा किया जाता तो उनका पालन कौन करता? यदि वृद्धों को पैदा किया जाता तो उनकी सेवा कौन करता? इस कारण से सभी जीवों को युवा रूप में उत्तपन्न किया गया या दूसरे शब्दों में क्लोनिगं के रूप उत्पन्न किया गया। यह क्लोनिगं करने वाले कौन थे? वह मनु और सप्तऋषि थे। यह मंगल ग्रह पर से आये थे क्योंकि वहाँ पर जब भयानक परमाणु युद्ध होना शुरु हुआ देवता और दैत्य में अर्थात आर्य और अनार्य में जिसके कारण वहाँ की मानवता संस्कृत सभ्यता बहुत तिब्रता से नष्ट होने लगी। इसके साथ वहाँ का वायुमंडल अत्यधिक गर्म होने लगा और वायुमंडल लगभग समाप्त होने के कगार पर पहुंच गया, जिसके कारण मंगल ग्रह के चनंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण कम होगया और वह मंगल के सतह से टकराने के लिये उसके तरफ बढ़ने लगा।

यह ज्ञान वहा के वैज्ञानिक और सप्तऋषि मनु जो वहाँ के प्रमुख थे उनको हुआ तो वह जीवन और श्रृष्टि को आगे बढ़ाने के लिये सभी जीवों के जीन डि। एन. ए. जो पहले से एकत्रित वैज्ञानिक ऋषियों के द्वारा किये गये थे। वह सब लिया एक बड़े स्पैशविमान कि सहायता से हिमालय के शिखर पर आये यहाँ एक बिशाल लैब अस्थापित की और उसमें सभी प्रकार के जीवों की मानव समेत क्लोनिगं की। मंगल ग्रह पर उसका उप ग्रह चंद्रमा कुछ समय पश्चात टकरा गया वहाँ का सब कुछ सर्वनाश होगया। क्योंकि बिशाल ग्रहों के टक्कर के कारण कई वर्षों तक सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंच पाया उस ग्रह पर जिसके कारण किसी जीव का जीवित रहना संभव नहीं रह सका सिवाय कुछ सुक्ष्म वैक्टेरिया के जो अब भी वहाँ विद्यमान है। आज भी वैज्ञानिक अपने यंत्रों कि सहायता से यह जानने में समर्थ हो चुकें है कि वहाँ मंगल ग्रह के जीवन के नष्ट होने के पिछे कारण भयंकर परमाणु युद्ध ही था। दूसरी बात वहाँ पर आज भी बहुत प्रकार के किड़े मकोणें और छोटे जीव पाये जाते है और आज के वैज्ञानिको नें यह सिद्ध कर दिया है कि हमारे प्राचिन काल के ऋषि वैज्ञानिक आज के समान ही जानकार और संसाधन संपन्न थे। उनके पास हमसे भी आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता और वैज्ञानिक संसाधन थे।

इस तरह से सर्वप्रथम मानव समेत सभी जीव जन्तु प्राणी का उदय पृथ्वी पर हुया। हिमालय के शिखर पर जो अब तिब्बत में है। पहले वहाँ पर स्वर्ग बनाया गया था। इससे पहले स्वर्ग उत्तरिय ध्रुव पर वसाया गया था यह रामायण कालिन युद्ध के बाद खत्म होगया था, क्योंकि रावण का एक भाई था कुम्भकरण जिसने दक्षिणी ध्रुव पर अपना अधिकार कर लिया था और वह देवताओ के स्वर्ग पर आक्रमण करने के लिये उद्दत अपने भाईयों और रावण के साथ था। जिसके कारण ही देवताओं ने योजनाबद्ध तरिके से राम रावण का युद्ध करा के स्वर्ग को बचाया था कुछ समय के लिये ही। क्योंकि इस पृथ्वी हमेंशा से देव और दैत्य का युद्ध निरंतर चलता रहता था। जिसमें स्वर्ग भी समय के साथ यहाँ स्वर्ग भी बदलता रहा है। तिब्बत का यह स्वर्ग महाभारत काल तक विद्ययमान था, देवता अत्यधिक श्रेष्ठ स्त्री पुरुष रहते तो जो हजारो सालों लाखों सालों तक जीदां रहते थे। यहाँ साधरण जो जीव मैथुनी श्रृष्टि से पैदा होते उनको रहने की अनुमती नहीं थी। इसलिये यहाँ रहने के लिये प्रायः युद्ध होते जिसमें वहाँ स्वर्ग में रहने वाले हमेंशा अपने योग बल से बिश पड़ते थे और साधरण जन जो मैथुनी श्रृष्टि से पैदा हुये थे। वह देवतावों से कमजोर और उस वातावरण में जीने के योग्य भी नहीं थे। जब उनकी संख्या बहुत तेजी से बढ़ने लगी तो इन सब के लिये हिमालय के निचे घाटियों में बड़े नगर बशाये गये। जैसा की हम जानते है कि काशी को शीव ने बशाया था जहाँ पर राजा हरिश्चन्द कि निलामी हुई थी और एक घटना महाभारत में आती है जब अर्जुन स्वर्ग में जाकर अपने सगे पिता इन्द्र के यहाँ रहता है और वहाँ से कई प्रकार की कला और अश्त्र शश्त्र ले कर आता है। यहाँ हिमालय पर साधना करके शिव को प्रशन्न करके उनसे भी अश्त्र प्राप्त करता है। शीव और हनुमान महाभारत और रामायण दोनों समय में विद्यमान थे। जिससे सिद्ध होता है कि वह लोग जो स्वर्ग में रहते थे लाखों सालों तक जीन्दा रहते थे।

विद्वान वैज्ञानिक विश्वामित्र के द्वारा अन्तरिक्ष में स्वर्ग की स्थापनाः-

राजा हिरिश्चन्द राम के पुर्वज थे, राम के पिता दसरथ, दसरथ के पिता रघु और रघु के पिता अज थे। राम जिस धनुश को धारण करते थे वह अज नाम से ही जाना जाता है। राम के इनसे कई पिढ़ी पहले हरिश्चन्द हुये उनके पिता त्रिशंकु थे। जो महर्षि वैज्ञानिक विश्वामित्र के बहुत बड़े भक्त थे। एक बार महर्षि को भी किसी कारण बश वहा स्वर्ग से निस्काशित कर दिया गया था। क्योंकि वह त्रीशंकु अपने भक्त को भी वहाँ स्वर्ग में स्थान दिलान या रखना चाहते थे। देवतावों ने यह प्रस्ताव ऋषी विश्वामित्र का अस्विकार कर दिया और कारण बताया की वह त्रिशंकु बिलाशी राजा है। जो यहाँ स्वर्ग में रहने योग्य नहीं है। यह देवतावों की बात सुन कर ऋषि बिश्वामित्र को अपना अपमान समझ में आया। इसलिये उन्होने स्वर्ग का त्याग कर दिया और निचे संसार में रहने लगे, देवतावों से अपने अपमान का बदला लेने के लिये उन्होंने एक बहुत बड़ी योजना बनाई त्रीशंकु के साथ मिल कर जो पृथ्वी का चक्रवर्ति सम्राट था। उसके लिये अंतरिक्ष में एक नया स्वर्ग बनाने की।

विश्वामित्र भी पहले एक सम्राट थे वह भी राज्य कर चुके थे। पृथ्वी पर वह त्रीशंकु के पुर्वज थे।

ऋषि विश्वामित्र के संदर्भ में एक बहुत प्रसिद्ध आख्यान प्रचलित है। एक वार ऋषि विश्वामित्र जब सम्राट हुआ करते थे, उस समय एक युद्ध इनका दैत्यों से हुवा था। उसको जित कर विश्वामित्र अपनी लाखों की सेना के साथ वापिस अपने राज्य की तरफ लौट रहे थे। उनकी सेना और वह बहुत थके हुये थे, वह आराम चाहते थे कुछ समय के लिये, उस समय उनके पास कुछ रसद सामान शेष नहीं बचा हुआ था। तभी उनको उन्हें अपने गुप्तचरों के द्वारा ज्ञात हुआ की यहाँ कुछ दूर पर ब्रह्मऋषि वषिष्ट का आश्रम है। तो विश्वामित्र अपने एक सेवक को भेजा वषिष्ट के आश्रम में भेज कर याचना कि उनके लिये और उनके सेना के लिये कुछ रसद खाने पिने का सामान उपलब्ध करायें, वषिष्ट ने उत्तर में कहलवाया की ठीक है। आप सब आराम करें, कुछ समय में सभी सामग्री आप सब के पास पहुंच जायेगी।

इस तरह से विश्वामित्र कि सेना और वह स्वयं आश्रम के समिप एक नदी किनार अपना पड़ाव डाल दिया। जैसा की उनको बताया गया था कि कुछ समय में सभी वस्तु उनके पास पहुंच जायेगी। ठीक वैसा हुवा थोड़े ही समय में सभी सेना के लिये खाने पिने रहने के लिये सभी प्रकार का पर्याप्त सामान पहुचा दिया गया, यह जान कर विश्वामित्र को बहुत आश्चर्य हुआ। जो कार्य मैं पूर्ण करने में बिवश हो रहा हुं इस जंगल में वह कार्य एक साधु ने इतना जल्दि कैसे संभव कर दिया? इस कारण को जानने के लिये वह स्वयं वषिष्ट से मिलने के लिये उनके आश्रम में गये और ब्रह्म ऋषि वषिष्ट से विश्वामित्र ने पुछा की आप ने यह सब कैसे किया? इतने बड़े लाव लस्कर सेना को तृप्त कर दिया। तब ब्रह्म ऋषि वषिष्ट ने अपने पास विद्यमान एक गाय काम धेनु के बारे में बताया कि यह सब इस तो काम धेनु गाय ने किया है। यह वहीं कामधेनु थी जो देवता और दैत्य के समन्दर मंथन के समय मिली थी। यह समन्दर मंतन का मतलब हो कि देवता और दैत्यों दोनों ने एक साथ मिल कर अंतिरक्ष की खोज कि थी जिसमें से उन सब को कई ऐसे ग्रह मिले थे जहाँ पर जिवन उपलब्ध था और वह सब इन सब से भी अधिक विकसित थे। उनकों प्रसन्न करके ही उनसें बहुत सि वस्तुओं को देवता और दैत्यों ने प्राप्त किया था। जिसमें से ही एक यह कामधेनु गाय भी थी। यह जानकर विश्वामित्र काम धेनु को देखना चाहा। जब ब्रह्मऋषि ने, विश्वामित्र को काम धेनु गाय का दर्शन कराया तो उसको देखकर विश्वामित्र बहुत मोहित हो गये और उन्होंने वह कामधेनु को अपने महल में ले जाने की इच्छा जाहिर कर दी। यह काम धेनु जो सागर मंथन से निकली थी जिसको देवता और दैत्यों ने मिल कर किया था। ब्रह्मऋषि वषिष्ट ने कहा यह तो कामधेनु स्वयं निश्चय करती है। की इसे कहा रहना है। कामधेनु ने विश्वामित्र के महल में जाने से मना कर दिया। विश्वामित्र ने अपनी सभी प्रकार की नितियों का प्रयोग किया कामधेनु को अपने महल में लाने के लिये। साम, दाम, दण्ड, भेद लेकिन वह किसी प्रकार से सफल नहीं हुये। अन्त में उन्हें अपनी पराजय स्विकार करनी पड़ी। फिर उन्होंने अपने पास के सभी विद्वान मंत्री से मंत्रणा की यह कैसे संभव हो गया? की कामधेनु एक सम्राट को छोड़ कर आश्रम में क्यों रहना चाहती है? तब उनके सभी विद्वान मंत्री सहयोगीयों ने बताया की वषिष्ट कोई साधारण मानव नहीं ब्रह्मऋषि है। विश्वामित्र ने कहा कि क्या वह सम्राट से बड़े है? उनको उत्तर मिला हाँ महाराज इस तरह से विश्वामित्र ब्रह्मऋषि वषिष्ट के सरण में आकर राज्य का त्याग कर दिया और ब्रह्मऋषि के

साधना में तल्लिन हो गये काफी समय के बाद वह ब्रह्मऋषि की उपाधी से ब्रह्मऋषि वषिष्ट द्वारा सम्बोधित किये गये और उनको स्वर्ग में अस्थान मिल गया वहाँ बहुत समय रहने के बाद जब त्रीशंकु को बचन देने के कारण स्वर्ग का त्याग कर दिया और एक नया स्वर्ग बनाने में जुट गये। इन्ही विस्वामित्र ने आगे चल कर आई हुई मेनका नाम कि अप्सरा से विवाह किया जो इनकी तपस्या को भंग करने के लिये स्वर्ग से आई थी। जिसको देवताओं के राजा इन्द्र नें भेजा था। क्योंकि उनको अपने स्वर्ग के सिंहासन को खतरा विस्वामित्र की तपस्या से मुहशुष हो चुका था। जिस मेनका से ही शकुन्तला का जन्म हुआ। जो महर्षि कणाद के आश्रम में रहती थी। जहाँ पर उसकी मुलाकात राजा दुष्यन्त से होती है जिससे वह गन्धर्व विवाह करती है और उन दोनो से ही राजा भरत का जन्म होता है। जिससे कौरव और पांडव वंश का उदय होता है। जिसका महाभारत में उल्लेक मिलता है। यह विश्वामित्र काफी लम्बे समय तक इस पृथ्वी पर जीवित रहे थे।

महर्षि विश्वामित्र जो एक महान वैज्ञानिक थे अपने शिष्यों के साथ मिलकर त्रीशंकु को जीवित स्वर्ग में पहुंचाने के लिये, उन्होंने एक नये उपग्रह स्वर्ग के नाम से अंतरिक्ष में निर्वाण किया और उसे पृथ्वी और चंद्रमा के मध्य में स्थापित कर दिया, वह पुरी तरह से मानव निर्मित एक उपग्रह था। वहाँ मानव को रहने की सभी सुबिधायें थी, वह एक कृतिम उपग्रह था। जैसा कि आज के समय में अमेरिका, चाईना, रुश आदि देशों ने अपना एक स्पैश स्टेशन अंतरिक्ष में बना रखा है, यद्यपि यह बहुत छोटे है। यहाँ पर कुछ एक मानव वैज्ञानिक सोध करने के लिये रहते है, भविष्य में मानव यहाँ पर घुमने जा सकता है। जहाँ पर कल्पना चावला जा कर जब वापिस आ रही थी, उसका स्पैश क्राफ्ट रास्ते में ब्लास्ट कर गया, जिससे उस स्पैशक्राफ्ट के सभी सात सदस्य कल्पना चावला समेत मारे गये थे। वहाँ भारतिय मुल की सुनिता बिलियम्स भी जा कर आ चुकी है।

विश्वामित्र का बनाया गया उपग्रह काफ़ी बड़ा और सब प्रकार की सुख सुबिधा समपन्न था वहाँ पर त्रीशंकु अपने काफी आदमियों के साथ रहने लगे। लेकिन यह बात और दूसरे देवता वैज्ञानिक ऋषि जो हिमालय के स्वर्ग पर रहते थे उन्हें अच्छी नहीं लगी कि कोई उनसे श्रेष्ठ अस्थान पर रहे और उनसे अच्छा जीवन जीये। क्योंकि जो स्वर्ग महर्षि विश्वामित्र ने बनाया था। वहाँ रहने वाले की उम्र भी बढ़ जाती थी और बहुत प्रकार कि सुबिधा थी, जो पृथ्वी पर विद्यमान स्वर्ग था वहाँ के लोगों को गवारा नहीं था। उन सब ने विश्वामित्र को निचा दिखाने के लिये बहुत प्रकार के सणयंत्र रचने लगे। जिसमे सबसे पहले विश्वामित्र को जहाँ से सबसे अधिक धन मिलता था। अर्थात त्रीशंकु के राज्य से जो अब उनके पुत्र राजा हरिश्चंद के अधिपत्य में चलता था। सभी देवता गण राजा हरिश्चंद को झुठा और असत्य सिद्ध करने के लिये संसार में प्रचारित करने लगे, गुप्त रूप से यह हरिश्चन्द को बहुत बुरा लगा। उन्होंने सम्पूर्ण संसार में अपनी प्रतिष्ठा को सिद्ध करने के लिये, यह घोषणा कर दि की जो कोई उनको झुठा सिद्ध कर देगा वह उन्हें अपना सर्वश्व दान कर देगें, यहाँ तक राजा हरिश्चंद ने स्वप्न में भी झुठ नहीं बोलने की कसम खा रखी थी। विश्वामित्र को अपने कार्यक्रम अंतरिक्ष में बनाये स्वर्ग के लिये निरनंतर धन की आवश्यक्ता थी वह जानते थे देवता गड़ राजा हरिश्चंद को यदी झुठा सिद्ध कर दिया। अपने सणयंत्र के द्वारा और उनसे राज्य और उनका धन छिन लिया तो स्वर्ग का उनका कार्यक्रम रुक सकता है। या कोई भयानक विध्न पड़ सकता है। यह बिचार कर करके उन्होंने एक योजना बनाई कि राजा हरिश्चंद को भी उनके साम्राज्य समेत स्वर्ग में स्थापित किया जाये और पृथ्वी का त्याग कर दिया जाये, जिससे यहाँ पृथ्वी के दैत्य हिमालय के स्वर्ग के देवता में संघर्ष होगा और हम देवता के सणयंत्र से बच जायेगे और हमारा अंतरिक्ष का स्वर्ग सामाराज्य के साथ सुरक्षित हो जायेगा। यह बात जब राजा हरिश्चंद को महर्षि विश्वामित्र ने उनके स्वप्न में आ कर बताया और कहा कि यह इच्छा उनके पिता की भी है। लेकिन राजा हरिश्चंद को अपनी सत्य के प्रति निष्ठा और संसार में अपनी प्रतिष्ठा अपने पिता त्रीशंकु की इच्छा से बहुत अधिक बहुमूल्य था। वह किसी किमत पर पृथ्वी को छोड़ना नहीं चाहते थे। भले हि इसके लिये उनको अपना सर्वस्व राज्य पाठ धन, सम्पदा, मान, मर्यादा सब कुछ दाव पर लगाना पड़े। वह बिल्कुल तैयार थे। उनके साथ उनकी पत्नी और उनका बेटा भी तैयार था। जब महर्षि विश्वामित्र और त्रीशंकु को यह ज्ञात हो गया कि किसी भी प्रकार से राजा हरिश्चंद अपने बचन से अडिग नहीं होने वाला है। सत्य मार्ग से जो इसके सर पर चढ़ गया है। इससे इसका सब कुछ छिन लिया जाये तो सायद दुःखों के थपेड़ों और कष्ट पूर्ण क्लेशों कि आधियों से बौखला कर हमारी सरण में आ जाये। त्रिशंकु

की सहमति से महर्षि विश्वामित्र ने राजा हरिश्चंद से कहा कि मैं अगले दिन सुबह तुम्हारे दरबार में आउंगा और तुम अपना सब कुछ जो राज्य पाठ तुम्हारे पिता के द्वारा तुम्हे मिला है। उनकी आज्ञा का पालन न करने के कारण मुझे दान कर देना, जिसके लिये राजा हरिश्चंद तैयार हो गये। सुबह होने पर जैसे ही दरबार लगा राजा हरिश्चंद सिंहाषन पर बिराजमान हुये तभी महर्षि विश्वामित्र उनके सामने उपस्थित हो गये और अपना स्वप्न में आने की बात का याद दिला राज्य को लेने कि बात की, जिसके लिये राजा हरिश्चंद सहर्ष तैयार हो गये और वह अपनी पत्नी और पुत्र को साथ लेकर भिखारी के भेष में राज्य से बाहर जाने के लिये तैयार हुये। तब महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि यह दान जो तुमने दिया है। यह सब तुम्हारे पिता कि बिराषत है। तुम्हारी स्वयं की नहीं है, इसके अतिरीक्त तुम्हें दक्षिणा देना होगा पांच सहस्त्र जो तुम्हें कही और से पांच दिन में व्यवस्था करना होगा, इसके लिय भी राजा हरिश्चंद तैयार होगये और राज्य से प्रस्थान किया। बहुत दुःखों कष्टों पिड़ावों को सह-सह कर चुर हो गयें भुखे प्यासे, उनकी कोई सहायता करने वाला नहीं खड़ा हुआ। क्योंकि जो उनकी सहायता करने का प्रयाश करता वह देवताओं और महर्षि विश्वामित्र के कोप का भाजन बनता था। जिससे किसी कि हिम्मत ही नहीं हुई, की वह राजा हरिश्चंद और उनके परिवार की किसी प्रकार से सहायता कर सके. इसके अतिरिक्त रोज महर्षि विश्वामित्र अपने दक्षिणा को लेने के लिये निरंतर दबाव बनाते रहते थे। क्योंकि महर्षि विश्वामित्र नहीं चाहते थे कि यह राजा हरिश्चंद केवल सत्य और अपने बचन कि रक्षा के लिये महान अशहनिय कष्टों को सहे। वह समझते थे राजा हरिश्चंद झुक जायेगें और अपने बचन से बिमुख हो जायेंगे। लेकिन यह नहीं हो सका राजा हरिश्चंद ने भयानक कष्टों को सहा और अंत में कई दिनों में अयोद्धा से काशी शिव की नगरी पहुचें गये। जहाँ उनको कोई पहचानता नहीं था वहाँ एक चौराहे पर खड़े हो गये जहाँ दाश-दाशियाँ बिकते थे वहाँ पर वह अपने पत्नी और बच्चे को एक व्यापारी के हाथों में बेच दिया और स्वयं को एक डोम (धैइकार) को बेच दिया। जिससे उन्हे पांच शहश्त्र स्वर्ण मुद्रायें मिली जिसे उन्होंने प्रेम से महर्षि विश्वामित्र का दक्षिणा रूप ऋण दे कर उऋण हुये। स्वयं को डोम के सम्सान घाट पर मुर्दा फुंक-फुंक कर जीवको पार्जन करने में लगा लिया और पत्नी बच्चा उस ब्यापारी के घर की दाशी बन कर जीवको पार्जन करने लगे।

विश्वामित्र अपने साथ अपना सारा धन सामराज्य और स्त्री-पुरष, पशु, धन इत्यादि सामग्री को लेक कर अपने बनायें स्वर्ग में चले गयें और वहाँ उसका बिस्तार करने लगें।

जब हिमालय के देवताओं को अपनी योजना सफल होती नजर नहीं आई महर्षि विश्वामित्र के स्वर्ग का विस्तार उनकी आंखों तिनके की तरह दुखने लगा। वह सब यह बर्दास्त नहीं कर पा रहे थे। कि उनके स्वर्ग से निस्कासित किया गया कोई महर्षि या राजा कैसे अपने लिये अन्तरिक्ष में स्वर्ग बनाकर रह सकता है? यह उनके सम्मान और साधारण जनों में उनके प्रति लोगों की आस्था भी बहुत कम होने लगी थी और ज़्यादा से ज़्यादा लोग अब महर्षि विश्वामित्र के द्वारा बनाये हुये स्वर्ग में राजा त्रिशंकु के साथ रहना चाहते थे। यह सब पृथ्वी पर उपस्थित स्वर्ग के देवताओं को कदापि गवारां नहीं था। कि उनके प्रति लोगों कि आस्था कम हो, यह उन सब के अस्तित्व को लेकर बहुत बड़ा खतरे का संकेत था और दूसरा कारण था कि पृथ्वी और चंद्रमा के मध्य में स्थित बनाये गये, महर्षि विश्वामित्र का स्वर्ग अपना सारा कार्य सौर्य उर्जा से करता था। जिसके कारण पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में सूर्य का प्रकाश भी ना मिलने से पृथ्वी ठंडी होने लगी थी और यहाँ पर जीवन के लिये खतरा मंडराने लगा। यदि ऐसा ही चलता रहा कुछ हजार या लाख साल में पृथ्वी पर कोई मानव जीव जन्तु प्राणी जीवित ना बचे और दूसरा कारण बताया गया कि चन्द्रमा का गुरुत्त्वाकर्षण आकर्षण बल कम होगया। क्योंकि उस गुरुत्वाकर्षण बल का उपयोग महर्षि विश्वामित्र नें अपने स्वर्ग को व्यवस्थित रखने में बहु ज़्यादा मात्रा में करने लगे थे। जिसके कारण पृथ्वी पर उपस्थित समंदर में ज्वारभाटा के समय में परि वर्तन आने लगा। सूर्य कि गर्मि कम पड़ने के कारण समंदर का पानी वास्प बहुत कम बनता था और जिसके कारण बारिष की मात्रा पृथ्वी पर कम होगई और इस वजह से पृथ्वी अनाज, फल, सब्जियाँ की पैदावार कम होने लगी थी। लोग हिंसक होने लगे जानवरों प्राणियों को मार-मार कर उनका भोजन के रूप में उपयोग करने लगे। जिसके कारण हिंसक दैत्यों की संख्या में इजाफा होने लगा। हर प्रकार से देवताओं के साथ सभी मानवों पर ग़लत प्रभाव पड़ने लगा। इन

सब जानकारियों से महर्षि विश्वामित्र को परिचित कराया गया और सिफारिश की गई की वह अपने बनाये अन्तरिक्ष को नष्ट करके पृथ्वी वापस आकर बश जायें। लेकिन महर्षि विश्वामित्र ने जबाब में देवतावों को बहुत तिखा उत्तर दिया की जब देवता हमारे उपर ध्यान नहीं दिये जब हम पृथ्वि पर रहते थे। अब जब कि हम अपना सर्वस्व लगाकर बहुत आगें निकल आये है। तो हमे वापिस आने कि बात करके हमे नष्ट करना चाहते है। यह कदापि संभव नहीं है हमारे लिये। यहाँ हमे कोई नुकसान नहीं है। आप अपनी रक्षा किजीये और मेरे से किसी प्रकार के सहयोग कि कामना ना करें।

पृथ्वी के स्वर्ग के देवतावों को जब सकारात्मक परिणाम नहीं मिला। तब उन्हेंने एक बहुत बुरा दूसरा सणयंत्र रचा पहले तो देवतावों का राजा इन्द्र ने त्रीशंकु के पुत्र राजा हरिश्चंद को अपनी तरफ मिलाने कि योजना बनाई।

आगे चलकर गुप्त रूप से सिधा-सिधा राजा हरिश्चंद्र से ना मिल कर इनके परिवार अर्थात इनकी पत्नी शैब्या और पुत्र रोहताश्व को भी इसमें एकत्रित रूप से मिला जाये। जब शैब्या राजा हरिश्चंद्र की पत्नी अपने बेटे रोहताश्व के साथ जिस व्यापारी के यहाँ दासी थी। उसकी पत्नी बहुत दुष्ट और निक्रिष्ट स्वभाव की थी वह शैब्या से बहुत अधिक काम लेती बदले में उसे बहुत थोड़ा भोजन देती थी फिर भी सभी शारिरीक मानसिक। पिड़ाओं को सहकर शाब्या अपनी मालकिन को प्रशन्न रखने का हमेंशा प्रयाश करती रहती थी। फिर भी उसकी मालकिन बहुत नाराज रहती और तरह-तरह के उलाहने निरंतर शाब्या को दिया करती थी। यहाँ तक रोहताश्व से भी वह काम लेती, ऐसा ही चल रहा था, एक दिन रोहताश्व को जंगल में लकड़ीयों को लेने भेज दिया वह लकड़ी लेकर आरहा था। तभी देवताएँ का राजा इन्द्र उसे काटने के लिये एक सांप भेज दिया जिसने रोहताश्व को काट लिया। जिसके कारण रोहताश्व की हालत बिगड़ गई, यह बात जब शैब्या को मालुम हुई, जब बहुत समय तक रोहताश्व लकड़ी लेकर नहीं आया। तब शाब्या उसकी तलाश में जंगल में गई जहाँ उसने उसे रास्ते में मृत पड़ा पया। तब उसे पता चला कि वह अपने प्रिय पुत्र को खो चुकी है। वह बहुत रोई बिलखी और उसे मरा हुआ मान कर उसके अंतिम संस्कार के लिये अपने गोद में लेकर नदी किनारे रात्री के समय उसी सम्शान घाट पर पहुंची जहाँ पर राजा हरिश्चंद्र पहरा देते थे और मुर्दा जलाने से पहले सभी मुर्दा फुंकने वाले से कर लेते थे। रात्री का समय सायं-सायं करती रात चारों तरफ जलती लाशें इधर-उधरी बिखरी थी। चारों तरफ के वायुमंडल में मांस के जलने की भयानक बदबु से भर रहा था। जहाँ कुत्ते भौक रहें थे वह उस स्थान को और भयानक बना रहे थे। आज भी वह राजा हरिश्चंद्र का मुर्दा फुकने वाला घाट काशी (वाराणसी) में प्रशिद्ध है। जब राजा हरिश्चंद ने देखा कि शब्या को और उसके गोद में उनके बेटे रोहताश्व की लाश है, वह पहचान गये लेकिन अपने सत्य धर्म की रक्षा के लिये उन्हेंने ऐसा व्यवहार किया की दोनो अपरचित है। उन्होंने शब्या से कहा यहाँ किसी शरीर का दाह संस्कार करने से पहले मुझे कर देना होगा। उसके बाद हि तुम कोई दाह संस्कार कर सकती हो। शब्या बिलख-बिलख रोते हुये कहा मेरे पास कुछ नहीं है। शिवाय यह वस्त्र जिससे मैंने अपने शरिर को ढक रखा है। उसमें आधा ले सकते तुम दाह संस्कार करने के बदले में। जिसके लिये रजा हरिश्चंद्र तैयार हो गये। शैब्या अपनी साड़ी को फाड़ने के लिये हाथ बढ़ाया तभी देवतावों का राजा इन्द्र उन दोनो के मध्य प्रकट हुआ और कहा कि अब बहुत हो गया तुम जीत गये राजा हरिश्चंद सत्यवादी हो धर्मात्मा हो। मैं तुम्हें इस कृत्य से मुक्त करता हूँ और तुम्हारे पुत्र को जीवित करता तुम सब अब हमारे साथ रहो हम तुम्हे अपने साथ रखते है। इस तरह से हरिश्चंद्र देवतावों के साथ हो लिये।

राजा हरिश्चंद्र की सत्यनिष्ठा और धार्मिक्ता के प्रति समर्पण से प्रशन्न हो कर महर्षि विश्वामित्र ने उनका राज्य पुनः हरिश्चंद्र को वापिस दे दिया। त्रीशंकु राजा हरिश्चंद्र के पिता सत्यब्रत अपना सब कुछ यहाँ तक स्वर्ग को भी जो महर्षि विश्वामित्र ने उनके लिये बनाया था। उसे भी राजा हरिश्चचंद्र को दे दिया जिसको राजा हरिश्चन्द्र ने देवताओं के हवाले कर दिया।

इस स्वर्ग को नष्ट करने के लिये महर्षि अगस्त ने भयानक अश्त्रों का उपयोग करके उसको वहीं पर गला दिया। अर्थात उसको धिरे–धिरे गला कर एसिड के रूप में करके वारिस के पानी के साथ पृथ्वी पर वरसा कर समन्दर के पानी में मिला दिया। जिसके कारण ही समन्दर के पानी में एसिड कि मात्रा अधिक हो गई और समुद्र का पानी अत्यधिक खारा हो गया। आज भी आकाश से तेजाब कि वर्षा होती है इसका कारण है कि समन्दर के पानी के साथ ज्वलनशील एसिड भी वास्प बन कर आकाश में जाती है और वह पानी के साथ वरसता है इस पृथ्वी पर। लेकिन जब लोहा और स्टिलादि पदार्थ जैसे सिसा इत्यादि को अत्यिधिक गर्म किया जाता है यह कार्बन बनता है। कार्बन को भी जलाया जाये तो यह तेजाब के रूप में बनता है। यह प्रकृत से तेलिय होता है जिससे यह पानी के साथ अभिकृया कर सकता है। यह हाईड्रोजन के अणु को बनाता है। जिस प्रकार से पेट्रोल, डिजल इत्यादि होते है। यह स्वभाव से ज्वलनशील होते है। लेकिन एसिड की तरह नहीं होते है जो मानव अंगों को गला दे। एसिड हि एक ऐसा पदार्थ है जो लोहें को भी गला सकता है। जो हमारे शरिर में भी पाया जाता है जिसे अम्ल कहते है। अम्ल एक रासायनिक यौगिक है, जो जल में घुलकर हाइड्रोजन आयन (H+) देता है। इसका pH मान 7.0 से कम होता है। जोहान्स निकोलस ब्रोंसटेड और मार्टिन लॉरी द्वारा दी गई आधुनिक परिभाषा के अनुसार, अम्ल वह रासायनिक यौगिक है जो प्रतिकारक यौगिक (क्षार) को हाइड्रोजन आयन (H+) प्रदान करता है। जैसे–एसीटिक अम्ल (सिरका में) और सल्फ्यूरिक अम्ल (बैटरी में) । अम्ल, ठोस, द्रव या गैस, किसी भी भौतिक अवस्था में पाए जा सकते हैं। वे शुद्ध रूप में या घोल के रूप में रह सकते हैं। जिस पदार्थ या यौगिक में अम्ल के गुण पाए जाते हैं वे (अम्लीय) कहलाते हैं। मानव आंत्र में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की अधिकता से होने वाली बीमारी को अम्लता या एसीडिटी कहते हैं।

यह अगस्त ऋषि कोई और नहीं पुलस्त के ऋषि के दो पुत्रों में से एक पुत्र थे। पुलुस्त ऋषि का दूसरा पुत्र विश्वश्रवा ऋषि थे जिन्होंने दो विवाह किया था। पहली पत्नी से कुबेर और ताड़का उत्पन्न हुए थे। दूसरी पत्नी से रावण आदि पैदा हुए थे। इस तरह से देवतावों ने अगस्त ऋषि के साथ मिल कर स्वर्ग को पृथ्वी को बचाया। आगे चल कर अगस्त ऋषि को समझ में आया कि उन्होने ग़लत कार्य किया जिसके कारण रावणादि राक्षसों का उत्पात पृथ्वी पर बढ़ गया था। जिसके लिये राम कि सहायता रावण को मारने में कि और उनको अपने द्वारा निर्मित दिव्य अस्त्रों को दिया और महर्षि विश्वामित्र के बनाये महर्षि विश्वामित्र नें भी राम कि सहायता कि थी कुबेर कि बहन ताड़को को मारने में, इस तरह से यह सिद्ध होता है। ऋषि अगस्त और विश्वामित्र देवता से भी श्रेष्ठ थे। अर्थात यह वैज्ञानिक प्रकार के ऋषि थे। जैसा कि मंत्र में परमेश्वर नें कहा कि वह हमारें पुर्वज ऋषियों का भी पुर्वज है।

3-मैं ही सभी ऐश्वर्यों का पर ऐश्वर्य रूप परम धन हूं

ओ३म् अग्निना रयिम श्र्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्॥ ऋग्वेद 1.3

जैसा कि परमेंश्वर ने हम सब को बताया कि वह परम अग्नि रूप पुरुष रूप कल्याण का कारक है। दूसरे मंत्र में कहा कि वह सभि हमारे ऋषियों का पुर्वज है। इश मंत्र में प्रभु परमेश्वर उपदेश कर के कह रहे है कि मैं सब से बड़ा धन हूं। यह धन परमेश्वर का प्राप्त करने के लिये भी तिन मार्ग है पहला मार्ग है अपने अन्दर इस उर्जा मय अग्नि को संचय करो, दूसरा इस संचय उर्जा मय शक्ति का सद उपयोग करके, अपने जीवन के परम उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये इस उर्जा को खर्च करके धनार्जन करो। यह भौतिक अग्नि नाम कि वस्तु ही सब से बड़ा धनार्जन का प्रमुख श्रोत है। इसकि स्तुती स्तवन अर्थात साधना के द्वारा इसका सही उपयोग पालन पोषण का परम साधन करके अपने दिन रात के जीवन को सुख मय ऐश्वर्यशाली यश युक्त करके विरता पुर्वक अपनी चुनौतियों का समाधान करो।

यह मंत्र बहुत ही गुढ़ और दिव्य अलौकिक ज्ञान का उपदेश कर रहा है। इसमें मुख्यतः कई बातें है पहली बात है कि यह अग्नि एक शक्ति है, दुसरी बात इसका उपयोग तरह-तरह से करके अपना पालन पोषण करते हुए. अपने जीवन के हर दिन और रात के साथ उन्नति और बृद्धि को उपलब्ध हो।

अग्नि रूप परमात्मा कि कर्म रूप उपासना के द्वारा साधक परम धन को उपलब्ध करता है। यह परम धन सारे धनों में सर्वश्रेष्ठ धन है जिसे विद्या धन या ज्ञान कहते है और इसी धन का उपयोग करके साधक स्वयं भौतिक धन सम्पन्न करता है जिस धन के द्वारा ही उसका हर प्रकार से पालन पोषण होता है और वह साधक अपने जीवन के प्रत्येक दिन रात में नये-नये सिखरों को चढ़ता है, जिससे उसका नाम प्रसिद्धि प्रतिष्ठा यश संसार में निरंतर बृद्धि होती है। जिससे वह साधक बहुत अधिक बलवान विर्यवान शक्ति शाली बनता है। हर तरफ उसकी चर्चा और उसके ही प्रशंश होते है।

इस मंत्र के उपदेस को और बिस्तार से समझने के लिये हमें इसको और गहराई से चिन्तन करना होगा। जब कोई व्यक्ती इस जगत में जन्म लेता है तो ज़रूरी नहीं है कि वह जन्म से ही सर्वगुण सम्पन्न हो। यद्यपि उसको स्वयं को सर्वगुण समपन्न बनाने के लिये पुरुषार्थ करना पड़ता है, यह मंत्र और इसका उपदेस प्रारंभ में ही विद्यार्थि को दिया जा रहा है कि वह अपने अन्दर विद्यमान आत्मा रूपी अग्नि को जाने और उसकी साधना के द्वारा उसके ज्ञान के द्वारा स्वयं को समर्थवान बनाने के लिये, अपने शरीर कि उर्जा विर्य का निरंतर संचय करके ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अपने मन, वुद्धि, चित्त और अहंकार का पूर्ण हर प्रकार से विकास करें जीवन संग्राम को लड़ने के लिये। यदि वह विद्यार्थी इसका सही उपयोग करता है तो वह विद्यार्थी आगे चल कर अपने गृहस्थ जीवन में उसको धन समपन्न होने कि संभावन अधिक बढ़ जाती है। हम आज के संन्दरेभ में यदि देके तो इस संसार के हर क्षेत्र में हमसे पहले एक से बढ़ कर एक विद्वान पहले से विद्यमान है। यदि हमे कुछ इस संसार में अपने जीवको पार्जन के लिये करना है तो हमें उनसे हट कर उनके द्वारा बताये गये मार्ग और ज्ञान के अतिरिक्त कुछ नयें संसाधनों का और-और नयें मार्गो का खोज करना होगा। क्योंकि यह संसार निरंतर गती कर रहा है। इस में रोज-रोज नई नई खोजे और आविस्कार हो रहे है। इनको हमें जानने के लिये इनका अध्ययन करना होगा और वह सब भी एक निश्चित समय में, क्योंकि जिस ज्ञान को हम अपने प्रारंभिक जीवन में प्राप्त करते है उस ज्ञान का ही हम अपने अग्रणी जीवन में उपयोग करके अपना जीवको पार्जन करते है और उशी से हम सब अपना पालन पोषण करते है।

हम सब एक प्रकार से विज कि तरह है, हमारे विकास के लिये हमें उपयुक्त जमिन चाहिये। जिस जमिन में हम रह कर अपनी जड़े जमा सके जिससे हमारा अंकुरण हो सके, अंकुरण के बाद हम सब एक बृक्ष के रूप में विकसित हो जाते है जिसमें जड़, तना, शाखा, पत्ते, फुल और फल लगते है। यह एक प्रक्रिया है, विज से फल तक कि माना विज सब हो यदि उनको उपयुक्त जमिन ना मिले या जमिन मिले भी तो वह बंजर हो रेगिस्तान हो जहाँ पर उस विज का विकास होना या तो बहुत मुस्किल होता है या असंभव होता है। इस स्थिति में जब विज का अंकुरण ही नहीं होता तो वह वृक्ष कैसे बनेगे? और जब वृक्ष ही नहीं बनेगे तो उसमें से फल या पुल आने कि सम्बावन ही कहाँ रह जाती है? इस तरह से हम ईश्वर को दोष देते है कि हमारा नसिब खराब है, संसार में सभी समपन्न है हमे ही क्यों निर्धन है, संसार में सभी विद्वान है औप हम क्यों मुर्ख है, या फिर संसार में बहुत सारे ताकतवर है शक्तीशाली लोग है और हम कमजोर क्यों है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर देने के लिये ही परमेश्वर कहता है कि मैं अग्नि स्वरूप सारें धनों का प्रमुख श्रोत और परम दन हूँ मुजे जानो। या फिर इस तरह से कहे की यह आत्मा रूपी अग्नि ही सारे धनों का सबसे श्रेष्ठ धन है, यह धन है जो विज रूप है इसको तुम्हे विकसित करना है इसके लिये तुम्हें उचित जमिन तैयार करना होगा। यहाँ जमिन का मतलब है हमारी शरीर से है, हमे अपने शरीर का पूर्ण विकास करना होगा। हमारे समाज में अक्सर ऐसा होता है कि हमारी शरीर का समग्र विकास नहीं हो पाता है, उसके पिछे कई कारण है, पहला कारण है सही मात्रा में आहार, विहार, व्यायाम। आज हमारे समाज में सबसे बड़ी महामारी है कि सभी को परयाप्त मात्रा में उचित भोजन भी नहीं उपलब्ध है।

यहाँ हम अपने समाज में यह प्रायः देखते है कि हर आदमी असमर्थ क्यों है? अभी हमारे एक लेख पर एक महोदया ने कहाँ कि आप अपनी वर्तनि को सुधारें जिससे शब्दों को समझने में आसानी होगी। इसमें दो बातें उभर कर आ रही है। पहली बात कि जिसने भी यह लिखा है कि वर्तनि को सुधारें, चलिये हम मान लेते है कि वर्तनि में कुछ गल्तियाँ अवश्य होगी, इसमें शब्दों को समझने में कहाँ से समस्या आने लगी, जो कह रही है कि शब्दों को समझने में आसानि होगी। अर्थात उनके कहने का मतलब है कि उनको शब्दों को समझने में कठिनाई हो रही है। इसका मतलब यह भी निकलता है कि उनके पास शब्द ज्ञान नहीं है। हमारा उद्देश्य यहाँ पर यह नहीं है। कि हम शब्दों का ज्ञान दे और वह शब्द समझने में आसान हो, यद्यपि हमारा उद्देश्य है कि मुझे जो समझ में आता है जिसको मैने अनुभव किया है उसको मैं बाटता हूं। यह तो उसी प्रकार से हो गया कि जैसे एक आदमी प्यासा है और उसको पिने के लिये पानी दिया जाता है जो कुयें से निकाला गया है और प्यासा आदमी कहता है मुझे तुम शुद्ध पानी रिफाइन किया हुआ दो जिससे मुझे ज़्यादा सुख मिलेगा, क्योंकि यह पानी पचने में दिक्कत दे रहा है? इसका मतलब यह हुआ कि आदमी का पाचन तंत्र कमजोर है। वह प्राकृतिक चिजों को पचाने का सामर्थ नहीं रखता है। उसे कृतिम चिजे पचाने में ज़्यादा सुबिधा जनक प्रतित होती है। इसका मतलब यह भी हुआ कि यह आदमी नकली है। इससे यह ज्ञात होता है कि सरलता कि तरफ लोगों का झुकाव अत्यधिक हो चुका है। जिससे उनको थोड़ा भी कठिन विषय समझने में दिक्कत आने लगती है। इस तरह से आदमी अपनी असमर्थता को व्यक्त कर रहा है? जिसें मैं आसानी से समझ सकता हूँ। इस दुनिया में कोई भी कार्य आसान कहाँ है? हर कार्य बहुत कठिन और मुस्किल है, आप जिस कार्य को आसान समझते है। उसको एक बार करके देखें, तो आपकों यह बखुबी ज्ञान हो जायेगा कि जिस कार्य को हम आसान समझते थे। वह कार्य बहुत कठिन और दुसाध्य है। क्योंकि हर कार्य का जो चरमोंत्कर्ष है। वहाँ पर उस विषय का एक विशेषज्ञ पहले से विद्यमान है, जिसके पास सारकारी प्रमाण पत्र भी होता है। जो किसी दूसरे के कार्य को ग़लत या उसमें त्रुटि निकालने के लिये तैयार है। इस तरह से हम किस भी कार्य को यह नहीं कह सकते है। कि वह पूर्ण रूपेण शुद्ध और ठीक है। जो सबके लिये आसान और फायदे मंद ही होगा। इसका हमारे पास कोई गारंटी नहीं है। कोई भी कार्य किसी के लिये फायदेमंद होता है और उसे अच्छा लगता है और वह करता है और वहीं कार्य किसी दूसरे को बुरा लगता है। जिससे उसको नुकसान समझ में आता है। जिस प्रकार से हम अपने समाज में देख सकते है। कि हमारी सरकारें हर तरफ से यह प्रयाश करती है। कि लोगों को ज़्यादा से ज़्यादा जागरुक किया जाये जो नशिली वस्तुयें है, जिससे लोगों का स्वास्थ्य खराब होता है, जिसके कारण लोग

बीमार होते है और अपना बहुत मेहनत से कमाये हुए धन को अपने स्वास्थ्य के लिये खर्च करते है। जिसमें से अधिकतर लोग मृत्यु के शिकार होते है, जिसका कारण सिगरेट, बिड़ी, गुटका, तम्बाकु, उत्पाद के अतिरिक्त, गाजां, भांग अफिम, शराब, स्मैक, ब्राउनसुगर, का अत्यधिक उपयोग है। लोग यह जानते है कि यह नुकसान दायक है, फिर भी लोग खुब इसका उपयोग करते है। इसमें दो बातें है पहली बात कि लोग कमजोर हैं उनकी इन्द्रिया कमजोर है वह सब लाचार बेवश और असमर्थ है। दूसरी बात यह कि उनको कमजोर निरंतर बनाया जा रहा है। जिससे उनका भरपुर शोषड़ हो सके जिसको बेचने के लिये बहुत बड़े-बड़े अभिनेता और व्यापारी लगे है। उसका दिन रात प्रचार करके जो बेकार और जहर के समान वस्तु है। उसको भी अमृत बता कर बेचा जा रहा है। जिससे वह सब लोग बहुत चाह कर भी स्वयं को इस लत से मुक्त नहीं रख सकते है। दूसरा कारण है जो व्यक्ति इस व्यापार में लगे है। वह कभी भी नहीं चाहते है कि उनका यह व्यापार किसी भी सर्त पर कभी भी बन्द हो। क्योंकि इससे उन सब को बहुत अधिक फायदा होता है? जिसमे सरकार को भी फायदा होता है, जिससे सरकार भी यह नहीं चाहती कि यह सब बाज़ार में बिकना बन्द हो। इसी तरह और भी बहुत सि वस्तुये है जो समाज के लिये बहुत अधिक हानिकारक है जो समाज का सर्वनाश कर रही है। हर तरफ से, जैसे आज हमारे समाज में हर वस्तु में मिलावट हो रही है। ना पानी शुद्ध मिल रहा है ना हि दुध ही शुद्ध मिल रहा है। जो पानी शुद्ध पानी के रूप में बाज़ार बेचा जा रहा है वह नुकसान दायक सिद्ध हो रहा है। दुध के नाम पर पाउडर और पानी बेचा जा रहा है। सब्जीयों में, अनाज में, दवा में सब में मिलावट हो रही है। हर क्षेत्र में आज स्मगलिंग हो रही है। दवा, के नाम पर भोजन के नाम पर, हथियार के नाम पर, नशा के नाम पर। मैं ऐसा नहीं समझता कि कोई ऐसा क्षेत्र अभी बचा है कि जिसमें अशुद्धता नहीं हो रही है, मिलावट नहीं हो रही है। हमारे समाज में किसी वस्तु को शुद्ध वस्तु को प्राप्त करना आज उथना ही मुस्किल है जितने मुस्किल कार्य है मिट्टि में सोना को निकालना। यह कार्य आसान नहीं है और आज के समय में आदमी कोई भी कार्य में सरलता चाहता है। आदमी का स्वाभाव बन गया है कि वह कठिनई से भागने का और सरलता कि तरफ हर आदमी का झुकाव बढ़ गया है। जिस प्रकार से पहाड़ी पर चढ़ना हमेशा कठिन होता है। उसी पहाड़ी से उतरने में बहुत सरलता होती है। पहाड़ी भी सहायता करना चाहती है। क्योकि वह पहाड़ी नहीं चाहती है कि कोई आसानी से उसके उपर पतह करें? जो हिमालय के शिखर पर चढ़ते है उनको बहुत कठिनाईयों का समना करना पड़ता है। लेकिन जो हिमालय के शिखर से निचे उतरते है उनको आसानी होती है। क्योंकि हिमालय उनकी सहायता करता है उनको निचे उतरने में? जिस प्रकार से पानी को हमेशा निचे यात्रा करने में प्रकृति का गुरुत्वाकर्षण करता है। उसी प्रकार से यह प्रकृति आग की सहायता करती उपर चढ़ने में। इस संसार में जो उपर किसी तरह से पहुंच चुके है। वह कभी भी नहीं चाहते है कि कोई उस स्थान पर दूबारा चढ़े जिससे उनके अहंकार को चोट पहंचती है और वह तरह-तरह से हर प्रकार से कठिनाईया उपस्थित करते है उपरे चढ़ने वाले के लिये। जिस प्रकार से संसार में सरकारें और उद्योगपति, अभिनेता इत्यादि संसार में समाज का शोषड़ करते है। क्योंकि इसमें उनके रस आता है। जैसा कि वेदों मेंआता है समानता के अधिकार के बारे में क्या यहाँ समानता का अधिकार हम समाज में सब को उपलब्ध करा पाने में कभी सफल हो सकते है? पतन के और भी अनंत मार्ग है जो समाज में प्रचारित किये जा रहे है। कि इनसे कल्याण मानव का होता है। जिसकी जाल में यह भोला भाला मानव फस कर अपने जीवन की दुर्गति करता रहता है। वहुत कम ही मानव है जो यहाँ पर समर्थ है यद्यपि वह भी इस समाज औऱ मानव के व्यवहार से दुःखी है इसली लिये तो कहते है कि सर्वे विवेकिनः संसार दुःखः॥ संसार को दुःख पुर्ण बनाया गया है और यहाँ हर आदमी को परतन्त्रता में ही सुख दिखाई देती है यह माया नहीं तो क्या है? उसे ऐसा दिखाया जाता है जिसके कारण ही आदमी कि समझ में निरंतर अवनति हो रही है और वह कहता है कि वह विद्वान है क्योंकि सके पास विश्वविद्यालय कि उपाधी है जो यह सिद्ध करती है।

तमाम योजनाओं के ऐलान और बहुत सारे वादों के बावजूद देश में भूख व कुपोषण से प्रभावित लोगों की संख्या बढ़ रही है। हम एक ऐसे देश के निवासी है जहाँ बड़ी संख्या में लोग भूख और कुपोषण के शिकार हैं। हो सकता है यह बात लोगों को बुरी लगे लेकिन आंकड़े यही हकीकत बयाँ करते हैं। भारत को वैश्विक महाशक्ति और वैश्विक गुरु बनाए जाने के जुमलों के बीच आई एक रिपोर्ट हमारी पोल खेलती है। इंटरनेशनल

फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट (आईएफपीआरआई) की ओर से वैश्विक भूख सूचकांक (ग्लोबल हंगर इंडेक्स) पर जारी ताजा रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया के 119 विकासशील देशों में भूख के मामले में भारत 100वें स्थान पर है। इससे पहले 2016 की रिपोर्ट में भारत 97वें स्थान पर था। यानी इस मामले में साल भर के दौरान देश की हालत और बिगड़ी है और भारत को 'गंभीर श्रेणी' में रखा गया है। आईएफपीआरआई के अनुसार समूचे एशिया में सिर्फ़ अफगानिस्तान और पाकिस्तान उससे पीछे हैं। यानी पूरे एशिया में भारत की रैंकिग तीसरे सबसे खराब स्थान पर है। भूख से निपटने में भारत अपने पड़ोसी देशों से काफी पीछे रह गया है। रिपोर्ट के मुताबिक चीन (29वें) , नेपाल (72वें) , म्यांमार (77वें) , श्रीलंका (84वें) और बांग्लादेश (88वें) स्थान पर हैं।

वैश्विक भूख सूचकांक चार संकेतकों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाता है। ये हैं-आबादी में कुपोषणग्रस्त लोगों की संख्या, बाल मृत्युदर, अविकसित बच्चों की संख्या और अपनी उम्र की तुलना में छोटे कद और कम वजन वाले बच्चों की तादाद। आईएफपीआरआई की रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में पांच साल तक की उम्र के बच्चों की कुल आबादी का पांचवां हिस्सा अपने कद के मुकाबले बहुत कमजोर है। इसके साथ ही एक-तिहाई से भी ज़्यादा बच्चों की लंबाई अपेक्षित रूप से कम है। भारतीय महिलाओं का हाल भी बहुत बुरा है। युवा उम्र की 51 फीसदी महिलाएँ एनीमिया से पीड़ित हैं यानी उनमें खून की कमी है। गौरतलब है कि हमारे सरकारी आंकड़े भी कुछ इससे इतर बात नहीं करते हैं। इसी साल अप्रैल महीने में केंद्रीय स्वास्थ्य राज्य मंत्री फग्गन सिंह कुलस्ते ने संसद को बताया था कि देश में 93 लाख से ज़्यादा बच्चे गंभीर कुपोषण के शिकार हैं। उन्होंने बताया कि भारत सरकार की एजेंसी राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे (एनपीएसएस) के ताज़ा आंकड़ों के अनुसार, देश में कुल 93.4 लाख बच्चे गंभीर रूप से कुपोषण (सीवियर एक्यूट मालन्यूट्रिशन-एसएएम) के शिकार हैं। इसमें से 10 प्रतिशत को चिकित्सा सम्बंधी जटिलताओं के वजह से एनआरसी में भर्ती की ज़रूरत पड़ सकती है। एक आंकड़े के मुताबिक आज देश में 21 फीसदी से अधिक बच्चे कुपोषित हैं। दुनिया भर में ऐसे महज तीन देश जिबूती, श्रीलंका और दक्षिण सूडान हैं, जहाँ 20 फीसदी से अधिक बच्चे कुपोषित हैं। इसका साफ मतलब यह है कि तमाम योजनाओं के ऐलान और बहुत सारे वादों के बावजूद अगर देश में भूख व कुपोषण के शिकार लोगों की संख्या ये है तो योजनाओं को लागू करने में कहीं न कहीं भारी गड़बड़ियाँ और अनियमितताएँ हैं। एक बात और 12 साल पहले 2006 में जब पहली बार यह सूची बनी थी, तब भी हमारा स्थान 119 देशों में 97वां था। जाहिर है, 12 साल बाद भी हम जहाँ थे, वहीं पर खड़े हैं। यानी इस बीच भारत में कांग्रेस की सरकार रही हो या भाजपा सच्चाई में कोई भी बदलाव नहीं आया है। वैसे यह पहली रिपोर्ट नहीं हैं जो भुखमरी को लेकर इस कटु सच्चाई से रूबरू कर रही है। 2016 में राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (एनएनएमबी) के एक सर्वेक्षण में भी यह बात सामने आई थी। रिपोर्ट में कहा गया था कि ग्रामीण भारत में जहाँ लगभग 70 फीसदी लोग रहते हैं, वहाँ लोग स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक पोषक का कम उपभोग कर रहे हैं।

रिपोर्ट में कहा गया कि ग्रामीण भारत का खान-पान अब उससे भी कम हो गया है, जैसा 40 वर्ष पहले था। इसके अनुसार, 1975-79 की तुलना में आज औसतन ग्रामीण भारतीय को 500 कैलोरी, 13 ग्राम प्रोटीन, पांच मिलीग्राम आयरन, 250 मिलीग्राम कैल्शियम व करीब 500 मिलीग्राम विटामिन-ए कम मिल रहा है। इसमें कहा गया है कि औसतन तीन वर्ष से कम उम्र के बच्चे, प्रतिदिन 300 मिलीलीटर दूध की बजाय 80 मिलीलीटर दूध का उपभोग करते हैं। यह आंकड़े बताते हैं कि क्यों इसी सर्वेक्षण में 35 फीसदी ग्रामीण पुरुष और महिलाएँ कुपोषित और 42 फीसदी बच्चे कम वजन के पाए गए हैं। ऐसे आंकड़े हमारे आर्थिक चमक-दमक के दावों को भोथरा करते हैं, शायद इसीलिए इस पर कोई कार्यवाही करने के बजाय सरकार ने 2015 में इस राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो को ही भंग कर दिया।

फिलहाल ज़रूरत इस बात है भुखमरी से लड़ाई में केंद्र सरकार, राज्य सरकारें और वैश्विक संगठन अपने-अपने कार्यक्रमों को बेहतर स्वरूप और अधिक उत्तरदायित्व के साथ लागू करें। संयुक्त राष्ट्र के अंग खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) में भारतीय प्रतिनिधि श्याम खडका कहते हैं कि भुखमरी से निपटने के लिए

एफएओ ने इस वर्ष विश्व खाद्य दिवस के अवसर पर नारा दिया है, 'प्रवासियों का भविष्य बदलें, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास में निवेश करें। वे आगे कहते हैं,' खाद्य सुरक्षा हासिल करने के लिए कृषि उत्पादन महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि करीब 99 फीसदी खाद्य की आपूर्ति कृषि से होती है। टिकाऊ कृषि और ग्रामीण विकास हमें गरीबी, भूख, असमानता, बेरोजगारी, पर्यावरण क्षरण और जलवायु परिवर्तन जैसे प्रवास के मूल कारणों से निपटने के लिए रास्ता सुझाते हैं। जब तक कृषि का संकट कम नहीं होता, स्वास्थ्य व पोषण के साथ-साथ अन्य बुनियादी ढांचे से जुड़ी समस्याओं का समाधान नहीं होता है। '

वैश्विक हालात भी बदतर

हालांकि, वैश्विक स्तर पर भी आंकड़ा बद से बदतर ही हुआ है। संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन का आकलन है कि पिछले 15 वर्षों में पहली बार भूख का आंकड़ा बढ़ा है। जहाँ एक ओर वैश्विक खाद्य भंडार 72.05 करोड़ टन के साथ रिकॉर्ड तेजी से बढ़ रहा है, वहीं कुपोषित लोगों की संख्या 2015 में करीब 78 करोड़ थी जो 2016 में बढ़कर साढ़े 98 करोड़ हो गयी है आईएफपीआरआई की रिपोर्ट में भी कहा गया है कि दुनिया में भुखमरी बढ़ रही है और जिस तरह के हालात बन रहे हैं उससे 2030 तक भुखमरी मिटाने का अंतरराष्ट्रीय लक्ष्य भी खतरे में पड़ गया है। कुल आबादी के लिहाज से देखें तो एशिया महाद्वीप में भुखमरी सबसे ज़्यादा है और उसके बाद अफ्रीका और लैटिन अमेरिका का नंबर आता है।

इतिहास में पहली बार मानव प्रजाति का भविष्य अनिश्चितता के दौर से गुजर रहा है। मानव समाज ने धरती को अब तक बहुत घायल कर दिया है। यही स्थिति बनी रही तो इस सृष्टि से मानव प्रजाति और उसकी संस्कृति निश्चित ही विलुप्त हो जाएगी। पिछले 200 वर्षों से हमने जीवांश ईंधन का इस कदर दोहन किया कि ऊर्जा प्रदान करने वाले इस द्रव्य के अकूत भंडार खोखले हो चुके हैं। अब प्रकृतिक में संतुलन स्थापित करने हेतु एक मात्र विकल्प यह है कि हमने इस धरती को जो घाव दिये हैं, उनकी भरपाई कर पृथ्वी की आरोग्यता को बढ़ाया जाएँ और सृष्टि के इस ग्रह को चिरायु बनाए रखने के लिए हर सम्भव प्रयास किए जाएं। ऐसा करने के लिए मानव समाज में एकता का संचार और भविष्य के प्रति एक सकारात्मक आश बनाए रखना परम आवश्यक है। देश का नागरिक होने के नाते हमारा कर्तव्य है कि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर इस धरती की रक्षा करें। धरती हमारी माँ है और उसकी रक्षा में ही हम सबकी भलाई और हमारा भविष्य सुरक्षित है। ग्रहों की सीमा का उलंघन और पारिस्थितिकी पर अतिक्रमण: आज मानव द्वारा जीवन के लिए आवश्यक पारस्थितिक प्रक्रियाओं को बाधित करने के साथ धरती की सीमाओं का उलंघन किया-किया जा रहा है। जीवाश्म-ईंधन पर आधारित हावी तकनीक और आर्थिक मॉडल प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण करते जा रहे हैं। यह सब पृथ्वी के लिए विनाशकारी सिद्ध हो रह है। जलवायु संकट, भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी, अपराध, षणयंत्र, युद्ध, जबरन पलायान तथा शरणार्थी संकट ये सभी लोगों से जीवन, आजीविका तथा भूमि को छीन रहे हैं। कुल मिलाकर धरती पर हमारे जीवन का प्रमुख आधार 'मिट्टी' और मानवता दोनों संकट की स्थिति से गुजर रहे हैं। जीवाश्म-ईंधन कोई स्थाई विकल्प नहीं है। इस अस्थाई ऊर्जा स्रोत पर आधारित औद्योगिक कृषि प्रणाली ने अब तक कोई 2 अरब हेक्टेयर कृषि भूमि को बर्बाद कर दिया है। आंकलन करने से ज्ञात होता है कि संकट में पड़ी यह कृषि भूमि पूरी धरती के कुल उपजाऊ क्षेत्र से अधिक है। इसी तरह से अफ्रीका के चारागाहों के अकुशल प्रबंधन से 80 प्रतिशत से अधिक भू-भाग के उत्पादन स्तर में गिरावट आ गई है। औद्योगिक कृषि भी जी.एम.ओ. बीज जीवाश्म-ईधन तथा रासायनिक खादों पर आधारित खेती के समान ही जलवायु पर बुरा प्रभाव डालती है। इस तरह की खेती जलवायु बुरी तरह से प्रभावित करती है। सन् 2000 के बाद समूची दुनिया ने इस वातावरण में कार्बन की लगभग 100 अरब टन मात्रा छोड़ी है। वर्तमान में ग्लोबल वार्मिंग की इस बढ़ती दर के कारण बड़े पैमाने पर जमीन बंजर और फसलें खराब हो रही हैं। एक तरफ जहाँ तटीय क्षेत्रों पर बाढ़ का कहर बरप रहा है तो हिमनदों से तेजी के साथ बर्फ पिघल रही है। वनस्पतियाँ और जंतु तेजी से विलुप्त होते जा रहे हैं। लोग बड़ी संख्या में अपनी स्थाई जगहों को छोड़कर पलायन कर रहे हैं, उनमें भोजन और पानी के लिए संघर्ष तेजी से बढ़ रहे हैं। स्थिति यह है कई तरह की बीमारियाँ देखने और सुनने को मिल रही हैं और

समाज पतन की तरफ जा रहा है। जीवन पर हावी हो रहे 'जीवाश्म-कार्बन' : जीवाश्म-कार्बन ने हमारे जीवन के प्रत्येक पहलू यथा हवा, पानी, भोजन, चिकित्सा, ईंधन और कृषि में हर प्रकार से प्रवेश कर लिया है। वायुमंडलीय उत्सर्जन और पारिस्थितिकी तंत्र में प्लास्टिक प्रदूषण के माध्यम से यह कार्बन हमारी वनस्पति प्रजातियों से लेकर मानव स्वास्थ्य तक को प्रदूषित कर रहा है। प्रकृति ने जल को सभी के लिए स्वतंत्र स्रोतों के माध्यम से उपलब्ध किया था, उसका भी हमने निजीकरण कर दिया है। पीने के पानी को अब बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ प्लास्टिक की बोतलों में भरकर बेच रही हैं। यह प्लास्टिक हमारे पानी के साथ ही हमारे जल-स्रोतों सहित समुद्र का भी नाश कर रहे है, जिससे जीवन संटक ग्रस्त होता जा रहा है। हमारे खेतों की मिट्टी पेट्रो-केमिकल्स रसायनों से पट गई है, जिससे इस मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीवों का नाश हो रहा है। जीवाश्म-कार्बन पर हमारी निर्भरता ने हमारे सोचने, समझने, जीने-खाने यहाँ तक कि जैव-विविधता आधारित हरित-कार्बन को भी आर्थिक रूप से महंगा कर दिया है। कच्चे तेल के प्रति हमारी निर्भरता ने एक तो हमारी आर्थिक व्यवस्था में जबरन घुसपैठ कर ली है और ऊपर से इसके कारण लाखों लोग काल के ग्रास बन गये। अब तक कई युद्ध और विस्थापन इस तेल के कारण हो चुके हैं।

शक्ति का केंद्रीकरण: बाजरू शक्तियों के चलते लोगों ने सज्जनता का परित्याग कर दिया है। शक्ति का विकेंद्रीकरण की बजाय उसका केंद्रीकरण होता जा रहा है। विश्वभर में भूमि को हथियाने की बातें सामने आ रही हैं। उपजाऊ भूमि में जैव-ईंधन के नाम पर और पशुओं को चारे के रूप में सोया तथा मक्का उत्पादन कर एकल खेती और औद्योगिक खेती को अत्यधिक बढ़ावा मिलने के कारण जंगल के जंगल समाप्त हो रहे हैं। भूमि के उपयोग में लगातार परिवर्तन के चलते पलायन को बहुत अधिक बढ़ावा मिल रहा है जिस वजह से जलवायु परिवर्तन में संतुलन की सम्भावनाओं पर संकट बढ़ता जा रहा है। आर्थिक असमानता में वृद्धि: व्यापक विरोध के बावजूद, वैश्विक आर्थिक असमानता में वृद्धि जारी है। अमीर और गरीब के बीच असमानता की खाई लगातार बढ़ती जा रही है। पिछले वर्ष दुनिया के सबसे अधिक अमीर 300 व्यक्तियों के पास 524 अरब डॉलर रूपये की दौलत थी। यह धन दुनिया के सबसे गरीब 29 देशों की संयुक्त आय से कहीं अधिक है। हमारे समाज में जितनी अधिक आर्थिक असमानता होगी, हिंसा की दर उसी अनुपात में बढ़ती जाएगी। संघर्ष, युद्ध और पलायन: आर्थिक असमानता के कारण समाज में हिंसक प्रवृतियों को बढ़ावा मिलता है, जिसका परिणाम अंततः हमारे पर्यावरण को झेलनी पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिर्पोट के अनुसार पिछले 60 वर्षों की अवधि में होने वाले लगभग 40 प्रतिशत राज्यातंरिक संघर्ष भूमि और प्राकृतिक संसाधनों के कारण हुए. चाहे 1984 के पंजाब में हुए दंगे हों या आज के दौर में सीरिया और नाइजीरिया की बात करें ये सभी विनाशकारी संघर्ष भूमि, मिट्टी-पानी, आजीविका तथा पहचान बनाए रखने की वजह से ही हुए. ऐतिहासिक घटनाएँ स्पष्ट करती हैं कि भूमि ने संस्कृति और सांस्कृतिक विविधता को निर्मित किया है, जोकि जैविक विविधता के साथ-साथ विकसित हुई हैं। लेकिन, इस दौरान विकसित हुए पारिस्थितिक संदर्भों में कहीं भी धार्मिक संघर्षों ने अपना कोई सकारात्मक योगदान नहीं दिया। आक्रामक अर्थव्यस्था और लोकतंत्र विरोधी राजनीति ने संस्कृतियों को हिंसक बनाने के लिए आग में घी जैसा कार्य किया। इन संघर्षों के कारण लाखों लोग बेघर होकर शरणार्थियों जैसी दुष्कर ज़िन्दगी जीने को मजबूर हो गये। इन संघर्षों के कारण ही कमजोर संस्कृतियों ने अपनी पहचान बनाये रखने के लिए आतंकवाद, उग्रवाद आदि को जन्म दिया।

संघर्ष के इन परिणामों से बचने का विकल्प यही है कि हम हिंसा का बहिष्कार कर सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से इतने प्रबल हों कि सम्पूर्ण समाज में असमानता और वैमनस्व के लिए कोई स्थान ही न रहे। ऐसा तभी सम्भव है, जब हम आर्थिक गतिविधियों पर नैतिक और पारस्थितिक रूप से नियंत्रित करेंगे, जब हम व्यापार में पारदर्शिता लायेंगे और अहिंसा का महत्त्व समझेंगे। भय और घृणा की राजनीति तथा लोकतंत्र का पतन: सरकार कॉर्पोरेट जगत के दबाव में आकर लोकतंत्र का मूल मंत्र यानि'जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा' को भूल गई है। आज राजनीतिक शक्ति का मुट्ठी भर लोगों के द्वारा पूरी पृथ्वी और उसकी विभिन्न प्रजातियों पर अधिकार होने की स्थिति दृष्टिगोचर हो रही है। अब हमारे पास चुनौती यह है कि हम

शोषणकारी राजनीति और गैर-टिकाऊ आर्थिक मॉडल का कायाकल्प कर लें। आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कारण हमारी वसुधा और उसकी जलवायु संकट के घेरे में है। हमें इन चुनौतियों से शीघ्र उभरने के प्रयास मिलकर करने होंगे। औद्योगिक-कृषि जलवायु के लिए राक्षसः हम लगातार बढ़ रहे जलवायु परिवर्तन से तब तक नहीं निपट सकते, जब तक कि विश्व के भोजन-तंत्र और उसकी पद्धतियों में संतुलन स्थापित नहीं कर देते। औद्योगिक कृषि हमारे पर्यावरण के लिए एक ऐसा राक्षस सिद्ध हो रही है, जिस पर समय रहते नियंत्रण करना अति आवश्यक है। वनों की कटाई, जानवरों के लिए चारा उत्पादन के बहाने जैव-विविधताओं के विनाश, लम्बी दूरी के परिवहन तथा भोजन की बर्बादी के कारण 40 प्रतिशत गीन-हाउस गैसों का उत्सर्जन होता है, जोकि ओजोन परत के लिए जहर का कार्य करती हंै। हम तब तक जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण नहीं पा सकते, जब तक छोटे-छोटे पैमाने तक पारस्थितिक कृषि, जैव-विविधता पर आधारित जैविक बीज, जैविक-मिट्टी, तथा स्थानीय खाद्य-प्रणाली के साथ कम से कम भोजन की बर्बादी, तथा प्लास्टिक के उपयोग पर नियंत्रण नहीं पा लेते। आज जीवाश्म-ईंधन आधारित गहन-औद्योगिक कृषि तथा 'मुक्त व्यापार संधि' पृथ्वी पर सामाजिक और पारिस्थितिक नुकसान के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार हैं। यह वस्तु आधारित कृषि 75 प्रतिशत मिट्टी का विनाश; 75 प्रतिशत जल संसाधनों का विनाश और तथाकथित उन्नत-बीज और पोषण-रहित खोखले तथा विषाक्त खाद्यान से 93 प्रतिशत जैव-विविधता के ह्रास के साथ ही नदी, झील और महासागरों के जल के विनाश के लिए उत्तरदाई है। बड़ी-बड़ी बहुदेशीय कम्पनियों द्वारा हर वस्तु को 'क्लाइमेट स्मार्ट यानी' जलवायु सहिष्णु' करार देने की रणनीति एक मात्र छलावा है।

एकमात्र वैकल्पिकः पारिस्थितिक कृषिः पारिस्थितिकी के आधार पर जैविक-कृषि और स्थानीय खाद्य-प्रणाली से ही कुपोषण एवं स्वास्थ्य सम्बंधी संकटों के साथ जल तथा जलवायु परिवर्तन जैसी आपदाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है। स्थानीय खाद्य-अर्थव्यवस्था को निर्मित करने से मानव को स्वास्थ्य सम्पन्न और पर्यावरण को संकट मुक्त बनाया जा सकता है। स्थानीय खाद्य अर्थव्यवस्था के लिए हमे स्थानीय भोजन की ज़रूरत है और स्थानीय भोजन के लिए आवश्यक है कि हम स्थानीय बीजों को उपयोग में लाएँ तथा किसान अपने बीजों को स्वयं उगाएं। प्रत्येक बीज में एक सृष्टि समाहित होती है। यह प्रकृति अपनी यात्रा को इन बीजों की सृष्टि के बल पर ही आगे बढ़ाती है। प्रकृति के इस कार्य को सरल बनाने में किसान बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। वह अपनी नई फसल के लिए बीजों को तैयार करता है और बीज प्रजनक कहलाता है। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में किसान के पास कृषि जैव-विविधता को बढ़ाने और उसे बनाए रखने की बहुत बड़ी चुनौती है। इस चुनौती को छोटे किसान ज़्यादा अच्छे से निभा सकते हैं। छोटे किसानों के द्वारा ही इस विश्व के 70 प्रतिशत लोगों को भोजन मात्र 30 प्रतिशत संसाधनों के उपयोग के आधार पर किया जाता है। वहीं औद्योगिक खेती 70 प्रतिशत संसाधनों का उपयोग के बदले में 40 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन का उत्सर्जन करती है। जैविक खेती वातावरण से अतिरिक्त कार्बन-डाइऑक्साइड को प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से मिट्टी में वापस भेजती है। ऐसी खेती के माध्यम से मिट्टी की जलधारण क्षमता में भी वृद्धि होती है, जिससे सूखे की स्थिति से निपटने में सहायता मिलती है। इस तरह से जैविक खेती ही वह माध्यम है जिससे वातावरण में लगातार बढ़ रही कार्बन डाइआॅक्साइड की मात्रा पर नियंत्रण कि साथ गिरते हुए भू-जल स्तर में सुधार लाया जा सकता है। दुनिया भर में सभी छोटे किसान और बागवान भाई-बहन अपने पारम्परिक ज्ञान के माध्यम से मिट्टी और बीजों का संरक्षण कर रहे है। ऐसे किसान शुद्ध, स्वस्थ एवं पोषण युक्त भोजन पैदाकर जहाँ अपने समुदाय को भोजन प्रदान कर रहे हैं वहीं पेट्रो-केमिकल्स को चुनौती देकर पृथ्वी-ग्रह को बचाने में अपना योगदान दे रहे हैं। इस तरह से छोटे किसान अपने अथक प्रयासों से इस धरती पर 'भोजन का गणतंत्र' स्थापित कर-कर रहे हैं।

मानव और पृथ्वी के लिए एक नई संधिः हमारे लिए धरती पर सभी मानव एक समान हैं। इसलिए हम सम्पूर्ण धरती को एक परिवार (वसुधैव कुटुम्बकम) मानते हैं। हम इस अखिल विश्व-परिवार के नागरिक हैं और अपने ग्रह यानी इस धरती को बचाना हम सभी का कर्तव्य और धर्म है। इसीलिए आज हम समूचे मानव समाज के साथ ' पृथ्वी और उसके सबसे अद्‌भुत प्राणी यानी मानव को बचाने का समझौता यानी संधि प्रस्तुत

करते हैं। यह सार्वभौमिक सत्य है कि पृथ्वी है तो मानव है और मानव है। यह पृथ्वी चिरायु रहेगी तो मनुष्य भविष्य में इस भूमि की उर्वरा-शक्ति तथा विविध फसलों के बीजों की अंकुरण-शक्ति से अपने समुदाय का पालन-पोषण कर सकेगा। हां, मानव नामक इस प्राणी के संरक्षण के लिए इस प्रकृति में सम्पूर्ण जैव विविधता का सुरक्षति रहना अति आवश्यक है। आज लगातार अपभोगवादी संस्कृति और अति स्वार्थपूर्ण कार्पोरेट जगत को अपने नजरिये को बदलने की आवश्यकता है। हम सभी को मिलकर अपने स्वार्थ और लालच को ईमानदारी और जिम्मेदारी में बदलना होगा, तभी मानवता रूपी बीजों को संरक्षण प्रदान किया जा सकेगा। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की पूर्व संध्या पर पूरी दुनिया की नजर पेरिस पर टिकी हुई है। इस ऐतिहासिक अवसर पर सम्पूर्ण विश्व के लोगों को प्राकृतिक संसाधनों के शोषण और निजीकरण के स्थान पर कृतज्ञतापूर्ण लौटाने की प्रवृति के साथ जल, वायु, मिट्टी बीज और भोजन पर जनसामान्य का अधिकार हेतु चैतन्य करने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए. जलवायु संकट, भोजन संकट और जल संकट का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बंध है तथा इन संकटों का समाधान इन तत्वों संरक्षण में ही अंतर्निहित है। ये सभी घटक एक-दूसरे से किसी तरह भी अलग नहीं हैं।

पृथ्वी और मानवता की रक्षा करने के लिए एक समझौता, देश का नागरिक होने के नाते हमारा कर्तव्य है कि हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण कर इस धरती की रक्षा करें। धरती हमारी माँ है और उसकी रक्षा में ही हम सबकी भलाई और हमारा भविष्य सुरक्षित है।

1. जैविक मिट्टी में निवास करती है-हमारी सभ्यता, सुरक्षा और समृद्धि।

हम अपनी मिट्टी और जैव-विविधता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। हमारी जैविक मिट्टी कार्बन को ग्रहण करती है और पानी का संग्रह करती है। पारिस्थितिकीय संतुलन पर आधारित कृषि पुर्नचक्रीकरण के आधार पर कार्बनिक पदार्थों को पोषक तत्वों में बदलती है। सर अलबर्ट हावर्ड ने कहा था कि इस मिट्टी को कुछ दिये बिना ही धरती से विभिन्न वस्तुएँ प्राप्त करना डकैती करना जैसा है। हम धरती द्वारा-द्वारा किये गये उपकारों के आभारी हैं और लौटाने की रीति को ध्यान में रखते हुए अपनी जिम्मेदारी को मानते हुए हम उसे जैविक कार्बन को जैविक पदार्थ के रूप में वापस लौटायेंगे।

2. हवा-पानी, मिट्टी, वातावरण, जैव-विविधता और बीज हम सबके लिए हैं।

पृथ्वी ने हमें जीवन रूपी महत्त्वपूर्ण उपहार दिया है। यह उपहार सभी के लिए समान अधिकार, कर्तव्य, आजीविका और रक्षा लिए हुए है। हमारी जैव-विविधता और विभिन्न तरह के बीज जनसाधारण के लिए है। इनको पेटेंट करने का अर्थ है अपनी जैव-विविधता को विनाश और किसानों को कर्ज की गर्त में धकेलना। बिना मिट्टी के न तो जीवन और ना ही भोजन की प्राप्ति सम्भव है। जल भी जनसाधारण के लिए है। यह कोई व्यापार की वस्तु नहीं है। 'जल है तो जीवन' है। वातावरण और उससे मिलने वाली वायु हमें जीवन-शक्ति देती है। वातावरण जितना स्वस्थ रहेगा हमारी जलवायु उतनी ही स्वस्थ होगी। आज मिट्टी, हवा और जल का लगातार निजीकरण होता जा रहा है जिसके कारण हमारा वातावरण लगातार प्रदूषित हो रहा है। हमें इन तत्वों का किसी भी कीमत पर निजीकरण होने से रोकना होगा। हमें इन जीवन तत्वों को सहयोग, देखभाल और एकजुटता के आधार पर रक्षा करके उन्हें पुनः प्राप्त होगा।

3. बीज-स्वतंत्रता और जैव-विविधता भोजन की स्वतंत्रता और जलवायु स्थिरता की नीव है।

हम बीज-स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम सभी मानव समुदायों के साथ मिलकर ईमानदारी पूर्वक संगठनात्क रूप में जैव-विविधता को बचाकर सभी के लिए बीजों की उपलब्धता निश्चित करेंगे। खुले परागण के आधार पर बढ़ाये गए गैर-जी.एम.ओ और गैर-पेटेंट बीजों का आदान-प्रदान करना हमारा अभिन्न अधिकार है। किसानों के अधिकार स्वयं प्रकृति द्वारा संरक्षित हैं। यह धरती हमें आदिकाल से हमारी पीढ़ियों को अपनी जैव-विविधता के माध्यम से पाल-पोष रही है। बीज प्रकृति का अनमोल उपहार है। यदि कोई भी कानून अथवा प्रौद्योगिकी हमारी बीज-स्वतंत्रता को कमजोर करने का प्रयास करेगा हम ऐसे प्रयासों का विरोध करेंगे। हम अपने बीजों की रक्षा करने के साथ ही जी.एम.ओ. तथा पेटेंट के विरोध में एक साथ खड़े रहेंगे।

4. औद्योगिक कृषि है जलवायु संकट के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार।

हरित-गृह गैसों को बढ़ावा देने में विश्व भर में की जा रही औद्योगिक खेती 40 प्रतिशत से अधिक का योगदान है। हरित-गृह गैसे हमारी जलवायु के संतुलन को बिगाड़ रही हैं। ये गैसे वनों के कटाव, जीवाश्म-ईंधन पर आधारित खादों, पैकेजिंग, प्रसंस्करण, रिफ्रिजरेटर और लंबी दूरी के परिवहन के कारण अधिक उत्सर्जित हो रही हैं। ज्ञात हो कि औद्योगिक खेती जलवायु परिवर्तन का सबसे बड़ा कारण है ऐसी खेती से कभी भी भुखमरी और जलवायु परिवर्तन की समस्या का हल नहीं मिल सकता। हम जलवायु परिवर्तन को भू-प्रौद्योगिकी, 'स्मार्ट क्लाइमेट' एग्रीकल्चर, जैव यांत्रिकी के आधार पर शोधित बीज और सतत सघनता जैसे समाधानों में कभी विश्वास नहीं रखते।

5. पारिस्थितिकी पर आधारित छोटी कृषि जोत और स्थानीय खाद्य प्रणाली से मिलेगा तापमान पर नियंत्रण और भरपूर पोषण।

हम पारस्थितिकी पर आधारित छोटी जोत की खेती करने के लिए सदैव तत्पर हैं। ऐसी कृषि-भूमि से जहाँ हमें अपने भोजन का 70 प्रतिशत भाग मिलता हैं, वहीं जैव-विविधता और जल-तंत्र के साथ जलवायु को स्थिरता भी मिलती है। हम ऐसे स्थानीय भोजन-तंत्र स्थापित करने में सहयोग देंगे, जिनसे भोजन और पोषण की प्राप्ति के साथ ही जलवायु संकट का समाधान भी सम्भव हो सके. जैव-पारस्थितिकी, छोटी-कृषि जोत तथा स्थानीय भोजन-तंत्र सम्पूर्ण विश्व को पोषण के साथ जलवायु संतुलन देने मंे सक्षम है।

6. मुक्त व्यापार और कॉर्पोरेट जगत की बेलगाम स्वतंत्रता पृथ्वी और मानव स्वतंत्रता के लिए खतरा है।

प्रकृति हमें जीवन जीने के लिए स्वतंत्र और अबाध रूप से वायु, जल और अन्न प्रदान करती है। इन तत्वों के अतिरिक्त सम्मान जनक जीवन जीने के लिए स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है, लेकिन आज कार्पोरेट जगत ने 'मुक्त व्यापार' के माध्यम से हमारी स्वतंत्रता को छीन लिया है। कार्पोरेट जगत अपने लाभ के लिए लगातार जैव-विविधता को अपना बंधक बना रहा है। कार्पोरेट जगत प्रकृति द्वारा प्राप्त प्रत्येक का तत्व का बालात ब्यापार करने पर लगा हुआ है। इसके चलते हमारी धरती कई संकटों की शिकार हो रही है और जनसामान्य की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती जा रही है। पिछले दो-दशक यानी जबसे कि विश्व व्यापार संघ ने कार्पोरेट जगत के द्वारा लाये गये 'मुक्त व्यापार' समझोते पर हस्ताक्षर किये, तब से व्यापार में ढील के चलते पारस्थितिक एवं सामाजिक अस्थिरता में बढोंत्तरी हुई है। हम पारदर्शी व्यापार में विश्वास रखते हैं और टी.टी.आई.पी. तथा टी.पी.पी. जैसे कार्पोरेट्स के अधिकारों को बढ़ाने वाले किसी भी समझोते का विराध करते हैं। कार्पोरेट जगत को जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा देने और पर्यावरण को अत्यधिक मात्रा में प्रदूषण फैलाने के एवज में हर्जाना भरना होगा।

7. अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने वाले स्थानीय तंत्र ही वास्तव में सार्थक कार्य कर रहे हैं और इन्हीं से पृथ्वी और अन्य सभी की भलाई हो सकती है।

प्रकृति से हमें 'प्राप्त करने की अपेक्षा देने' में विश्वास करने की शिक्षा मिलती है। स्थानीय और जीवंत अर्थव्यवस्था भी इसी आधार पर फलूभूत होती है। विशेष वर्ग को लाभ पहुंचाने की अपेक्षा जनसामान्य का जीवन संवारने और कल्याण के भाव से आगे बढ़ रही अर्थव्यवस्था पर भविष्य निर्भर करता है। औद्योगिक कृषि का ध्येय मात्र और मात्र उत्पादन और उपभोग है, इसीके चलते ऐसे कृषि-तंत्र ने जैव-विविधता का विनाश कर धरती की पारस्थितिक प्रक्रिया में बहुत बड़ी बाधा पहुंचाई है और लाखों लोगों को खेती-विहीन कर दिया है। जैविक अर्थव्यवस्था में बर्बादी के लिए कोई स्थान नहीं है।

8. 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मतलब 'विविधता में एकता'।

हम परस्पर सहभागिता और स्वस्थ लोकतंत्र में विश्वास करते हैं और अपने लाभ के लिए लोकतंत्र से छेड़खानी का हम प्रबल विरोध करते हैं। हम पृथ्वी तथा उसके प्राणियों के कल्याण हेतु साझेदारी और विविधता में एकता के सिद्धांत को अपना आदर्श मानते हैं। हम हिंसा और अधःपतन के दुष्चक्र को तोड़ने और सभी लोगों और सभी प्रजातियों की भलाई के लिए अहिंसा और उत्थान के आधार पर सद्भाव बढ़ाने हेतु प्रतिबद्ध हैं। हम घृणा और द्वेष के आधार पर बंटने की अपेक्षा एक धरती और एक मानवता के रूप में बंधने में विश्वास रखते हैं। हम गांधी जी की उस शिक्षा में विश्वास रखते हैं जो कहती है, 'जब नियम और कानून मानवता के प्रति नैसर्गिक नियमों का उलंघन करने लगे तब एकजुट होकर असहयोग प्रारम्भ कर दीजिए.'

9. हम इस धरती के विशिष्ट समुदाय हैं।

हम पुनः 'वसुधैव कुटुम्बक' यानी धरती में लोकतंत्र स्थापित करेंगे। ऐसा करने से मनुष्य में सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना जगेगी और हमारी धरती चिरायु रहेगी। जब मानव में सभी के प्रति सद्भावना प्रकट होगी तभी मानवता से भरा-पूरा संसार खिल उठेगा और हमारे द्वारा अपनी माँ यानी इस भूमि को कोई भी कष्ट नहीं मिलेगा और सच्चे अर्थों में धरती चिरायु हो सकेगी। तब सभी को भोजन, हवा, पानी और सम्मान पूर्वक जीने का अधिकार मिलेगा। सही मायने में यही वास्तविक स्वतंत्रता है।

हम धरती और मानवता को बचाने के लिए एक समझौता-पत्र प्रस्तुत कर रहे हैं।

मनुष्य होने के नाते हमें पूरी-पूरी समझ है कि मनुष्य सहित सभी प्राणी और उनकी प्रजातियों को धरती पर उत्साह पूर्वक जीवन जीने का पूरा अधिकार है।

कि धरती माँ के अधिकार और मानव अधिकार किसी भी तरह से एक दूसरे से अलग नहीं हैं।

कि धरती के साथ हिंसा और मानवता के प्रति अन्याय में कोई अंतर नहीं है।

कि न्याय, शांति मानवता और मानव अधिकार की निरंतरता को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

10. हम यत्र-तत्र-सर्वत्र हम 'आशा के बाग' के बाग लगाएंगे।

हम अपने खेत में, उद्यान में, बालकनी में, छतों में जैविक-अन्न उत्पन्न करेंगे।

हम पृथ्वी को स्वस्थ और प्रदूषण मुक्त करने हेतु एक ठोस समझोते के प्रतीक के रूप में-में आशा के बाग लगाएंगे।

इस एक छोटे से कदम के द्वारा हम लाखों लोगों में निहित उस शक्ति को जागृत करने का कार्य करेंगे, जिससे उत्पन्न एकता और सद्भावना से पृथ्वी की सेवा के साथ मानुष्यों के लिए स्वस्थ अर्थव्यस्था और जीवंत लोकतंत्र पोषित हो सकेंगे। इस तरह से अपनी पृथ्वी और उसके सद्भावना युक्त नागरिकों के लिए परिवर्तन के नए बीज बोएंगे।

हम 'वसुधैव कुटुम्बकम' (धरती पर लोकतंत्र) को पुनः स्थापित करने और न्याय, गरिमा, स्थिरता तथा शांति बनाए रखने के लिए निरंतर परिवर्तन के बीज बोकर 'आशा के बाग' लगाएंगे।

4 मैं हि सत्य का रक्षक हूं

ओ३म् अग्ने य यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति॥ ऋग्वेद 1.4

जैसा कि परमेश्वर ने प्रथम मंत्र में कहा कि परमेश्वर अग्निस्वरूप है उसको जान कर हि सभी मानव कल्याण करें। इसमें ब्रह्माण्ड कि उत्पत्ति जिस अग्नि किया उसका उपेदेस किया है। दूसरें मंत्र में परमेश्वर कहते है कि अग्नि स्वरूप सभी ऋषियों के पुर्वज है अर्थात परमेश्वर के द्वारा ही जीवन का आभिर्भाव हुआ यह दूसरू अग्नि का रूप है। तीसरे मंत्र में फिर अग्नि स्वरूप परमेंश्वर उपदेस करते हुए कहते है कि वह ही सब ऐश्वर्यों का मुल है अर्थात वही आत्मा स्वरुप सब बहुमुल्य अग्नि का तिसरा रूप है जो सभी जीवों के लिये सबसे अधिक मुल्य वाल या युं कहे कि बहुमुल्य है। अब इस चौथें मंत्र के द्वारा परमेश्वर उपदेस कर रहे कि इस बहुमुल्य धन का उपयोग कैसे और कहाँ करना है? यह चौथि प्रकार कि अग्नि है। इसको इस प्रकार से समझते है कि जैसे बचपन में किसी मनुष्य का श्रेष्ठ कार्य है कि वह इस विश्व ब्रह्माण्ड के सत्य को जानने का प्रयाश करें, आर्थात ज्ञानार्जन करने के लिये निरंतर पुरुषार्थ करके अपने लगभग सभी संसाय का समाधान करे। जिसको हम सब ब्रह्मचर्य काल कहते है। यह जीवन के प्रारंभिक पच्चिस सालों तक माना गया है। उसके बाद गृहस्थ जीवन का प्रारंभ होता है जो पच्चिस से पचास सालों के मधय को कहते है इस समय में अपने पुर्वजों का ऋण उतारने का कार्य भली भाति करें संसार में एक श्रेष्ठ गृहस्थ बन कर जीवन का निर्वाह करें और अपनी जीम्मेदारियों का भली प्रकार से पालन पोषण करें, अपने पुत्र पुत्री और पत्नी के सात अपने माता पिता के प्रति अपने उत्रदाईत्वों से उरिऋ हो सके. इसके बाद तीसरा चरण जीवन का बानप्रस्थ का पचास कि उम्र के बाद सुरु हो कर पचहत्तर सालों तक चलता है इस उम्र में सभी प्रकार के ऐश्वर्यों का विस्तार करके औरअपने ज्ञान को अपनी साधना से दृढ़ करके, इस चौथे और जीवन के अंतिम चरण के लिये परिपूर्ण समर्पित करके विश्व के कल्याण के लिये संयास लेकर सत्य कि रक्षा, धर्म कि रक्षा, ज्ञान कि रक्षा यज्ञ के विस्तार के लिये कार्य करना चाहिये।

यह चार मंत्र एक प्रकार से चार प्रथम वर्णो के धर्म और चार आश्रम के धर्म और तिन ऋणों के धर्मों कि बाते क्रमशः करते है और जहाँ तक मैं समझता हूँ इन्हीं मंत्रों के आधार पर हमारें प्राचिन काल में चार वर्ण कर्मशः कर्मों के आधार पर नियुक्त कियें गये थे ब्राह्मण जो ब्रह्मचर्य का धारण करने वाला और ब्रह्म के ज्ञान को प्राप्त करके उसका विस्तार करने वाला जिसको वेद के मंत्रों में मुख के समान कहा गया है और इनको ही ब्रह्माण्ड का रक्षक कहा गया है। जिस प्रकार से हमारे शरीर में मुख को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। मुख मानव शरीर का वह अंग है जिसके द्वारा बहुत दिव्य और पवित्र कार्य सिद्ध किये जाते है। जैसे मंत्रों का गायन, जिससे मंत्रों का रक्षण होता है और जिसके द्वारा मन को नियंत्रित किया जाता है। यह बहुत प्राचिन पद्दति है इसके द्वारा ही आत्मा का ज्ञान और आत्मा कि रक्षा भी संभव है। मन से ही मनुष्य बनता है और मन से ही मंत्र

अर्थात विचार शक्ति का श्रृजन होता है जिसको ही आगे शब्द ब्रह्म कहते है। तो यह मंत्र अपने आप में स्वयं ब्रह्म ही है जब यह मन से जुण कर आत्मा को प्रकाशित कर देते है। यह एक प्राचिन तकनिकी है। जिस तकनिकी का विस्तार करने कार कार्य ब्राह्मण को ने हासिल किया जिसको यज्ञ विस्तार भी कहा गया क्योकि यह कार्य यज्ञ की श्रेणी में ही आता है। दूसरा कार्य क्षत्रिय के लिये है जो मानव शरीर में सीनें के समान माने गये है। अर्थात यह शक्ति का प्रमुख केन्द्र है इनके अधिकार में सम्पूर्ण पृथ्वी का अधिकार दिया गया और इनको राजा माना गया है। तीसरा वर्ण वैश्य माना गाय जिसके जिम्मे व्यापारादि कार्य कृषि कर्म के द्वारा वस्तुओं का उत्पादन सभी प्राणियों के लिये ज़रूरी वस्तुओं का संग्रह और उनका सब के पास पहुंचाने कार्य दिया गया और इनको कहा गया कि यह सब मानव शरीर में पेट के समान माना गया जिस प्रकार से पेट में गया अन्न पट कर पूरे शरीर में खुन बन कर दौणता है उसी प्रकार से मानव में सब के लिये भोजन और दूसरे संसधन को यथा युक्ती से उपलब्ध जो कराता है उसको वैश्य कहा गया और अन्तिम वर्ण को शुद्र कहा गया जिसका कार्य सहनशीलता जो पृथ्वी को समान सब के भार के सहन करते है और सभी की सेवा करते है। इसमें ब्राह्मण ही अपनें ज्ञान के द्वारा सच्चा ब्रह्मचारी माना गया है जो ब्रह्म के समान आचरण करता है उसका जीवन ब्रह्म को ही लक्ष्य करकें निस्पादित होता है जिसके कारण ही उसको ब्रह्मज्ञानी कहा गया है। क्षत्रिय जो क्षात्र के समान है जो सिखता है अपनी प्रत्येक गल्तियों से और अपने सांसारिक जीवन गृहस्थ के द्वारा उसको आगेम बढ़ाता है और सब की रक्षा करता है एक अच्छा राज्य का कार्य भार सम्हाल कर एक गृहस्थ राजा कि तरह से जो व्यापारियों कि भी रक्षा करता है उनके वस्तुओं का सही यथा योग्य मुल्याकंन कर के और शुद्रों के सात होने वाले अत्याचार को नियंत्रित करता है। वैश्य एक वान प्रस्थी कि तरह से जंगल समन्दर कि यात्रा करके हर प्रकार से साधन को सभी राज्य की जनता को उपलब्ध कराता है। शुद्र संयासी के समान सबसे अपना राग द्वेश छोड़ कर मान अपमान का त्याग करके यथा योग्य सब की सेवा करता है बदले में उनसे बहुत थोड़ा मेहनतान लेकर। जिस प्रकार से संयासी भिक्षा को ग्रहण करके सभी जनों को दिव्य त्रान का प्रचार प्रसार करता है। इस प्रकार से सबका कल्याण और सबकि रक्षा भी होती है हमारे समाज की। जबकि अब समय बहुत बदल गया है। लेकिन यह कार्य आज भी हो रहा है। आज जन्म से वर्णों की मान्यता बढ़ गई है जिसके कारण ही समाज का हराश हो रहा है। यद्यपी हमारे शास्त्रों में कर्म प्रधान ही माना गया है। इस लिये ही तो कहते है कि कर्मण्येवाधिकाररस्ते मा फलेशु कदाचन, अथवा कर्म प्रधान विश्व रचि राखा जो जसकरई तो तस फल चाखा।

सत्य का रक्षक और सत्य दो वस्तु है एक सत्य का रक्षक है दूसरा सत्य है जिस तरह से हमारी आत्मा है यह एक सत्य है लेकिन ज़रूरी नहीं है कि प्रत्येक आत्मा के द्वारा सत्य कि रक्षा ही कि जाती है क्योंकि सभी आत्माओं को स्वयं का ज्ञान भी होना पहले संसय है कि बात है। किसी तरह से बड़े पुरुषार्थ के द्वारा जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है वहीं सत्य का रक्षक होता है। यद्यपी आत्मा सत्य है लेकिन इसके ज्ञान सत्य नहीं है जब तक यह परमेंश्वर का साक्षात्कार नहीं कर लेती है। क्योंकि परमेंश्वर के ज्ञान में ही किसी प्रकार कि मिलावट नहीं है इस लिये सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का रक्षक परमेश्वर है उसके सान्निध्य के द्वारा ही कोई मानव अपने वास्तविक और अपने स्वरूप का शुद्ध साक्षात्कार कर पाता है। जिसका वर्णन वेदों के माध्मय से किया गया है। इस तरह से सत्य तक पहुचने के दो मार्ग है एक तो सिधा-सिधा परमेश्वर से सम्बंध स्थापित कर लिया जाये जैसा कि योग दर्शनकार पंतजली का योग दर्शन कहता है और समाधि को उपलब्ध हो। जिससे साधक अपने व्यक्तिगत जीवन का उद्धार कर सकता है। इसके लिये किसी प्रकार के शब्द ज्ञान कि ज़रूर नहीं है क्योंकि यह सिधा-सिधा मौन शुन्य कि यात्रा है इसके लिये ही पंतजली कहते है कि शुन्यमिवसमाधि। यह समाधि शुन्य होने के समान है सम्पूर्ण संसार से एक प्रकार से शुन्य बहोश होने की प्रक्रिया है। इसके द्वार समाज का कल्याण बहुत कम होता है और यह आज के युग के लिये बहुत कम फायदेमंद है। क्योंकि आज का मानव बहुत अधिक अपने वुद्धि पर निर्भर करता है जिसके कारण ही यह आधुनिक मानव काफी तर्क शक्ति का प्रयोग करता है। जिसके लिये न्याय दर्शन और वैशेषिक दर्शन ज़्यादा उपयोगी सिद्द हो सकते है। क्योकि यह दर्शन मानव मस्तिस्क के उहा पोह को काफी हद तक शान्त करने में समर्थ है। इस तरह से हमारे दर्शनों का प्रमुख दो मार्ग है एक विचार शक्ति को अत्यधिक तिब्र करके उस सुक्ष्मतम तत्व को अनुभव किया जाये जो विचारों से

परे विचारों का निर्माता है। परम प्रतापी परमेश्वर है जिससे ही यह विचार जो आकाश रूप है इनका जो मुख्य श्रोत है। दूसरा मार्ग पंतजली के द्वारा बताया गया है स्वयं को शन्य करने का जिससे समाधि को उपलब्ध हो सकते है मौन अन्तरयात्रा धारणा ध्यान के द्वारा। यह दूसरों को समझाने जैसा नहीं है यह प्रयोग करने जैसा है इसमें प्रयोग कर्ता को स्वयं कि शरीर पर ही प्रयोग करना पड़ता है। यदि सही विधियों का सही उपयुक्त तरह से प्रयोग किया जाये तो यह संभव है कि समाधि सिद्ध हो जाये अन्यथा अपने अन्तर लोक में यु ही पागलो कि तरह से भटकता रहे। तीसरा मार्ग भी बता गया जैसे व्यास और जैमिनी के द्वारा यज्ञ कर्म अर्थात पवित्र कार्य को करके दूसरें के कल्याण के परोपकार परमार्थ विशेष का कार्य ध्यान में रख जीवन को समर्पित कर दिया जाये। जैसा कि वेदान्त दर्शन में व्यास कहते है कि ब्रह्म कि जिज्ञासा किया जाये और कल्पना के शिकर पर स्वयं को स्थित कर दिया जाये। जिसका उपयोग आज के युग में बहुत अधिक हो रहा जैसे ओशो आदि नें इस मार्ग पर चल कर कल्पना के शिखर पर स्वयं को स्थिर करने का प्रयाश किया आजिवन। जितनी उची से उची कल्पना कर सको और उस स्तर पर स्वयं कि चेतना को स्थिर करने के कार्य को ही वेदान्त कहता है। वह मात्र एक प्रकार कि जिज्ञासा है जो जानना चाहता है या होना चाहता है। कि मैं ब्रह्माण्ड के समान हूं, या मैं आकाश के समान हूं, या मैं समन्दर के समान हूं। जबकि सत्य इन सब से परे है इसकी बात वेद मंत्र ही करते है वह कहते है कि सत्य से पहले मैं हूँ ज्ञान और मैं ही सत्य का प्रथम रक्षक हूं। वेद का मतलब ही ज्ञान होता है मंत्र में वही सभी बाते है जिसका चिन्तन करने में मानव मन समर्थ है। लेकिन मुक्य विषय यहाँ पर यह कि यह मन किस शक्ति से कार्य करता है और यह शक्ति इसको कहा से मिलती है और यह किसका चिन्तन करता है। यह तिन बातें है पहली बात कि मन विषयों का चिन्तन करता है, जो मंत्रों में पहले से विद्यमान है जिस विषय का मन को ज्ञान नहीं है वह भी विषय मंत्रों के अन्दर विद्यमान है। दूसरी बात मन किसकि शक्ति से कार्य कर्ता है क्योंकि मन एक मसिन कि तरह है। जिसको चार भागों में बिभाजित किया गया है। पहला मन दूसरा चित्त, तीसरा अंहकार और चौथा वुद्धि है। यही चार प्रकार के मनुष्य है पहला जो मन है वह संकल्प विकल्प करता है। जो शुद्र के समान है, दूसरा चित्त के समान है जो संस्कारित है जिसमें सब कुछ रक्षित किया गया है जिसके कारण ही मन से बनने वाले मानव की रक्षा का कार्य भार इसमें सुरक्षित किया गया है जो वैश्य के समान है। जिसके आधार पर ही हर प्रकार का व्यापारिक व्यवहार मानव मन करता है। तीसरा अंहकार है जिसको अपने होने का भा है कि मैं ही सबसे श्रेष्ट हूँ और शक्तीशाली राजा के समान क्षात्र शक्ति से सम्पन्न हूँ क्योंकि इसके पास व्यापारियों का भी सहयोग प्राप्त होता है और यह शुद्रों को भी अपने अधिकार में रखता है। चौथा जो वर्ण है वह ब्राह्मण है जिसके पास मन, चित्त, अहंकार और वुद्धि भी है। अब यब मानवों में सबसे श्रेष्ठ मानव कहा गया है इसका कारण बस इतना है कि यह अपने वुद्धि के सहारे ही अपना जीवको पार्जन करता है। इस तरह से यह चौथे प्रकार का जो मानव है जिसे हम ब्राह्मण कहत है यह वुद्धि प्रधान है। बात यहा समाप्त नहीं हो जाती है वुद्धि को भी आगे विभाजित किया गया है तीन रूपों में प्रथम वुद्धि जिसको वेदों में इड़ा, कहा गया जो प्रेरणात्म है जो किसी के प्रेरणा से प्राप्त होता है जिसमें साधरणतः सभी प्राणि आते है। आम बोलचाल कि भाषा में इन्हें ही साधारण मानव या आम आदमी कहते है। दूसरे वह जन होते है जिनको किसी भाषा और उसके व्याकरण पर महारत हाशिल है जिनको अक्सर हम सब विद्वान पंडित या उस विषय का विशेष यज्ञ कहते है जिनके पास तर्क कि शक्ति का उपयोग करके यह सरस्वती नामक बुद्धि को अर्जन किया है। तीसरे वह जन है जिन्होंने सर्वप्रथम प्रेरणात्मक वुद्धि इड़ा को प्राप्त करने के पश्चात सरस्वती को तर्क के द्वारा सोध करके प्राप्त किया और इसके अतिरीक्त उन्होने महि वुद्धि को उपासना के द्वारा प्राप्त किया जिससे यह सबसे श्रेष्ठ मानव देवता के तुल्य माने जाते है और यह सत्य की रक्षा करने में सक्षम होते है। इस प्राकार से यहीं सत्य के सच्चे रक्षक है और यह इस जगत में अपने श्रेष्ठ कार्यों के माध्यम से जो यज्ञ के समान है उसको करते हुए सम्पूर्ण जन मानस के समेत सभी जीव जंतु के कल्याण के लिये कार्य करते है।

जैसा कि मैने अनुभव किया है आज का मानव पुरी तरह से भ्रस्ट हो चुका है इसने अपने सारे रास्तों को बारी–बारी करके नष्ट कर दिया जो मार्ग इसको सत्य को साक्षात्कार कराने में सहायता प्रदान करते थे। जिसमें सबसे बड़ा योग दान आज के युग में विज्ञान ने मानव को दिया उसे कृतिम और झुटा बनाने में, जिसके

कारण यह मानव जिसे हम आधुनिक कहते है यह झुट को ही सत्य समझने कि भुल को पाल रखा है। यह उसी बात को मानता है जिसको विज्ञान कि कसौटि पर खरा उतारा जाता है। इस विज्ञान के अनुसार यह मानव भी एक प्रकार कि जड़ वस्तु है जिसका उपयोग हम एक जण वस्तु की तरह करते। इसके लिये काफी हद तक मानव को तैयार भी कर लिया गया है। इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता है कि सत्य कि सत्ता समाप्त हो गई है और इस संसार केवल झठ ही झुठ विद्यमान है। इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि असत्य कि मात्रा बढ़ गई है और सत्य कि मात्रा न्युन हो चुकी है। सत्य का सम्बंध मानव अस्तित्व के साथ है और मानव अस्तित्व एक बहुत सुक्ष्म तत्व है जिसे आत्मा कहते है जो विज्ञान कि पकड़ में नहीं आता है लेकिन वह मानव मस्तिस्क में अवश्य आता है जब मानव मन को उसका साक्षात्कार होता है। यह साक्षात्कार के लिये ही रास्ते मानव मन को बताया जा रहा है। मानव मन को इन वेद मंत्रों का सिधा-सिधा हृदयंगम करना होगा। इन मंत्रों में अद्‌भुत शक्ति है बार-बार इनका चिन्तन करने से इनमें जो विषय है उसका साक्षात्कार हो जाता है जो अद्‌भुत और औलौकिक आश्चर्य चकित करने वाला है और इस मार्ग के द्वारा किसी को भी सत्य का साक्षात्कार कराया जा सकता है। क्योंकि यह मंत्र एक प्रकार कि गुप्त और सुक्ष्म चाभी कि तरह से है जो मन के गुप्त दरवाजों को खोलने का सामर्थ रखते है। जिस प्रकार से जब तक एक सेना का ज्वान युद्ध में नहीं जाता है तब तक उसको वास्तविक ज्ञान युद्ध का नहीं होता है। उस समय उसको केवल कृतिम तरह से युद्ध का ही ज्ञान होता है। जिसके द्वारा वह किसी देश के सत्य की रक्षा करने में पूर्णतः सफल नहीं होता है। इसी प्रकार से यह हमारी शरीर एक देश के समान है और मन इसका मंत्री है वुद्धि सेना पति है आत्मा इसका राजा है। जो स्वयं सत्य है। चाहे किसी भी कारण से हार को उपलब्ध हो सबसे अधिक कष्ट उस सत्य स्वरूप राजा को ही होता है। जो इस शरीर रूपी रथ में बैठा हुआ है। मंत्र एक विशेष प्रकार के सामर्थ मानव मन में उत्पन्न करते है जिससे वह विषय के परे जो तत्व है उसका साक्षात्कार करने में सक्षम बन जाता है और अपने आपे पूर्णतः उसमे ही विलिन हो जाता है या उसी के लिये अपने सर्वस्व समर्पित कर देता है। जिससे वह मन सिर्फ़ मानव सरिर कि सिमा का उलंघन करके उसके परे देवता रूप परमात्मा तत्व को भाषने लगता है। जिस प्रकार से जब शुद्ध जल होता है तो उसमें से किसी भी वस्तु का प्रतिबिंब बहुत साफ और सपष्ठ दिखाई देता है। इसी प्रकार से इन मंत्रों के द्वारा शुद्ध हुआ मानव मन अपना ही प्रतिबिम्ब आत्मा रूपी सागर में परमात्मा रूपी दिव्य चैतन्यता को देखता है।

5 मैं हि देवों में दिव्य देव हूं

ओ३म् अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरा गमत्॥ ऋग्वेद 1.5

जैसा कि परमेश्वर अपने साधक को उपदेश कर रहा है ऋग्वेद के प्रथम मंत्र से इस पांचवे मंत्र तक परमेश्वर ने उसने जो उपेदस किया उसी को आगे बढ़ात हुए कहते है। जैसा कि प्रथम मंत्र अग्नि से प्रारंम्भ होता है जिसका भाव यह है कि वह परमेश्वर अग्नि वत है जिसकी कामना साधक करता है और उस प्रभु प्यारे परमेश्वर से याचना करता है जिसके उत्तर में परमेश्वर कहते है कि यह अग्नि जो तुम में विद्यमान है। जो तुम्हारी शरीर को चलाने के लिये प्रथम श्रोत उर्जा का प्रमुख साधन जिसके द्वारा ही तुम्हारे शरिर रूपी देश राष्ट्र का कल्याण संभव है। यदि तुम सब ऐसा करने में समर्थ होते हो तुम दिव्य सद्‌गुणों को प्राप्त करोंगे जो रत्नों के समान है। दूसरे मंत्र में आगे परमेंश्वर उपदेस देते हूए कहते है कि वही सभी ऋषियों के पुर्वज है उसी अग्नि से तुम सब का भी सर्जन हुआ है। तीसरे मंत्र में परमेश्वर कहते है कि वही सभी ऐश्वर्यों का प्रमुख श्रोत है। चौथे मंत्र में प्रभु कहते है कि वह इस सब विश्व ब्रह्माण्ड के सत्य के रक्षक है और अब पांचवे मंत्र में परमेश्वर जो

अग्निमय है कि वह सब को गति देने वाले सबके जीवन के मुख्य आधार है और वहीं सबसे श्रेष्ठ कार्य जो यज्ञ के समान है उसको संपादित या करने वाले है कवि के समान सब के भावों को जानने वाले क्रान्तिदर्शी क्रान्तिद्रष्टा क्रान्तकारी है। जिसके कारण ही इस विश्वब्रह्माण्ड के किसी कार्य में कोई अपूर्णता नहीं है। अर्थात उस पर्मेश्वर के द्वारा किया जाने वाला हर कार्य पूर्ण और सबसे श्रेष्ठ है। वह ही परमेंश्वर सत्य और सत्य का प्रमुख श्रोत चैतन्यता का प्रथम अनादि कारण है। जिससे ही सभी के चित्त जुणें हुए है, जिस प्रकार से एक सुपर कम्प्युटर से बहुत सारें यंत्र और कम्प्युटर जुड़े होते है और वह सुपर कम्प्युटर सबको एक साथ अकेले ही संचालित करता है। वे हि प्रभु श्रृष्टि के प्रारंम्भ में वेदों का सत्य ज्ञान देने वाले है। ज्ञान देने का तरिका भी उनका अद्भुत है क्योंकि वह सबके हृदयस्थ उपस्थित है, जिससे बिना किसी प्रयाश के अपने पवित्र ज्ञान से हृदय को अपने ज्ञान से प्रकाशित कर देते है। जिससे वह अत्यन्त किर्तिवान और यश वान होते है। अथवा वह प्रभु अत्यन्त ज्ञान वाला है निरितशय ज्ञान का अधिष्ठाता ब्रह्म ही तो है। वहीं सभी देवे देव दिव्य गुणों के पुंज जो देवताओं के साथ आते है। जब हम सब में दिव्य गुणों का उदय होता है, अर्थात जो प्रभु प्राप्ति का मार्ग है उस मार्ग पर चल कर हम सब स्वयं को उस प्रभु प्राप्ति के योग्य बनाये। हम सब के आचरण में जितना अधिक दिव्यता होगी उतने हू हम सब प्रभु के समिप होगे और जितना अधिक दैत्यता होगी उतने ही उस प्रभु से हम सब दूर होगे।

प्रभु से दूर या प्रभु से पास होने का मतलब क्या है, आखिर हम प्रभु के पास क्यों जाना चाहेगे? यद्यपि हम सब जानते है कि इस संसार में जो भी जन्म लेते है उसका एक दिन मरना निश्चित हि है। चाहे वह प्रभु के पास हो या फिर वह प्रभु से दूर हो, दोनों का अन्त एक समान होना निश्छित है। इस संसार में और हर प्राणि का यहाँ जीने का समय भी निश्चित है, कम अवश्य हो सकता है ज़्यादा होने का सवाल हि नहीं पैदा हो सकता है। जब यह सब निश्चित है तो फिर उस परमेश्वर क्या ज़रूरत है? हर प्राणि का एक निश्चित समय है कोई पचास साल तो कोई सत्तर साल तो कोई सौ साल तक जी सकता है। इस मंत्र में जो कुछ समझने योग्य तथ्य है, वह यह है कि यह अग्नि स्वरुप जो पुरुष परमात्मा है वह होता के समान है। यहा होता मतलब है जो यज्ञ करने होला है। जो यज्ञ में आहुतति डालता है। यहाँ परमेंश्वर स्वयं को अग्निहोर्ता कहता है। इसका कहने का तात्पर्य यह विश्व ब्रह्माण्ड का जो यज्ञ के समान है और इसको करने वाला वह स्वयं है। इस विश्व में सब कुछ छोड़ दे शिवाय मानव को पकड़े, यह मानव जो भी कर रहा है क्या उसका कार्य इस विश्वब्रह्माण्ड को ध्यान में रख कर रहा है। यह विश्वब्रह्माण्ड स्वरूप स्वयं और कोई नहीं मानव ही है। यहा सब कुछ मानव को समर्पित कर दिया है परमेश्वर ने जह वह कहता है कि वह अग्निहोर्ता कि तरह से है। इसका कार्य कैसा है? इसके लिये आगे का वाक्य कहता है कि कविक्रतु अर्थात यह यज्ञ जो हो रहा है कही बाहर नहीं हो रहा उसको करने वाला कहि बाहर हमारी तरह से नहीं रह रहा है। वह कवि के समान कार्य कर रहा है, कवि वहाँ तक पहूंचता है जहाँ रवि आर्थात सूर्य भी नहीं पहूंच सकता है। जहाँ सूर्य का प्रकाश भी नहीं पूहुंच सकता वहाँ कवि अपने भाव से पहुंच जाता है और उनको विचारों का रूप दे कर हम सब साधरण लोगों के लिये प्रकाशित करता है। वह परमेश्वर यहा स्वयं कवि के समान है। उसका कार्य भी कवी के जैसा है अर्थात वह हम सब के हृदय में विद्यमान हम सब का भाव है अहसशास है वह सब में शासें ले रहा है। वही सत्य चित्त श्रुत्ति के समान हमारा अन्तर्तम में विद्यमान है। देवों का भी देव जिसके साथ गमन करने वाले है। अर्थात यहाँ पर वह परमेश्वर हम सब में हि विद्यमान है वह कवि के समान अन्तर्जगत में रमण करने वाला है अन्तर्यामी है और वहीं सत्य चित्त क्रान्तिदर्शि के समान है।

इस मंत्र में बहुत स्पष्ठ व्यक्तव्य दिया जा रहा है और एक ऐसे मार्ग का संकेत किया जा रहा है जो सब के लिये बहुत आसान है। यहाँ पर यह नहीं कहा जा रहा है कि मैं तुमसे अलग हूँ यद्यपी यह कहा जा रहा है मैं ही तुम में विद्यमान हूँ अर्थात तु ही अपने परमेश्वर हो। इस तरह से परमेंश्वर ने हम सब को यहाँ पर पूर्णरूप से मुक्त कर दिया है। यह परमेश्वर बनने कि यात्रा का प्रथम सोपान है। हम सब को अपना परमेश्वर बनना है और हम सब को इसके लिये अपनी मृत्यु से अज्ञान से अंधकार से असत्य से लड़ना होगा। जिसके लिये हि वह परमेश्वर कह रहा है कि अग्निर्होता के समान हम सब को बनना होगा। अपना सब कुछ जो भी है

अपने पास सब की आहुति बना कर इस संसार रूपी यज्ञ शाला में डाल देना है और स्वयं के व्यर्थ के भार से मुक्त हो जाना है। इतना मुक्त और इतना हल्का जितना कि यज्ञ कि खुशबु के समान हो कर चारों तरफ अपनी सुगन्ध के साथ खाली आकाश में उड़ जाना है। जैसे कि हवा उड़ती है सारी बंधनो को तोड़ कर, जिन बंधनो को तुमने हजारों सालों में तैयार किया है। जो अदृश्य साकलों कि तरह तुम्हे बांध रखा है। यहाँ पर हमें अग्नि के गुणों को स्वयं में धारण करना है, अग्नि का प्रथम गुण है कि वह सब कुछ भष्म कर देती है शिवाय पारे के जो हम सब पारे के समान है। जिसको यहाँ पर होता कहा गया है। हम अग्नि के समान हमेशा उपर ही उपर उड़ने वाले या चलने वाले हो। जिस प्रकार से सूर्य कि किरणें चलति है जिस प्रकार से अग्नि की ज्वाला उपर कि तरफ हू उठति है। उसी प्रकार से हम सब को भी उपर की तरफ उठना है और जो हमारे बंधन है या जो हम पर बोझ को समान है भार है जिनके भार से हम सब बोझिल हो चुके है। उसन सबको यहा पर इस संसार की यज्ञशाली में आहुति डाल देना है। जैसे रिस्तों का भार समाज का भार, देश का भार स्वयं कि वासनावों का भार स्वयं कि शिक्षाओं भार यह सब झुठा और असत्य है। जब यह सत्य है कि यहाँ सब कुछ मरने वाला ही तो फिर हम इस मरने वालें कि चिन्ता में इपनी समय शक्ति को व्यर्थ में क्यों खर्च करें? जो इससे अलग है उस पर ध्यान क्यों ना दे?

अग्नि होर्ता का मतलब यह भी हुआ कि इस संसार रूप शरीर को भष्म कर दों और स्वयं को अग्निर्होता बना लो अग्नि मतलब ज्वलनशील भष्म बनानें का साधन होता का मतलब इसको जो भष्म करने वाला है। इसतरह से अग्निहोर्ता का मतलब हुआ वह पुरुष जो सब को भष्मकरने वाला है भष्माशुर के समान है अर्थात जो सब कुछ भष्म कर सकता है। ऐसा एक पौराणिक आख्यान आता है कि एक राजा था जो परमेश्वर कि उपासना कर्ता था। जिससे भगवान शिव उसकी साधना पर प्रसन्न हो गये और उसके कहने पर ऐसा वर दे दिया कि वह भष्मासुर जिस किसी के सर पर हाथ रख देगा वह भष्म हो जायेगा। इस वरदान की परीक्षा करने के लिये वह शीव के सर पर हाथ रखने के लिये दोड़ा जिससे शिव को वहाँ से भागना पड़ा। वहाँ से सिव भाग कर भगवान विष्णु के पास गये और उन्होने अपनी जान बचाने का आग्रह किया तब विष्णु नें एक स्त्री का रूप पकड़ कर भष्मासुर के सामने प्रकट हुए और उसे अपने सामने नाचने के लिये मनालिया और जब विष्णु के समान नाचने लगा भष्मासुर तो विष्णु ने अपने हाथ स्वयं के सर पर ही रख लिया। जिसको देखकर भष्मासुर नें भी अपना हाथ अपने सर पर रख लिया जिससे वह स्वयं ही भष्म हो गया। यह काहानी कुछ और कहना चाहती है। जिसको किसी और तरह से कहा गया है। इसका भाव यही है कि उसने स्वयं कि शरीर क भष्म कर लिया था अपनी तपस्या से इसका मतलब सिर्फ़ इतना है कि वह अपने शरीर से पूर्णतः मुक्त हो चुका था और उसनें अपने अन्दर से उस कवि क्रतु अर्थात उस कवि के समान कर्ता बन गया था। जिसके कारण ही वह सत्य का द्रष्टा स्वय के चित्त पर पूर्णतः अधिकार कर लिया था। जिसके कारण उसमें अपने अन्तर्तम में विद्यमान शिव जो कल्याण कर्ता है विष्णु जो पालन पोषण करता है ब्रह्मा जो श्रृष्ठि करता है। इनका साक्षात्कार कर लिया था। जिससे ही यह सब श्रुतिया वेदादि का उद्भव हुआ है और जो देवों का देव है। सब से बड़ी मुर्खता इस संसार में यह है कि यहाँ पर हर व्यक्ति को सत्य तक पहुंचने से रोका जा रहा है। जिसके लिये जो लगे है वहीं राक्षस है जो सत्य को भष्म करने का प्रयाश किया जा रहा है। जिसके कारण ही यहाँ संसार में भष्मासुर को एक राक्षस कि तरह से प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि वह एक साधक ता जिसने साधना के द्वारा यह शक्ति उपलब्ध कर लिया ता जिसकी बात यहाँ पर मंत्र कह रहा है। इन मंत्रों तक पहुंचने के लिये भी लोगों को रोका जा रहा है और लोगों को बहुत ही भयंकर तरह से गुमराह किया जा रहा है। कहीं पर शिक्षा के नाम पर तो कही धर्म के नाम पर तो कही सत्य के नाम पर इसी कड़ी को आगे बढ़ाने के लिये ही इतने अधिक देवी देवताओं कि कल्पना किया गया और इनको समाज में साधरण लोगों को गुमराह करने के लिये आज भी प्रचारित किया जा रहा है। जब कि सत्य यह है कि सब के केन्द्र हम स्वयं है और हमारे अन्दर ही वह सब का स्वामी विद्यमान है उसके लिये हमें स्वयं के बनायें संसार को भष्म करना होगा। यहाँ भश्म करने का तात्पर्य है कि ज्ञान से जब किसी वस्तु को जान लिया जाता है तो उसका रहस्य खत्म हो जाता है। उस विषय का आकर्षण भी खत्म हो जाता है। यहा पर हमारी शरीर ही संसार है और यह हम सब जानते है कि यह भष्मों

से निर्मित है और भष्म में मिलने के लिये अग्रसर है। उससे पहले जो कविक्रतुः कवि के समान कर्ता स्वयं की जो चेतना है जो शुद्ध रूप से जीवन का परम सत्य चित्त आनन्द है। उसको उपलब्ध होना ही अर्थ पूर्ण है जो इसको जान लेता है तो वह कुछ सिद्ध हुआ अन्यथा सब कुछ भष्म के समान है। जिस प्रकार से बहुत बड़ा राख का भंडार है उसी प्रकार से यह संसार है रूपी शरीर है। यहा उसी का जीवन सफल है जिसनेइस राख के भंड़ार में से उस चिन्गारी की खोज कर लेता है। जिसकी बात यहा पर मंत्र रहा है।

6 मैं हि अंगो का रस अङ्गिरस हूं

ओ३म यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमंङ्गिरः॥ ऋग्वेद 1.6

आदमी मर गया या अभी जीवित है, इसकी घोषित मान्यता यह है–कि मस्तिष्क काम करना बन्द कर दे। इलेक्ट्रॉन से फेलोग्राम (ई॰ ई॰ जी0) मस्तिष्कीय कम्पनों की हरकत अंकित करने से इनकार कर दे तो समझना चाहिए कि आदमी मर गया। ऐसे व्यक्ति को मृतक घोषित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए. चिकित्सा जगत की पूर्व मान्यता यही है। फ्राँस की नेशनल मेडिकल एकेडेमी के एक मृत्यु के फैसले को कानूनी मान्यता दिलाने के लिए विधिवत यह घोषणा करनी पड़ी थी कि यदि किसी व्यक्ति का ई॰ ई॰ जी0 48 घण्टे तक लगातार निष्क्रियता प्रकट करता रहे तो उसकी 'कानूनी मृत्यु' घोषित की जा सकती है। मृत्यु की परिभाषा करते हुए मस्तिष्क विशेषज्ञ डा0 हैनीवल, हैषलिन ने भी यही कहा था–मस्तिष्क की मृत्यु को अन्तिम मृत्यु कहा जा सकता है। हारवर्ड मेडिकल कालेज के डा0 राबर्ट एस॰ शवाव ने भी यही मत निर्धारित किया था कि यदि मस्तिष्क जबाब दे गया है तो हृदय का पम्प करके जीवित रखने का प्रयत्न करना बेकार है। इस पूर्व मान्यता को झूठलाने वाली एक घटना अंकारा युनिवर्सिटी के डाक्टर ने स्वयं ही प्रस्तुत कर दी। डा0 रील 30 वर्ष के नवयुवक थे। वे एक मरीज का एक्सरे ले रहे थे कि गलती से बिजली का नंगा तार छू गये। जोर का आघात लगा और उनके दिमाग ने काम करना बन्द कर दिया। ई॰ ई॰ जी0 के हरकत न करने के आधार पर उन्हें मृतक घोषित कर दिया जाना चाहिए था, पर वैसा किया नहीं जा सका। क्योंकि उस हालत में भी उनके चेहरे पर और उंगलियों में हरकत पाई गई. उनकी आँखें खुली हुई थी और कभी–कभी पलक झपकते देखे गये। डाक्टरों ने उनके मुँह में नली डालकर पेट में बेबीफूड, फलों का रस, सीरस आदि पहुँचाया फलतः उनका दिल तक दूसरे अंग काम करते रहे। इस विलक्षण जीवित मृतक को देखने के लिए अमेरिका, जापान, रूस, इंग्लैण्ड, फ्राँस और जर्मनी के डाक्टर हवाई जहाजों से अंकारा पहुँचे और यह देखकर चकित रह गये कि मस्तिष्क के पूर्णतया निष्क्रिय हो जाने पर भी डा0 रील पौधे की तरह जी रहे थे और उन्हें माँस का पौधा कहा जाने लगा। यों रोगी को जीवित तो न किया जा सका, पर आशा से बहुत अधिक दिनों तक वे जिये। इससे इस नये सिद्धान्त की पुष्टि हुई कि मस्तिष्क का वह भाग जो ई॰ ई॰ जी0 की पकड़ में आता है उससे भी भीतर एवं उससे भी गहरी कोई और सत्ता है जो जीवन के लिए मल रूप से उत्तरदायी है। मस्तिष्क तो उस चेतना का एक औजार मात्र है। जापान की कोवे युनिवर्सिटी के प्रो0 स्यूडा डा0 के किटो और डा0 सी0 आदाशी के त्रिगुट्ट ने मृत दिमाग का जीवित और जीवित को मृतक बनाने में एक नई सफलता प्राप्त की है। उन्होंने बिल्ली का दिमाग निकाल कर शून्य से 20 डिग्री नीचे शीत वातावरण में जमा कर रखा और 203 दिन बाद उसे धीरे–धीरे तापमान

देकर पुनः सक्रिय किया। भय था कि आक्सीजन के अभाव में मस्तिष्क की कोशिकाएँ मर गई होगी और दिमाग निकम्मा हो गया होगा, पर वैसा हुआ नहीं। 203 दिन तक भी दिमाग जीवित रहा और उसे फिर सक्रिय बनाकर दूसरी बिल्ली में मस्तिष्क में फिट किया जा सका।

पिछले दिनों वैज्ञानिक क्षेत्रों में आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को अमान्य ठहराया जाता रहा है और कहा जाता रहा है कि मस्तिष्क ही आत्मा है और उसकी गतिविधियाँ समाप्त होने ही आत्मा का अंत हो जाता है। नास्तिकवादी मान्यता मनुष्य को चलता-फिरता, पेड़-पौधा भर बताती रही है और कहती रही है कि शरीर के साथ ही जीवन का सदा के लिए अन्त हो जाता है। पर विज्ञान की नवीनतम शोधों ने सिद्ध किया है-मस्तिष्क चेतना के प्रकटीकरण का एक उपकरण मात्र है मूल चेतना उससे भिन्न है और मस्तिष्कीय गतिविधियाँ समाप्त हो जाने पर भी वह अपना काम करती रह सकती है। यह आस्तिकवादी सिद्धान्त का प्रकारान्तर से समर्थन ही माना जायगा।

परमेश्वर प्रत्येक मंत्र के माध्यम से हमारी समस्या का समाधान करने के लिये ही और सरल ढंग से समझाते हुए कहते है। एक कदम और आगे बढ़ कर हमारे हाथ को थामते हुए. जैसे कोई व्यक्ति अंधा है जो खतरनाक अंधकारपूरण जंगल के मार्ग को नहीं जानता है जिसे हम सब संसार कहते है। हमको मार्ग पर लाने के लिये परमेश्वर हमारे हाथों को पकड़ कर कहते है। कि इस तरफ से चलों मेरी उंगली पकड़ कर, जिस तरह से किसी बच्चे को उसकी माँ अपनी उगंली पकड़ा कर उस बच्चे को उसके पैरों पर चलना सिखाती है। क्योंकि उसकी माँ जानती है कि यह गिर सकता है जिससे यह स्वयं को चोट पहूंचा सकता है। जिससे इसके शरीर के अंगों को नुकसान हो सकता है। यह संभावना है जो हमारी इस संभावन को जानता है। क्योंकि वह अनुभवी है हमसे पहले संसार में आई है। उसने संसार कि रुग्णता का साक्षात्कार कर लिया है।

वह परमेश्वर हम सब कि माँ और पिता के समान जनिता है। वह ही हम सब का भाई के समान है जो हमारे हर प्रकार के भार को वहन करने वाला है। जिसके साथ से हम सब इस अग्निमय ज्वलनशील संसार में एक किनारा एक रास्ता प्राप्त करते है। जिसके साथ चलने से ही हम सब रास्ते से भटकने से बच सकते है। यह भी संभावना मात्र है। क्योंकि यहाँ हर कदम पर एक ऐसी चुनौति है जो हम सब को रास्ते से भटकाने के लिये पर्याप्त है। जिसको ही माया के नाम से जानते है। यह नस्वर संसार है यहाँ जो स्वर है उसकी परवाह हम सब करते ही नहीं है। क्योकि वह हमारे सामने कभी नहीं आता है। जिसके कारण ही हम सब उसकी सत्ता को ही स्विकार नहीं करते है। जिसने शरीर समेत शरीर के सभी अंगों को अपना दास बनाया है वह अग्नि स्वरूप है जो तुम्हारा भद्रं कल्याण करने वली है। वही तत्व रूप सत्य इन शरीर के अंग्ङों स्वामी है।

यहाँ पर एक प्रसन्न उठ रहा है क्या हम सब वास्तव में जिन्दा है? क्या हमने कभी सूर्य के प्रकाश में आकाश को देखा है? या रात्री के समय आकाश में विखरे अनन्त तारों देखा है। इससे हमें क्या समझ में आता है? एक सूर्य इतना अधिक ज्वलनशील और उर्जावान है जो सम्पूर्ण इस भुमंडल को इस जगत को प्रकाशित ही नहीं कर रहा है। यद्यपी यहाँ के जीवन का प्रमुख श्रोत है। यह सूर्य इस जगत कि आत्मा है और ऐसी ही आत्मायें हमें दिखाई देती है रात्री के समय में जैसे सारा आकाश ही इन तारों से भरा है। यह सभी प्रकाश करते है लेकिन यह सब उस प्रकार का प्रकाश करने में असमर्थ है जिस प्रकार से हमारा सूर्य हम सब को प्रकाशित करता है और सभी प्राणियों को जीवन के परम आनन्द के अलौकिल भावभिभोर कर देने वाले अद्भुत करुणा से भर देता है। इसी प्रकार से यह संसार में सभी जीव जन्तु प्राणी उस रात्री में फैले आकाश में तारे के समान है और वह हमें उतना ही प्रकाश देते है जितना कि सूर्य के अतिरिक्त आकाश का कोई तारा हमें प्रकाश देता है, रात्री के समय में वह तारा और उसका प्रकाश हमारे जीवन के लिये परयाप्त नहीं है। उसके आधार पर हम सब जीन्दा नहीं रह सकते है इस पृथ्वी पर। हम सब को हमारे सूर्य के उदय होने का इन्तजार रहता है। कि सूर्य उदय हो और हम सब अपने-अपने कामों पर निकले, रात्री कि गहन अंधकार से प्रकाश को उपलब्ध होने के लिये। यह पृथ्वी और कुछ नहीं शिवाय हम सब के शरीर के, अर्थात यह शरीर उसी प्रकार से

है जैसे पृथ्वी है। जिस प्रकार से पृथ्वी के लिये सूर्य की परम आवश्यक है। उसी प्रकार से हम सब को अपनी आत्मा के प्रकाश कि ज़रूरत है। जिस प्रकार से सूर्य इस भुमंडल के लिये जीवन का परम श्रोत है। उसी प्रकार से हमारे जीवन का श्रोत है हमारी सब की आत्मा वह हम सब के सूर्य के समान है। जो यह सिद्ध करती है कि हम ही इस शरीर के सूर्य है। हमारे ही प्रकाश से यह प्रकाशित हो रही है। हमारी आत्मा नें ही हमारे सभी अंगों को अपने वश में कर लिया है। हमारी आत्मा के हि यह सब अंग शरीर समेत दास है अर्थात सेवक है और जब सेवक ही स्वामी बन जाते है तो बहुत वड़ा संकट स्वामी के उपर आ जाती है। क्योकि इस संसार में यहाँ सबसे बड़ा यही संकट है कि यहाँ पर सेवक को ही स्वामी बनाया जाता है, क्योंकि स्वामि अयोग्य होता तभी वह सेवको को रखता अपने पास अपना कार्य कराने के लिये। जिस प्रकार से एक राजा सैनिको को रखता है अपने राज्य की रक्षा और उसकी सेवा के लिये और जब राजा अयोग्य होता है तो सेवक अपनी मनमानी करने लगते है। जैसा कि आज हमारे समाज में हो रहा है। जिसके कारण ही आज मुनुष्यों से अधिक हम मसिनों पर भरोषा करते है। क्योंकि किसी मनुष्य का भरोषा नहीं है कि वह किसी दूसरे के साथ क्या कर सकता है? यहाँ तक जिसको हम अपने कहते है वह सब भी स्वार्थ के साथ ही अपने लगते है यहा हर किसी का हर किसी से अपना एक विशेष स्वार्थ है। जैसा कि याज्ञवल्क्य ऋषि कहते है।

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं। पहली पत्नी भारद्वाज ऋषि की पुत्री कात्यायनी और दूसरी मित्र ऋषि की कन्या मैत्रेयी थीं। याज्ञवल्क्य उस दर्शन के प्रखर प्रवक्ता थे, जिसने इस संसार को मिथ्या स्वीकारते हुए भी उसे पूरी तरह नकारा नहीं। उन्होंने व्यावहारिक धरातल पर संसार की सत्ता को स्वीकार किया। एक दिन याज्ञवल्क्य को लगा कि अब उन्हें गृहस्थ आश्रम छोडकर वानप्रस्थ के लिए चले जाना चाहिए. इसलिए उन्होंने दोनों पत्नियों के सामने अपनी संपत्ति को बराबर हिस्से में बांटने का प्रस्ताव रखा। कात्यायनी ने पति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, पर मैत्रेयी बेहद शांत स्वभाव की थीं। अध्ययन, चिंतन और शास्त्रार्थ में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। वह जानती थीं कि धन-संपत्ति से आत्मज्ञान नहीं खरीदा जा सकता। इसलिए उन्होंने पति की संपत्ति लेने से इंकार करते हुए कहा कि मैं भी वन में जाऊंगी और आपके साथ मिलकर ज्ञान और अमरत्व की खोज करूंगी। इस तरह कात्यायनी को ऋषि की सारी संपत्ति मिल गई और मैत्रेयी अपने पति की विचार-संपदा की स्वामिनी बन गई।

वृहदारण्य को उपनिषद् में मैत्रेयी का अपने पति के साथ बड़े रोचक संवाद का उल्लेख मिलता है। मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से यह ज्ञान ग्रहण किया कि हमें कोई भी सम्बंध इसलिए प्रिय होता है क्योंकि उससे कहीं न कहीं हमारा स्वार्थ जुडा होता है। मैत्रेयी ने अपने पति से यह जाना कि आत्मज्ञान के लिए ध्यानस्थ, समर्पित और एकाग्र होना कितना ज़रूरी है। याज्ञवल्क्य ने उन्हें उदाहरण देते हुए यह समझाया कि जिस तरह नगाडे की आवाज के सामने हमें कोई दूसरी ध्वनि सुनाई नहीं देती। वैसे ही आत्मज्ञान के लिए सभी इच्छाओं का बलिदान ज़रूरी होता है। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा कि जैसे सारे जल का एकमात्र आश्रय समुद्र है उसी तरह हमारे सभी संकल्पों का जन्म मन में होता है। जब तक हम जीवित रहते हैं, हमारी इच्छाएँ भी जीवित रहती हैं। मृत्यु के बाद हमारी चेतना का अंत हो जाता है और इच्छाएँ भी वहीं समाप्त हो जाती हैं। यह सुनकर मैत्रेयी ने पूछा कि क्या मृत्यु ही अंतिम सत्य है? उसके बाद कुछ भी नहीं होता? यह सुनकर याज्ञवल्क्य ने उन्हें समझाया कि हमें अपनी आत्मा को पहचानने की कोशिश करनी चाहिए. शरीर नश्वर है, पर आत्मा अजर-अमर है। यह न तो जन्म लेती है और न ही नष्ट होती है। आत्मा को पहचान लेना अमरता को पा लेने के बराबर है। वैराग्य का जन्म भी अनुराग से ही होता है। चूंकि मोक्ष का जन्म भी बंधनों में से ही होता है, इसलिए मोक्ष की प्राप्ति से पहले हमें जीवन के अनुभवों से भी गुजरना पडेगा। यह सब जानने के बाद भी मैत्रेयी की जिज्ञासा शांत नहीं हुई और वह आजीवन अध्ययन-मनन में लीन रहीं। आज हमारे लिए स्त्री शिक्षा बहुत बडा मुद्दा है, लेकिन हजारों साल पहले मैत्रेयी ने अपनी विद्वत्ता से न केवल स्त्री जाति का मान बढ़ाया, बल्कि उन्होंने यह भी सच साबित कर दिखाया कि पत्नी धर्म का निर्वाह करते हुए भी स्त्री ज्ञान अर्जित कर सकती है।

जिस तरह से हम किसी व्यकित पर विश्वास और भरोषा करते है तो उससे हमें धोखा खाना पड़ता है, इसी प्रकार से हमारी इन्द्रियाँ भी हमें धोका देने के लिये हमेंसा तैयार रहती है। क्योंकि जिस संसार में शरीर के साथ में रमण करती है। इनकों इसी झुठ के लिये ही तैयार किया जाता है। इनको स्वार्थी और स्वयं कि चेतना को धोखा देना ही सिखाया जाता है। क्योंकि यहा सब कुछ झुठा और नस्वर मृतवत है इसी लिये ही इसको मृत्युलोक कहते है। जो पुरुष या स्त्री जितना अधिक ही संसारी होता है वह उतना ही मृत होता है। जिसको हम जितना ही अधिक संसार में सक्रिय देखते है जिनको यहा पर साधरणतः अपना आदर्श मानते है। वह सब भी उतने ही अधिक मृतवत होते है। किसी भी क्षेत्र का कोई भी व्यक्ती संसार के चर्मउत्कर्ष पर पहुंचा है तो केवल एक साधन से स्वयं को और अधिक मार कर के. यदि हम उसका अनुसरण करते है तो हम भी उसके समान मृत होने कि तरफ बढ़ रहे है। इस लिये ही यहाँ मंत्र में परमेश्वर उपदेस कर रहे है कि तुम स्वयं को केन्द्रित करों और स्वयं को हमेशा अपने दाशों से ताकत वर बना कर उनको अपने बस में रक्खों। अन्यथा तुम्हारा भटकना निश्चित है इस संसार में जहाँ एक से बढ़ कर एक हिंसक जानवर भरे है। जो एक दूसरे पर अधिकार करने के लिये प्रयाशरत है। यह सब हारे हुए लोग है इन्होंने अपने अंगों पर विजय नहीं पाई है। यह सब अपनी चेतना को बेच चुके है। इन्होंने अपनी चेतना को अपने अंगों का दाश बना लिया है। शरीर और शरीर के अंगों में सबसे ताकतवर सुक्ष्म अंग मन है। यह मन संकल्प और विकल्प वाला है। इसके आश्रित ही सभी ज्ञान इन्द्रि होती है। जिसमें से आख, कान, नाक, जीभ्भा और त्वचा है यह ज्ञान इन्द्रि कही जाती है। इनके द्वारा ही आत्मा को अपने से अतिरिक्त विषयों का ज्ञान होता है। इनसे आत्मा को अपना स्वयं का ज्ञान नहीं होता है। जब वह इनसे दूर होता है तो ही वह स्वयं को अनुभव करने में सक्षम होता है और ऐसा बहुत मुस्किल से ही समय मिलता है। जब वह इस शरीर में रहे और मन के साथ इन्द्रियों के सम्पर्क में रहें इनसे दूर रह सके, क्योकि मन तो ऐसा है जो इन्द्रियों के सो जाने पर भी जागता रहता है। जिसके कारण ही स्वप्न आते है और यह स्वप्न देखने वाला कोई और नहीं हमारी सब कि चेतना ही देखती है। जो चित्र ओर ध्वनियों के साथ मन के पर्दे पर चलता है और वह उसको ही अपना वास्तविक रूप समझ बैठती है। जिसके कारण ही उसको बहुत अधिक कष्टो और क्लेशों को सहना पड़ता है। क्योंकि वह स्वयं के ज्ञान से अनभिज्ञ होती है। यहाँ पर इस मंत्र के द्वारा परमेश्वर हम सब का ध्यान उसी तरफ खिचने के लिये आकर्षित कर रहा है। एक बार फिर मंत्र को समझते है इन अंगों को जब तुम अपने वश में कर लोगों तो तुम स्वंय अग्नि स्वरूप हो। तो ही तुम जान पाओंगे कि इस संसार रूपी शरीर के सत्य को और इसको जानने के बाद ही तुम इस संसार रूपी शरीर से मुक्त हो सकोगे। यह एक सर्त है कि जब तुम तैरना सिख जावोंगे तो ही तुम सागर को पार करने का संकल्प कर सकोगे और पुरुषार्थ करोगे तो पार भी कर लोंगे।

7 – मैं तुम्हारें समिप ही हूं

ओ३म् उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि॥ ऋग्वेद 1.7

इस संसार में हमेंशा ही हम सब ऐसी वस्तुवों के साथ रहते है। जो प्रायः जड़ और नस्वर है। इसमें कौन जीवित है और कौन नहीं मृत्यु के समिप है? अर्थात हर व्यक्ती मृत्यु के समिप है और जीवन से दूर है। इसलिये ही हर व्यक्ती जीवन से बहुत प्रेम करता है और मृत्यु से नफरत करता है। क्योंकि जो वस्तु हमारे पास होती है उसका उतना आदर या सम्मान नहीं करते है जितना कि किसी और का जो हमसे दूर रहता है। जिस प्रकार से जो हमारे साथ रहता है उससे हम सब अक्सर उब जाते है और उससे दूर जाने के लिये रास्ते तलासते है और जो दूर है उसके करिब करना चाहते है। जैसा कि आज हम सब देख सकते है। कि इस

संसार में बहुत अधिक समस्या है। जिसका समाधान आज तक मानव नहीं कर पाया है। यद्यपी यह मानव को अंतरिक्ष और मंगल ग्रह पर बसाने के लिये उद्द्त हो चुका है।

यहाँ एक तरफ लोगों का पेट नहीं भर रहा है ना उनके पास सर छुपाने के लिये जगह है, ना पहनने के लिये कपड़े ही है नाही अपने इलाज कराने के लिये धन ही है। वह मृत्यु की राह देख रहे है कि वह आये और इस असहनिय कष्ट और पिड़ा से उनको मुक्ति मिले। बहुत कम ही लोग है जो अंतरिक्ष में या मंगल पर जाने के लिये तैयार है। जो ऐसे लोग है उनको भी यहाँ पृथ्वी पर रहने में कष्ट महसुष हो रहा है। यह कहना बहुत कठिन है कि कोई यहाँ पर संतुष्ट भी है या सारे असंतुष्टी और अतृप्ती कि ही आग में जल रहे है। इन दोनों में एक बात कि समानता है कि सभी भविष्य की आशा के साथ जी रहे है।

जो अभी हमारे पास है उससे तृप्त नहीं है, हम कछ और भविष्य में होने कि कामना के साथ जीवन व्यतित कर रहे है। जब भी कोई व्यक्ति इस पृथ्वी पर जन्म लेता है वह समय बहुत कष्ट पूर्ण होता है। लेकिन वह कष्ट आदमी समय के साथ भुल जाता है। क्योंकि वह सभी स्मृतियाँ हमारें मन मस्तिस्क में अपना स्थान नहीं बना पाती है। हमें सिर्फ़ वहीं याद रहता है जो तीन या चार साल के बाद कि स्मृतियाँ होती है। इसी प्रकार से जब कोई व्यक्ति शरीर को छोड़ता है या मरता है तो उसे अत्यधिक कष्ट होता है। यहाँ पर जन्म भी अत्यन्त कषट पूर्ण होता है और मृत्यु भी भयानक कष्ट पूर्ण होती है। जो जन्म हो चुका है उसका कष्ट सह चुके है वह सब बित चुका है उसको हम सब भुल चुके है यहाँ क ठीक है। इस पर हम काम नहीं कर सकते है हम काम जिस पर कर सकते है इसकी बात यहाँ पर यह मंत्र कर रहा है। मंत्र कह रहा है कि जो आने वाला निश्चित दुःख है उससे छुटने का उपाय है। उस उपाय कि चर्चा यह मत्र कर रहा उसके लिये इस जीवन के आकर्षण को छोड़ना होगा यह जैसा है उसको ऐसा ही देखना होगा अभी इसके लिय कोई भविष्य नहीं है। यहाँ वर्तमान में जीवन इतना आकर्षण क्यों है? इसका वास्तविक स्वरूप देखने के बाद भी हम उसे स्विकार क्यों नहीं पाते है? हम सब हर समय मृत्यु का साक्षात्कार करते है जीवन तो मात्र कल्पना का नाम है। इसमें जीने जैसा कुछ भी तो नहीं है। यह एक दुःख स्वप्न से अधिक नहीं है, यहाँ तो सब कुछ झुठा है और माया के समान है। इसका अहसाश हमें 30-40 वर्षों के बाद होता है जब हमारा दिमाग बढ़ना बन्द कर देता है। जब उसको अपनी मृत्यु का आभाष होता है और यह आभास उसे अधिक होता है जो किसी लाईलाज बिमारी से ग्रसित होता है। उसको यह शरीर हर पल कचोटती रहती उसको हर समय पिड़ा और कष्ट का आभास होता है। तब वह हर पल मृत्यु को अपने करिब देखता है वह लाख प्रयाश कर दे, मगर वह उससे कभी भी दूर नहीं हो सकता है। यहाँ का यही रहस्य है जो जिने का प्रयास करते है वह मर जाते है और जो मरने का प्रयाश करते है। वह यहाँ पर अमर हो जाते है। उन्ही को यहाँ देवता और भगवान बना कर पुजा जाता है। ऐसी ही कहानि महात्मा बुद्ध के बारें में आती है।

लोगो को, जैसे वे दिखाई पड़ते हैं, उनको वैसा ही मत मान लेना। उनके भीतर बहुत कुछ है। एक आदमी मर जाता है। हमने कहा, आदमी मर गया। जिस आदमी ने इस बात को यही समझ कर छोड़ दिया, उसके पास अंतर्दृष्टि नहीं है। गौतम बुद्ध एक महोत्सव में भाग लेने जाते थे। रास्ते पर उनके रथ में उनका सारथी था और वे थे और उन्होंने एक बूढे आदमी को देखा। वह उन्होंने पहला बूढ़ा देखा। जब गौतम बुद्ध का जन्म हुआ, तो ज्योतिषियों ने उनके पिता को कहा कि यह व्यक्ति बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा और या संन्यासी हो जाएगा। उनके पिता ने पूछा कि मैं इसे संन्यासी होने से कैसे रोक सकता हूं? तो उस ज्योतिषि ने बडी अद्‌भूत बात कही थी। वह समझने वाली है। उस ज्योतिषि ने कहा, अगर इसे संन्यासी होने से रोकना है, तो इसे ऐसे मौंके मत देना जिसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए. पिता बहुत हैरान हुए–यह क्या बात हुई? उनके पिता ने पूछा। ज्योतिषि ने कहा, इसको ऐसे मौंके मत देना कि अंतर्दृष्टि पैदा हो जाए. तो पिता ने कहा, यह तो बडा मुश्किल हुआ, क्या करेंगे?

उस ज्योतिषी ने कहा कि इसकी बगिया में फूल कुम्हलाने के पहले अलग कर देना। यह कभी कुम्हलाया हुआ फूल न देख सके. क्योंकि यह कुम्हलाया हुआ फूल देखते ही पूछेगा, क्या फूल कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मनुष्य भी कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मैं भी कुम्हला जाऊंगा? और इसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाएगी। इसके आस-पास बूढे लोगों को मत आने देना। अन्यथा यह पूछेगा, ये बूढे हो गए, क्या मैं भी बूढा हो जाऊंगा? यह कभी मृत्यु को न देखे। पीले पत्ते गिरते हुए न देखे। अन्यथा यह पूछेगा, पीले पत्ते गिर जाते है, क्या मनुष्य भी एक दिन पीला होकर गिर जाएगा? क्या मैं गिर जाऊंगा? और तब इसमें अंतर्दृष्टि पैदा हो जाएगी। पिता ने बडी चेष्टा की और उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि बुद्ध के युवा होते-होते तक उन्होंने पीला पत्ता नहीं देखा, कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा, बूढा आदमी नहीं देखा, मरने की कोई खबर नहीं सुनी। फिर लेकिन यह कब तक हो सकता था? इस दुनिया में किसी आदमी को कैसे रोका जा सकता है? कि मृत्यु को न देखे? कैसे रोका जा सकता है कि पीले पत्ते न देखे? कैसे रोका जा सकता है कि कुम्हलाये हुए फूल न देखे? लेकिन मैं आपसे कहता हूं, आपने कभी मरता हुआ आदमी नहीं देखा होगा और कभी आपने पीला पत्ता नहीं देखा, अभी आपने कुम्हलाया फूल नहीं देखा। बुद्ध को उनके बाप ने रोका बहुत मुश्किल से, तब भी एक दिन उन्होंने देख लिया। आपको कोई नहीं रोके हुए है और आप नहीं देख पा रहे है। अंतर्दृष्टि नहीं है, नहीं तो आप संन्यासी हो जाते। यानी सवाल यह हैं, क्योंकि उस ज्योतिषि ने कहा था कि अगर अंतर्दृष्टि पैदा हुई तो यह संन्यासी हो जाएगा। तो जितने लोग संन्यासी नहीं है, मानना चाहिए, उन्हें अंतर्दृष्टि नहीं होगी। खैर, एक दिन बुद्ध को दिखाई पड़ गया। वे यात्रा पर गए एक महोत्सव में भाग लेने और एक बूढा आदमी दिखाई पड़ा और उन्होंने तत्क्षण अपने साथी को पूछा, इस मनुष्य को क्या हो गया? उस साथी ने कहा, यह वृद्ध हो गया। बुद्ध ने पूछा, क्या हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है? उस साथी ने कहा, हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है। बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी? उस साथी ने कहा, भगवन, कैसे कहूं! लेकिन कोई भी अपवाद नहीं है। आप भी हो जाएंगे। बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो, रथ वापस ले लो। सारथी बोला, क्यों? बुद्ध ने कहा, मैं बूढा हो गया। यह अंतर्दृष्टि है। बुद्ध ने कहा, मैं बूढा हो गया। अदभुत बात कही। बहुत अदभुत बात कही और वे लौट भी नहीं पाए कि उन्होंने एक मृतक को देखा और बुद्ध ने पूछा, यह क्या हुआ? उस सारथी ने कहा, यह बुढापे के बाद दूसरा चरण है, यह आदमी मर गया। बुद्ध ने पूछा, क्या हर आदमी मर जाता है? सारथी ने कहा, हर आदमी और बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी? और सारथी ने कहा, आप भी। कोई भी अपवाद नहीं है। बुद्ध ने कहा, अब लौटाओ या न लौटाओ, सब बराबर है।

साथी ने कहा, क्यों? बुद्ध ने कहा, मैं मर गया।

यह अंतर्दृष्टि है। चीजों को उनके ओर-छोर तक देख लेना। चीजें जैसी दिखाई पडें, उनको वैसा स्वीकार न कर लेना, उनके अंतिम चरण तक। जिसको अंतर्दृष्टि पैदा होगी, वह इस भवन की जगह खंडहर भी देखेगा। जिसे अंतर्दृष्टि होगी, वह यहाँ इतने जिंदा लोगों की जगह इतने मुर्दा लोग भी देखेगा-इन्हीं के बीच, इन्हीं के साथ। जिसे अंतर्दृष्टि होगी, वह जन्म के साथ ही मृत्यु को भी देख लेगा और सुख के साथ दुःख को भी और मिलन के साथ विछोह को भी। अंतर्दृष्टि आर-पार देखने की विधि है और जिस व्यक्ति को सत्य जानना हो, उसे आर-पार देखना सीखना होगा। क्योंकि परमात्मा कहीं और नहीं है, जिसे आर-पार देखना आ जाए उसे यहीं परमात्मा उपलब्ध हो जाता है। वह आर-पार देखने के माध्यम से हुआ दर्शन है।

यहाँ पर इस मंत्र में भी अन्तरदृष्टि कि बात हो रही है। इस कहानि में जो सारी बातें कही जा रही है वह केवल एक रूपक है। ज़रूरी नहीं है कि सभी बात इसमें सत्य ही है। किसी को कैसे रोका जा सकता है? कि वह स्वयं को ना देख सके कितना ही आदमी को बाहरी वस्तुओं से दूर रखा जाये। लेकिन उसको उससे कैसे दूर किया जा सकता है? कोई कितना ही अमिर हो या कितना ही बड़ा राजा या सम्राट हो? वह शरीर जो सड़ रही है हर समय इसका साक्षात्कार तो करता ही है। वह यह भली प्रकार से-से जानता है। जैसा कि महात्मा बुद्ध को बैराग्य का कारण जो बताया जा रहा है। इस कहानी में कि उन्होंने बृद्धा को देखा तो उनमें प्रस्न उठा कि मैं भी वृद्धा हो जाउगा और रास्ते में वह मृत को देखते है तो कहते है। कि मैं भी मर जाउंगा।

इससे पहले वह यह नहीं जानते थे कि वह मर जायेंगें। यहाँ पर प्रस्न यह उठता है। कि फिर वह जानते क्या थे? इसका मतलब है कि उनका दिमाग कार्य ही नहीं करता था। वह पागल किस्म के पुरुष थे। क्योकि जैसा कि कहानी में बताया जा रहा है। कि उनके पिता को-को ज्योतिषी नें बताया कि यह सन्यासि बन सकता है। या फिर यह चक्रवर्ती राजा बन सकता है। जैसा कि उनके पिता जी ने कहा कि यह चक्रवर्ति राजा बनें और उनको चक्रवर्ति राजा बनाने के लिये हि उनके लिये-लिये एक कृतिम संसार कि रचना कि गई. जहाँ पर कई कली नहीं मुरझाती है। गलती यही पर हो गई जब कोई कली मुरझाती है तो ही उसमें फल आते है। अन्यथा फल ही नहीं आयेंगा। जहाँ कोई वृद्धा नहीं होता है। युवा या बच्चा कोई भी हो उसको यदि स्वयं का संसार का ज्ञान है तो वह बृद्ध के समान है। वहाँ कोई भी ऐसी वस्तु नहीं होती है जिससे उनको मृत्यु का ज्ञान हो सके. फिर उनको ज्ञान किसका दिया गया? क्योंकि जीवन वहीं रह सकता है जहाँ मृत्यु हो अन्यथा जीवन का कोई मतलब ही नहीं है। यह मृत्यु कोई जीवन से बाहरी विषय नहीं है। यह जीवन का ही एक किनारा है। हर शास के साथ जीवन और मृत्यु का आभास हम सब को होता है। यह सभी जीव को प्रारंभिक ज्ञान के रूप में मिलता है और वह पुरुष आजिवन इसी प्रयाश में रहता है कि इस मृत्यु से कैसे बचा जाये? क्योंकि इस संसार के सारे गुरु और सारा साहित्य और सारा ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान का आधार भुत सिद्दान्त इस मृत्यु के आधार पर ही खड़ा किया गया है। जितने पल यह चेतन पुरुष अपने संकल्पबल और अपने द्दढ़इच्छा शक्ति मृत्यु को पिछे धकेलता है उतने ही पल यह जीवन के स्वाद को प्राप्त करने में सफल होता है। यहाँ यह कहा जाये कि उनको जिवन को उत्सव भोग विलाश की ही शिक्षा दि गई. यह भी ग़लत है, क्योकि भोग विलाश भी एक प्रकार कि मृत्यु का ही संकेत देते है। यहाँ इस जगत में जो भी पशु पक्षी या कोई भी प्राणि क्योंना हो वह कुछ भी नहीं जानता है। लेकिन यह अवश्य जानता है कि वह मर रहा है। उसका जीवन इसी आधार भुत सिद्धान्त पर खड़ा है। कि उसको मारना पड़ता है स्वयं को जीन्दा रखने के लिये। जैसा कि कहा गया है जीव जीवस्य भोजनम् अर्थात जीव का भोजन जीव ही है। वह तिस साल के बाद जान पाये कि मृत्यु और बृद्धा अवस्था जैसा भी कोई तत्व इस संसार में है। जिसके कारण ही उनकी अंतरद्दष्टी जागृत हुई. जिसके कारण उनहोंने बैराग्य या संयास ले लेलिया। यह बात कुछ पचती नहीं है। यह विचार करने जैसा है। क्योंकि इस कहानी में बिना सिर पैर कि बात कही जारही है। उनको उस महल के भोग विलाश में ही मृत्यु का साक्षात्कार हो गया था जिसके कारण ही वह उससे उब कर वहाँ बाहर भाग गये। क्योंकि उनके पिता ने ही उनको अपना कैदि बना लिया था और उनकों वहाँ भोग विलास के आड़ में भयानक कष्टों को दिया जारहा था। जैसा कि हम सब जानते है कि जितने अधिक सुरमा विर योद्दा किस्म के राजा होते है वह उतने ही क्रुर होते है। क्योंकि इस संसार में अपनी क्रुरता के कारण ही अपने राज्य के विस्तार को बढ़ाने में समर्थ होते है। यह महात्मा बुद्ध कैसे महाभारत के विनास कालिन युद्ध के बारे में नहीं जान पाये। क्या यह संभव है वैचारिक द्दष्टि से मैं नहीं मानता कि वह कुछ नहीं जानते थे। यद्यपी सत्य तो यह है कि वह इस संसार के बारें में सब कुछ जानते थे। उनको यह सब देख कर ही यहाँ का खुन खराब और यहाँ का हर प्राणी एक दूसरे का खुन पिने के लिये ही जीन्दा है। वितृष्णा पैदा होगई कोई भी वुद्धिमान होगा उसको यही होगा। जब उन्होने यह सब देखा तो उनको यह सब राज्य काज अच्छा नहीं लगा क्योंकि वह सरल हृदय के व्यक्ति थे। उनमें प्रेम और करुणा था और सभी जीवों के प्रती, जिसके कारण ही वह संयास को ग्रहण करलिया। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि आज ऐसा क्यों हो रहा है कि यहा का कोई वुद्धिमान व्यक्ति यहा संसार का सत्य क्यों नहीं देक पारहा है। इसका मुक्य कारण है कि आज के प्रत्येक मनुष्य को हम मौका हि नहीं देते कि उसके वुद्धि का विकास हो सके. यह दुनिया वुद्धइ के विकास की विरोधी है। यह दुनिया उनके सहयोग में आगे बढ़ती है जो अज्ञान के प्रचार प्रसार में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते है उन्ही को हमारा नेता अभिनेता और हर क्षेत्र का अग्रणी बनाया जाता है। यहाँ जिस वुद्दि कि बात कि जा रही है उसके लिये एक सुरमा क्रान्तिकारी योद्धा किस्म के व्यक्ति की ज़रूरत होती है। जो कष्टों को सहने के लिये तैयार हो जो अपनी मृत्यु के साथ कदम-कदम से मिला कर चल सके. यहाँ प्राय कायर किस्म के ही व्यक्ती देखने को मिलते है। जिनको अपना आदर्श मानते है वह सारे नकली आदमी है जो वरिजनल अदामी है उनका कोई साथ ही नहीं देता है। उनको ही यह सब मिल कर जहर पिलाते है, फासी पर चढ़ाते है, सर कलम करते है। फिर भी कभी कभार कोई एकाक पैदा हो ही जाता है।

यहाँ मंत्र में जैसा कि परमेश्वर स्वयं कह रहे है कि तुम आत्मा को पहले ही दिन से जब से तुम संसार में इस शरिर को धारण किया है। तभी से इस शरीर में दोष है जिसको तुम थिरता पूर्वक देखकर अपनी बुद्धि से जानकर हमें सर्वथा सम्मान पुर्वक प्राप्त होते हो। यहाँ किसी बाहरी संसार कि बात नहीं कि जा रही है। ज्ञान पूर्ण जीवन का आनन्द जीवन का रस इस प्रभु के द्वारा ही हम सब को हर पल मिलता है। जिसके पास बुद्धि है वह यह सब कुब समझता है। कि यहाँ संसार का सत्य क्या है? इसका साक्षात्कार अपनी शरीर के माध्म से ही यह जीव करता है। हम कभी भी इस शरीर रूप संसार से मुक्त नहीं हो सकते है जब तक कि हमको अपना स्वयं का ज्ञान ना हो। आज तक जितने भी ऋषि महर्षि हुए है वह बहुत अधिक एकान्त और बहुत अधिक शान्त किस्म के राजा प्रकृति के लोग ही हूये है। क्योंकि यह संसार और संयास और मुक्ती का जो विषय है वह किसी निर्धन के लिये है हि नहीं। इसके लिये ज़रूरी नहीं है कि वह संसार को छोड़ कर भाग जायें। क्योंकि किससे भागेगा, यह मन शरीर और इसकी इन्द्रिया ही तो समस्या है यही हमें संसार में उलझाती है और यही हमें इस संसार से सुलझाती भी है। जब तक यह-यह बाहर विषय का हि चिंतन करती है तब तक यह स्वयं से दूर होती है। लेकिन जब इनको उपयोग करने वाली जीवात्मा यह जानती है कि इनके द्वारा जो भी सुख हमें मिल रहा है उससे हमारा दुःख कम नहीं हो रहा है। यद्यपी वह निरंतर बढ़ रहा है। तो वह स्वयं में ही लिन हो जाती है और बाहरी विषयों से वितृष्णा को प्राप्त हो जाती है।

8 - मैं तुम्हारा शाषक हूं

ओ३म् राजन्तमध्वराणां गोमृतस्य दिदीविम्। वर्धमानं स्वे दमे। ऋग्वेदे 1.8

जैसा कि परमेश्वर मंत्रों के माध्यम से उपदेस दे रहे है। राजंतम अर्थात राज्य का अंत जिस प्रकार से कोई राजा राज्य करता है। अपने सामराज्य पर जिस प्रकार से सूर्य राज्य करता है सम्पूर्ण भुमंडल पर, या जिस प्रकार से पृथ्वी पर वायु राज्य करती है, या जिस प्रकार से जलो का सागर राज्य करता है इस पृथ्वी पर, या जिस प्रकार से आकाश राज्य करता है इस ब्रह्माण्ड पर यह सब राज्य जहाँ पर समाप्त हो जाते है। इनकी सबकि सिमा है इनपर भी कोई शासन करने वाला है। जो यह कह रहा है कि राजंतम इसका मतलब एक और भी हुआ कि इन राज्यों में किसी प्रकार का ज्ञान का प्रकाश नहीं है सब अज्ञान के भयंकर वातावरण से आच्छादित है और इस सबके मध्य में जो बिभत्सक युद्ध हो रहा है जीने मरने के लिये। सूर्य कि किरणों के व्याप्त होने पर भी जहाँ इतने प्रकाश में भी अंधकार का बृहंगम सामाराज्य स्थापित हो रहा है। जिस पर साक्षात मृत्यु अपना एक रस शास्वत सामराज्य स्थापित कर रखा है। एक भी पल यहाँ पर ऐसा नहीं गुजरता है कि जिसमें कि लोगों को मृत्यु का संदेशा जीवन में नहीं मिलता है। अर्थात हर समय उसके होने का अहशास यह सूर्य पृथ्वी वायु जल और आकाश कराते रहते है। फिर भी आश्चर्य है कि इस मानव कि प्रगाढ़ अज्ञान कि निद्रा से निद नहीं खुलती है। यद्यपि जितना ज़्यादा ही मृत्यु का आतंक व्याप्त होता है। उतना ही अधिक गहरी तन्द्रा में यह मानव जाने लगता है और इसको अपने नस्वर शरीर का मोह पकड़ लेता है। यह पृथ्वी आसमान एक कर देता है इस नस्वर और घोर नरक का कारण शरीर को बचाने के लिये।

केवल एक ही रास्ता है जो मृत्यु से पहले किया जा सकता है वह है स्वयं स्मरण का स्वयं को जानने का जिसके लिये जीवन के सत्य को स्विकारना होगा। स्वयं को कभी मरने नहीं देना है। स्वयं को जो हम सब समझे है वह हम नहीं है। जो हम है। उसे हम सब जानते ही नहीं है। हमेशा अंधों कि तरफ दूसरों कि उगंली को पकड़ कर चलने कि ज़रूरत नहीं है। अपनी आत्मा कि आवाज को सुनों और उसके मार्ग पर ही चलों यदि वह मृत्यु की तरफ ले जारही है तो सहर्ष स्विकारोक्ति के साथ आगे बढ़ों। योग का मतलब ग़लत निकाला जा रहा है यह क्रान्ती नहीं है यद्यपी इसको द्वारा जो एक संभावना है जिस प्रकार से सभी दरवाजे जब बंद होगे, तो कुछ खिड़की और रोशन दान घर में पहले बनाये जाते थे। जिससे इस घर के रहने वाला प्राणि दरवाजा बन्द होने कि स्थिति में जीवित रह सके. इसी प्रकार से इस योग को भी केवल इस लिये आविस्कृत किया गया कि आदमी जिन्दा रह सके. लेकिन जब स्वयं आदमी ही अपने सारे दरवाजे बन्द कर के अपनी आत्महत्या करने के लिये उतवला है। तो यह खिड़ती दरवाजे क्या कर सकते है? यह बहुत बड़ा सणयंन्त्र चलाया जा रहा है सरकार और व्यापीरीयों के द्वारा जिससे यह सामुहिक रूप से सिद्ध हो सके कि यह सब झुठ है। इसलिये इसको भिड़ का विषय बना दिया गया है और भिड़ किसी विषय का निर्णय करने में सक्षम नहीं है। आत्मा परमात्मा दो नहीं है वह दो रूप से जब से व्यक्त किये गये है। तबसे परमात्मा और आत्मा में दूरी आ चुकी है। जिसके कारण ही यह मानव स्वयं को उस परम सत्य से दूर करने का बहाना तलासने लगा है। आज वह उससे बहुत दूर हो चुका है। वह स्वयं को स्विकार नहीं पारहा है। योग का सिधा-सा मतलब है स्वयं को स्विकारना, आज के समय में सभी ने यह स्विकार कर लिया है कि वह सब शरीर है। जबकि योग शरीर कि शून्यता कि बात करता है और कौन शून्य होने के लिये तैयार है? यह योग साक्षात मृत्यु का नाम है और अपनी आत्मा के उत्थान के लिये कुछ भी नहीं करता है। जबकि आत्मा के उत्थान का मार्ग स्वयं के दमन का कारण ही विकसित होता है। अर्थात जिसने अपनी शरीर और मन इन्द्रियों कि इच्छाओं को मार कर इनको जित लिया वहीं इन्द्रजित अर्थात देवों का राजा बन जाता है और जिसने अपना सामराज्य मृत्यु लोक से उपर उठा कर इसका विस्तार करके स्वर्ग पर अधिकार कर लेता है।

हम सब ऐसे समाज में रहते है जहाँ पर सभी कि आखें बन्द है सभी अंधे के समान है हमे एक कदम भी चलना नहीं आता है हम सब हर कदम पुंछ पुछ कर चलते है। फिर भी अपने जीवन में कभी मजिल पर नहीं पहुंचते है। हमारी मंजिल क्या है? जहाँ तक आध्यात्म का सवाल है, सत्य का सवाल है, ज्ञान का सवाल है इसके बारे में भी हम लोगों से पुछते है और इस क्षेत्र के कई विशेषज्ञ भी है। कुछ मर चुके है उनके विचार को उनके अनुयायी आज भी मुर्दे कि तरह से ढोये जा रहे है। जिसे हम सब समाज कहते है इसमें तो सायद हि कभी कोई आँख वाला पैदा होता हो। मैंने अभी तक ऐसा कोई भी एक आदमी को नहीं देखा। जिसकी आखें खुली हो हर व्यक्ती उसी पुराने बताये गये मार्ग पर चला जा रहा है। सभी लकिर के फकिर हो चुके है। हर धर्म में यही हो रहा है सारे धर्म शास्त्रों का सर्जन इसलिये किया गया है। कि वह मानव के सहायक बन सके यद्यपि यह हो रहा है। कि मानव उनका शिकार बनता जा रहा है। उनको अपने हिसाब से भाष्य किये जा रहा है। जो सरलता के नाम पर किये जा रहे है। लेकिन इतना अधिक सरल करदिया गया कि उसका मुल भाव ही खो गया है। आध्यात्म का अर्थ इतना है कि अपने आत्मा के अध्याय को पढ़ा जाये। अपने ज्ञान चक्षु को खोल कर संसार में चला जाये। यह विषय इतना अधिक सरल है कि इसको पढ़ने के लिये किसी भी ना गुरु कि ज़रूरत है, ना ही किसी सहायक कि ज़रूरत है। ज़रूरत है तो केवल क्रान्ति कि इस मार्ग पर चलने का मतलब है कि मैं अब अपने लिये नया मार्ग बना रहा हूं। यह मार्ग किसी के द्वारा आज तक नहीं बनाया गया है। सारे मार्ग जो भी बनाये गये है वह किसी निश्चित अवधारणा को ध्यान में रख कर बनाये गये है। जब कि सत्य और ज्ञान के लिये किसी की ज़रूरत नहीं है। सत्य तो स्वयं में से पैदा किया जाता है, उसके लिये तो बिद्रोह करना पड़ता है। जिसने इस संसार के असत्य अज्ञान नस्वरता पर सवाल उठाय वहीं यहाँ पर इन सबका शिकार बना।

मानव जीवन का लक्ष्य कुछ नहीं है जीवन अपने आप में स्वयं लक्ष्य है जीवन का होना बहुत बड़ी बात है यद्यपी संसार में बृहंगम दृष्टि डालने पर पता चलता है। कि यहाँ सब कुछ है शिवाय जीवन के, इसके कारण

ही जीवन में कष्ट है, क्योंकि कोई जीवन को पहचानने वाला नहीं है। यहाँ सब का परिचय मृत्यु से रोज हो रहा है और लोग मृत्यु से बचने का रास्ता तलास रहें है। इस तरह से मानव कुल मिला कर मरना नहीं चाहता है। इस लिये वह सारे प्रक्रम को अपने जीवन में करता है। जीवन से अपरिचित है इसका जीवन से परिचय कैसे हो? यह मुख्य समस्या यहा पर है, यह जिसके लिये कहते है यत्ते यम वैवस्वतम् मनोजगामदूरकम्। तत्ते वर्तयामसि क्षयाय जीवसे॥ हमारा मन हमारे वश में नहीं है कही दूर चला गया है किसी और में जा कर भटक गया है उसको पास लाने के लिये मंत्र कहता है। हम सब यहाँ जीवन के लिये ही आये है जीवन ही हमारे लिये सब कुछ है, जिसको जीवन मिल गया, वह सब कुछ पालिया है। इस जगत में।

यह सत्य है कि मरना कोई नहीं चाहता है, यह भी सत्य है कि यहाँ सब को मरना है और आज ही मरना है, क्योंकि आज के शिवाय मनुष्य के हाथ में कुछ नहीं आता है। मरने से पहले कुछ कार्य है उसको कर लेने में ही जीवन कि सार्थकता है। वह कार्य क्या है? जिसकी बात मंत्र करता है, मरने से बचने का कोई रास्ता नहीं है, जो मरने से बचने का प्रयाश करते है, वहीं यहाँ पर विद्वानो कि दृष्टि में मुर्ख कि संज्ञा से नवाजे गये है। जो मुख्य कार्य करना है वह एक है कि मरने कि तैयारी करो और रोज थोड़ा-थोड़ा कर मरते जाओ एक दिन ऐसा तभी जीवन में आयेगा जब सब कुछ मर जायेगा कुछ भी नहीं बचेगा। ना कोई रिस्ता बचेगा ना ही कोई सम्बंध ही बचेगा और ना ही कोई समाज या संसार ही बचेगा। जब तक कुछ बचता है। जिसका केवल एक ही मतलब है। कि अभी तक तुमने वह मुख्य विषय नहीं प्राप्त किया है। जिसके लिये वास्तव में इस संसार में आना हुआ है। सम्बंधों के इस संसार में हर रोज एक नया सम्बंध बनता है। हर रोज तुमको अपने जीवन से एक सम्बंध को खत्म भी करना होगा। अन्यथा इस संसार में सम्बंधों के चक्कर में पड़कर स्वयं से बहुत दूर निकल जाओगे और तुम को स्वयं के पास आने का समय ही नहीं मिलेगा। क्योंकि तुमको आज ही मरना ही है। रोज तुम एक नया रास्ता और एक नये विचारक से प्रभावित होते हो। क्या तुम जानते हो? कि जिस विचारक ने तुमको जीवन को जीतने के लिये और जीवन में संघर्ष करने के लिये लड़ने कि प्रेरणा देता है। क्या वह इस संसार में संघर्ष और अपने विचार के आधार पर इस संसार में जीन्दा एक दिन भी रह पाया है। वास्तव में यदि जब तुम निस्पक्ष हो कर विचार करोगे। तो यह सत्य पाओगे कि वह आदमी झुठा था जिसने हमें सच्चे होने का पाठ पढ़ाया है। हम सब अक्सर संसार में देखते है कि सारा साहित्य और सारें महापुरुष यहाँ पर हम सब को केवल एक बात ही कहते है। कि अन्याय के खिलाफ, असत्य के खिलाफ, दरिद्रा के खिलाफ संघर्ष करों लड़ों। आज तक लड़ते हुये यह मानव कहाँ तक पहुंच पाया है? क्या आज तक किसी को परास्त कर पाया है? यहाँ पर सभी झुठे और हारे हुये ही लोगों कि भिड़ है। लेकिन यहाँ पर कोई यह स्विकारने के लिये तैयार नहीं है। कि मैं हार चुका हूँ या लड़-लड़ कर मैने सत्य को नहीं प्राप्त कर पाया हुं। मैं वास्तव में एक झुठ का पुतला हूं। क्या हमारी दरिद्रा का अन्त हमने कर लिया है? क्या हमने इस संसार में न्याय का सामराज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर लिया है? क्या हमने अपने सभी शत्रुओं को समाप्त कर लिया है? इन सब का केवल एक जबाब ही मिलेगा नहीं। हमने कुछ भी करने में सफलता को नहीं प्राप्त कर पायें है। हाँ यह हमने अवश्य कर लिया है कि स्वयं को समस्या से दूर कर लिया है स्वयं को छुपा लिया है या उसको कुछ समय के लिये पिछे धकेल दिया है। किसी का भी अन्त करनें में हम सफल नहीं हुये है। हाँ यह अवश्य सत्य हैं कि हम स्वयं को अपने अन्त के करिब और एक कदम बढ़ा लिया है।

जैसा कि राज भ्रत्रिह्र कह रहे है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।

कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

हमने भोग नहीं भुगते, बल्कि भोगने ही हमें भुगता है; हमने तप नहीं किया, बल्कि हम स्वयं ही तप्त हो गये हैं; काल पसार नहीं हुआ, हम ही पसार हुए हैं; तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, पर हम ही जीर्ण हुए हैं! मनुष्य की तृष्णा कितनी क्षुद्र है और इसकी लपलपाती जीभ कितनी भूखी है, इसे उपर्युक्त उपालम्भ के द्वारा कवि बता रहे हैं कि संसार में मौजूद भोगों का हजारवाँ अंश भी मैं न भोग पाया और मैं खुद संसार द्वारा भोग लिया गया, सम्पूर्ण जीवन में इतनी भाग-दौड़ के बावजूद एक भी सिद्धि प्राप्त न कर पाया बल्कि मैं खुद ही निचोड़ लिया गया, समय (वर्तमान) तो खत्म न हो पाया अर्थात सफलता का इंतजार करता ही रह गया लेकिन मेरे ही जाने का समय आ गया; हाय मेरी तृष्णा! तू तो बूढ़ी न हुई लेकिन मैं ही बूढ़ा हो गया। तृष्णा जीवन को किस तरह बर्बाद करती है, इसका वास्तविक भयंकर स्वरूप कवि ने प्रस्तुत किया है। अतः आज और अभी तृष्णा से पल्ला झाड़कर संतोष का दामन थाम लें ताकि बाकी का जीवन उन्नति के मार्ग पर लग सके.

9 – मैं हि तुम सब का पिता हूं

ओ३म् स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥ ऋग्वेद 1.9

वह परमेश्वर जो अग्नि के समान है वहीं परमेश्वर हम सबके पिता के समान है। क्योंकि इसी परमेश्वर कि हम सब संतान है। या हम सब उस परमेंश्वर के रूप है। जिस प्रकार से एक-एक पति अपनी पत्नी के गर्भ में अपने बच्चे को स्थापित करके वह स्वयं को पुनः पैदा करता है। जिसके कारण ही औरत को माँ भी कहते है। क्योंकि वह सारे पिताओं को जन्म देने वाली है। इसी अभिप्राय को यहाँ मंत्र को परमेंश्वर व्यक्त कर रहा है कि वह परमेश्वर ही स्वयं को हमारे रूप में उत्पन्न कर रहा है। इसका अभिप्राय यह भी है कि परमेश्वर उसी प्रकार से समिप है हम सब के जिस प्रकार से हमारा पिता हमारे करिब है। जिस प्रकार से मानव शरीर का निर्माण स्त्री पुरुष के अंडाणु और शुक्राणु के द्वारा स्त्री के गर्भ में निसेचन के द्वारा होता है। इसके द्वारा हि सुक्ष्म अस्तर पर माँ और पिता की आत्मा भी सुक्ष्म रूप से विभाजित हो कर उस बच्चे की आत्मा का रूप बन जाती है। इसमें पिता और माँ दोनो एक साथ संयुक्त रूप से विद्यमान होते है। अर्थात वह पिता और माँ का एक संयुक्त रूप है। उसे अन्दर माँ के और पिता के संयुक्त रूप से दोनों के गुण विद्यमान होते है। यहाँ पर जो माँ और पिता दो लिंग थे वह एक लिंग में उपस्थित हो गये, इस बच्चे के रूप में जिससे द्वेत खत्म होगया और अद्वेत का जन्म हो गया। जिस प्रकार से आज का विज्ञान किसी भी प्राणी का जिन लेकर उसको और प्राणियों के जिन के साथ मिला कर एक नयी प्रजाती का जीव पैदा कर सकता है। या फिर कर रहा है, तो क्या इनमें आत्मा नहीं है, नहीं ऐसा नहीं है आत्मा तो सब में विद्यमान है लेकिन आत्मा का बोध नहीं है। यहाँ पर यही कार्य मुस्किल है कि आत्मा तो सभी प्राणियों के शरीर में विद्यमान है। जैसा कि परमेश्वर मंत्र के जरिये उपदेस कर रहा है। इसलिये वह संकेत भी कर रहा है कि वह हम सब के पिता के समान है पिता और पुत्र में कुछ खाश अन्तर वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं है पिता और पुत्र में जो अन्तर है वोध और ज्ञान कि दृष्टि से है। यह शरीर तक कि बात हो रही है। लेकिन शरीर के परें जो वोध है जिसको ज्ञान भी कहते है वह स्वयं के अनुभुतियों से उत्पन्न होता है।

(स) अर्थात वह मतलब चेतना से है (नः) हम सब कि जो चेतना है वहीं हमारा एक अस्तर से पिता के समान है यहाँ पर शरीर के अस्तर से उपर कि बात परमेश्वर कर रहें है। जिसके जन्म दाता हम सब स्वयं है। हम चाहे तो हम अपनी चेतना को जन्म दे सकते है इसका पूरा का पूरा अधिकार हमारा है। हमारे माँ बाप नें हमारी शरीर को तैयार करके हमको दिया है। लिकिन हमारी आत्मा का जन्म देना उनके बश कि बात नहीं है।

यदि यह उनके सामर्थ कि बात होती तो वह अवश्य हमारी आत्मा को भी जन्म दे सकते थे। लेकिन यह उनके लिये संभव नहीं है। जिस प्रकार से हमारे लिये यह समभव नहीं है कि हम सब अपनी शरीर को स्वयं जन्म दे सके. इसका मतलब यह है कि एक अर्थ में हम जब अपने माता पिता के द्वारा शरिर को प्राप्त करते है तो उनके गुण संसकार जो भी होते है वह सब हम सब को सिधा-सिधा हस्तान्तरित हमारी शरीर में समाहित हो जाते है। यह सब संसकार शरीर के अस्तर तक ही संभव है। जिसके कारण ही हम सब परतंत्र होते है। इसमें हमारा स्वयं का बहुत कम ही योगदान होता है। केवल यह कि हम उस शरीर को धारण करते है जो उनके ससंकारो और उनके गुण धर्मों से निर्मित हुई है। यह हमारी शरीर जो एक परतन्त्रता के पिजड़े से अधिक नहीं है। एक अस्तर पर हम सब स्वतन्त्र है अपनी आत्मा के अस्तर पर जिसके लिये हमे अपनी आत्मा को जिवित करना होगा। अर्थात हम सब को पुनः शरीर के संकारों से बचने के लिये नई शरीर के जन्म के लिये निरोध करना होगा। जैसा कि पंतजली अपने योग दर्शन के सुत्र में कहते है कि योगश्चितवृत्ती निरोध॥ अर्थात योग का मलब चित्त कि वृत्तियों का निरोध है। हमारे चित्त में सिर्फ़ वहीं संसकार है जिसको हमने अपने माता पिता से प्राप्त किया है उसके अन्दर हमारी स्वयं कि आत्मा का कोई संकार नहीं है। क्योंकि आत्मा कभी शरीर कि तरह से जन्म नहीं लेती है ना हि शरीर की तरह से मरती ही है। वह अजन्मा अविनाशी अजेय और काल जई है। उसी आत्मा कि बात यह मंत्र कर रहा है। जिसे अग्नि रूप में सम्बोधित किया जा रहा है। वह आत्मा जो इस शरीर का पिता है वह आत्मा जो शरीर नहीं है। जब भी शरीर का उत्पादन होता है तो ज़रूरी नहीं है कि उसमें आत्मा का भी उत्पादन हो। आत्मा एक उर्जा के समान है जो शरीर को संचालित करती है। आत्मा शरीर को और उसके प्रत्येक अंगों को सुचारु रूप से चलने के लिये परयाप्त मात्रा में अग्नि उर्जा प्रदान करती है। जिस प्रकार से विद्युत कियी यंत्र को चलाता है उसी प्रकार से चलाती है। आत्मा का जन्म नहीं होता है यह सर्वथा सत्य है लेकिन हम अर्थात जो मन है वुद्धि है उसके द्वारा आत्मा को पूर्ण रूप से हमारी शरीर में विकसित होने के लिये अवसर देना होगा। जब हम अपने मन और वुद्धि को संसार के चक्कर में उलझा देते है अर्थात विवाह और बच्चे इत्यादि में रम जाते है अपने माता पिता कि तरह से तो हमारा आत्मा का सर्जन या उसका विकास शरीर के अस्तर से अधिक नहीं हो पाता है। क्योंकि हमारी ज़्यादा से ज़्यादा शक्ति और सामर्थ इसी शारिरीक सांसारिक विषयों कि प्राप्ति और उसके भोग में ही व्यय हो जाता है। हम सब थोथे हो जाते है। अर्थात अंदर से खोखले हो जाते है। यह विषय पूर्णतः बुद्धि के अस्तर पर समझने योग्य है। तो सबसे पहला सर्त यहाँ यह है कि जब हम यह चाहते है कि हमरी आत्मा का सर्जन हो तो उसके लिये हमें शरीर के सर्जन पर रोक लगाना होगा। क्योंकि दो तरफ विकास संभव नहीं है या तो हम सरीर का हि सर्जन कर सकते है या फिर आत्मा का हि सर्जन कर सकते है।

इसलिये ही मंत्र कहता है कि सुपायनो भव अर्थात उसको सुन्दर तरह से प्राप्त करने के लिये या सुन्दर तरह से प्राप्त होने के लिये हमें सच के साथ होना होगा और इस संसार का यह सत्य है कि यह सत्य नहीं है यह अस्तय है। यह मृगतृष्णा या मृगमरिचिका के समान है। जो दिखाई तो देता है कि है लेकिन जब इसकी खोज करेगें तो इसका अस्तीत्व नहीं और दूसरी तरफ जो दिखाई नहीं देता है अर्थात चेतना लेकिन जब उसकी खोज हम सब स्वयं में करेंगे तो पाते है कि वह है और उसको पाने के लिये जो मार्ग है वह है उसका सतसंग करना अर्थात समाधिस्थ होना। उसके साथ जिना उसको ही सब कुछ मान कर चलना उसके ही भरोशे इस संसार सागर को पार करने का दृढ़ संकल्प प्रबल करना।

आत्मा क्या है? वह परमात्मा सत्ता का प्रतीक कैसे है? इन प्रश्नों का समाधान करते हुए केनोपनिषद में बड़ी मार्मिक चर्चा की गई है। जिज्ञासु पूछता है-

केनेषितं पतितं प्रेषितं मनः? केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः?

केनेषिताँ वाचमिमाँ वदन्ति? चक्षुः श्रोत्रं क उ देवोयुनक्ति॥

अर्थात्-मन किसकी प्रेरणा से दौड़ाया हुआ दौड़ता है? किसके द्वारा प्रथम प्राण संचार सम्भव हुआ? किसकी चाही हुई वाणी मुख बोलता है? कौन देवता देखने और सुनने की व्यवस्था बनाता है?

मन अपने आप कहाँ दौड़ता है। आन्तरिक आकाँक्षाएँ ही उसे जो दिशा देती है, उधर ही वह चलता है, दौड़ता है और वापिस लौट आता है। यदि मन स्वतन्त्र चिन्तन में समर्थ होता तो उसकी दिशा एक ही रहती। सबका सोचना एक ही तरह होता, सदा सर्वदा एक ही तरह का चिंतन बन पड़ता; पर लगता है पतंग ही तरह मन का उड़ाने वाला भी कोई और है, उसकी आकाँक्षा बदलते ही मस्तिष्क की सारी चिन्तन प्रक्रिया उलट जाती है। मन एक पराधीन उपकरण है-वह किसी दिशा में स्वेच्छा पूर्वक दौड़ नहीं सकता। उसके दौड़ने वाली सत्ता जिस स्थिति में रह रही होगी, चिन्तन की धारा उसी दिशा में बहेगी। मन को दिशा देने वाली मूल सत्ता का नाम 'आत्मा' है।

दूसरे प्रश्न में जिज्ञासा है कि माता के गर्भ में पहुँचने पर प्रथम प्राण कौन स्थापित करता है? उसमें जीवन संचार के रूप में हलचलें कैसे उत्पन्न होती है। रक्त-माँस तो जड़ है। जड़ में चेतना कैसे उत्पन्न हुई? यहाँ भी उत्तर वही है-वह आत्मा का कर्तृत्व है। भ्रूण अपने आप में कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं। माता-पिता की इच्छानुसार सन्तान कहाँ होती है? पुत्र चाहने पर भी कन्या गर्भ में आ जाती है। जिस आकृति-प्रकृति की अपेक्षा की उससे भिन्न प्रकार की संतान जन्म लेती है। इसमें माता-पिता का प्रयास भी कहाँ सफल हुआ। तब भ्रूण को चेतना प्रदान करने का कार्य कौन करता है? उपनिषद्कार इस प्रश्न के उत्तर में आत्मा के अस्तित्व को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करता है।

मृत शरीर में प्राण संचार न रहने से उसके भीतर वायु भरी होने पर भी साँस को बाहर निकालने की सामर्थ्य नहीं होती। श्वांस-प्रश्वांस प्रणाली यथावत् रहने पर भी प्राण स्पन्दन नहीं होता। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान प्राणों द्वारा शरीर और मन के विभिन्न क्रिया-कलाप संचालित होते हैं, पर महाप्राण के न रहने पर शरीर में उनका स्थान और कार्य सुनिश्चित होते हुए भी सब कुछ निश्चल हो जाता है। अंडों की स्थिति यथावत रहते हुए भी जिस कारण मृत शरीर जड़वत् निःचेष्ट हो जाता है वह महाप्राण का प्रेरणा क्रम रुक जाना ही है। इस सूत्र संचालक महाप्राण को ही 'आत्मा' कहते हैं।

तीसरा प्रश्न उत्पन्न होता है किसकी चाही हुई प्राणी मनुष्य बोलते हैं। निस्सन्देह यह कार्य मुख का नहीं है। शरीर और इन्द्रियों का भी नहीं है। यदि ऐसा होता तो भूखा होने पर पात्र-कुपात्र के आगे समय-कुसमय का ध्यान रखे बिना भोजन याचना की जाती है। कामुक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी शील संकोच को आड़े न आने दिया गया होता। पर शरीर और मन की आवश्यकताओं को बहुधा रोककर रखा जात है। अन्तःकरण क्षुब्ध होने पर मुख से कटु वचन निकलते हैं और उत्कृष्ट स्थिति में अमृतोपम वाणी निसृत होती है। यदि वाणी स्वतंत्र होती तो वह तोता की तरह अभ्यस्त शब्दों का ही उच्चारण करती रहती। वाणी से विष और अमृत, ज्ञान और अज्ञान निसृत करने वाली अन्तःचेतना उससे पृथक और स्वतन्त्र है-उसी का नाम 'आत्मा' है।

आंखें किसकी प्रेरणा से देखती है, कान किसकी इच्छानुसार सुनते है? यह प्रश्न उपस्थित करते हुए यह देखा जा सकता है कि क्या आँखों में देखने की या कानों में सुनने की स्वतंत्र शक्ति है। निश्चित रूप से वह नहीं ही है। यदि होती तो मृतक या मूर्च्छित स्थिति में भी आंखें देखती और काम सुनते। ध्यान मग्न होने की स्थिति में आँखों के आगे से गुजरने वाले दृश्य भी परिलक्षित नहीं होते और कानों के समीप ही बात-चीत होते रहने पर भी कुछ सुना नहीं जाता। अनेक दृश्यों में से आंखें अपने प्रिय विषय पर ही टिकती है। कई तरह की आवाजें होते रहने पर भी काम उन्हीं पर केन्द्रित होते हैं जो अपने को प्रिय है। इन ज्ञान प्रधान काम और चक्षु इन्द्रियों में अपनी निज की क्रियाशीलता नहीं है, जिसकी प्रेरणा से वे सक्रिय रहते हैं वह सत्ता "आत्मा" की ही है।

दूसरे मन्त्र में ऋषि ने इन प्रश्नों का समुचित उत्तर स्वयं ही प्रस्तुत कर दिया है-

"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्धाचो हवाज स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषंतिमुच्य धीराः। प्रेत्यास्माल्लोकादंमृता भवन्ति।"

अर्थात्-कान में जो सुनने की शक्ति है, मन में जो मनन करने की शक्ति है, वाणी में जो बोलने की शक्ति है, प्राण में जो संचालन शक्ति है, आंखों में जो देखने की शक्ति है, वह देवात्मा ही जीवन का संचार करती है।

जब प्रश्न उत्पन्न होता है यह आत्मा आखिर है क्या? उसके उत्तर में ऋषि कहता है-

'छायातपौ वेदविदो वदन्ति'।

अर्थात्-यह आत्मा धूप के साथ जुड़ी हुई छाया की तरह है। उसको अस्तित्व परमात्मा सत्ता पर अवलम्बित है। सूर्य की धूप चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। चन्द्रमा की चाँदनी से धरती प्रकाशवान होती है। उसी तरह परमात्मा की सत्ता आत्मा पर प्रतिबिंबित होती है और फिर उसकी ज्योति इन्द्रियों को आलोकित करके उन्हें सम्वेदनाएँ अनुभव करने योग्य बनाती है।

यथार्थ ज्ञान के शोधकर्ता इन्द्रिय ज्ञान से ऊपर उठकर आत्म ज्ञान का प्राप्त करते हैं और फिर उससे ऊंची परमात्मा सत्ता में अपने आपको विलीन करते हुए ऊपर उठते हैं और अमृत को प्राप्त करते हैं। इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए उपनिषद्कार कहता है-

'अतिमुच्य धीरा प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति'।

अर्थात्-आत्म-ज्ञानी, धीर पुरुष इन्द्रियों के प्रेरक जीवात्मा का अतिक्रमण करके इस लोक से अर्थात् जन-साधारण के द्वारा अपनायें गये निष्कृष्ट स्तर से ऊपर उठ कर अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।

यहाँ अमृतत्व का अर्थ है अनन्त जीवन को मान्यता और तद्नुरूप दृष्टिकोण अपनाकर तद्नुरूप चिन्तन एवं कर्तृत्व का निर्धारण। लोग अपने का मरणधर्मा मानते हैं, तात्कालिक लाभों को अवाँछनीय होते हुए भी उन्हें ही सब कुछ समझ कर टूट पड़ते हैं और भविष्य को भूलकर उसे अन्धकारमय बनाते हैं। खाओ, पियो मौज उड़ाओ. कर्ज लेकर मद्यपान करते रहो की नीति अपना कर लोभ, मोह में ग्रसित वासना, तृष्णा के लिए आतुर मनुष्यों का दृष्टिकोण मरणधर्मा है। उसे अपनाने वाले जीवित मृतक है। इसके विपरीत जो अनन्त जीवन का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए आज कष्ट उठाने की तपश्चर्या का स्वागत करते हैं वे दूरदर्शी विवेकवान् अमर कहलाते हैं अमृतत्व को प्राप्त होना इसी परिष्कृत दृष्टि-कोण को अपनाने के साथ जुड़ा हुआ है।

ऊपर धीर शब्द का उपयोग हुआ है। अध्यात्म शास्त्र में 'धीर' शब्द निर्विकारी के लिए और 'मूढ' सविकारी के लिए प्रयुक्त होता है। धृति को धर्म का प्रथम चरण इसीलिए माना गया है कि मनुष्य निर्विकार रह सकने की अपनी अविचल अध्यात्म निष्ठा का परिचय देता है। इसके विपरीत विकारों को अपनाने में उतावली करने वाले अधीर कहलाते हैं। उन्हीं अदूरदर्शियों को 'मूढ' संज्ञा दी गई है। "विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषाँ न चेताँसि त एव धीराः"।

अर्थात्-विकारग्रस्त होने की परिस्थितियाँ रहने पर भी अविचल बने रहते हैं वे ही 'धीर' है।

धीर व्यक्ति आत्मबोध प्राप्त करते हुए जिस परमात्म सत्ता में प्रवेश करते है; उसे इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। आत्मानुभूति ही उसे उपलब्ध करने का एकमात्र साधन है। यदि इन्द्रियों से उसे देखने का प्रयत्न किया जाय तो निराशा अथवा भ्रान्ति ही हाथ लगेगी। इस संदर्भ में केनेपनिषद का अगला प्रतिपादन है-

'न नत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्यो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्य देव तद्विदितादयों अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषाँ ये न स्तद्वया चचक्षिरे"।

अर्थात्-उसे आंखें नहीं देख सकती, वाणी नहीं कह सकती, मन नहीं जान सकता। हम नहीं जानते कि उसे जिज्ञासाओं को किस प्रकार समझाया जाय। हमने जो सुना जाता है उससे वह ब्रह्म विलक्षण है। वह इन्द्रियातीत होने पर भी नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

वृहदारण्यक उपनिषद् में इसी तथ्य को दूसरे शब्दों में कहा गया है-'विज्ञातारं अरे किम् विजानीयात्'

अरे, उस जानने वाले को किसके सहारे जताया जाय?

सूर्य को दीपक से कैसे देखे? वह तो स्वयं ही प्रकाशवान है। प्रकाश को प्रकाश से देखने की क्या आवश्यकता? दृष्टि की सत्ता अनुभव करने के लिए नई बुद्धि कहाँ से लाई जाय? अंधेरे को देखने के लिए दीपक और अन्यान्य पदार्थों को जानने के लिए बुद्धि की आवश्यकता रहती है, पर दीपक और बुद्धि तो स्वयं ही प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष को फिर किस प्रत्यक्ष से जाने? हम है और इन्द्रियों को प्रेरणा देने वाले है-इन्द्रियों के कारण हम चैतन्य नहीं, वरन् हमारे कारण इन्द्रियों में चेतना है, यह जान लेने पर आत्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष हो जाता है। आत्मा पर मल आवरण विक्षेप के कषाय कल्मष चढ़ जाने से वह मलीन बनता है और दीन दयनीय दुर्दशाग्रस्त परिस्थिति में पढ़ा जकड़ा दुख भोगता है। मलीनता की इन आवरण परतों को उतार फेंकने पर उसका निर्मल स्वरूप प्रकट होने लगता है। दर्पण पर जमी हुई धूलि हटा देने से उसमें अपना प्रतिबिम्ब सहज ही देखा जा सकता है।

आत्म-साक्षत्कार इसी का नाम हैं-इसे ही परमात्मा का दर्शन एवं परब्रह्म की प्राप्ति कहते हैं। आँखों से किसी देवावतार के स्वरूप को देखने की लालसा एक भ्रान्ति मात्र है-जिसका पूरा हो सकना सम्भव नहीं। ईश्वर को धर्म चक्षुओं से नहीं, ज्ञान चक्षुओं से ही देखा जा सकता है। आंखें पंच भौतिक पदार्थों की बनी होने के कारण अपने सजातीय जड़ पदार्थों को ही देख सकती है। उनके लिए चेतन को उसकी गतिविधियों को देख सकना सम्भव नहीं न अन्य इन्द्रियों से उसकी अनुभूति हो सकती है। आत्मा को देख सकना तो दूर उसकी अनुभूतियों को प्रसन्नता-अप्रसन्नता, आशा-निराशा, स्नेह-द्वेष, संतोष-असन्तोष तक की इन्द्रियों से अनुभव नहीं किया जा सकता तब सर्वव्यापी नियामक सत्ता को-परमात्मा को इन्द्रियों से सहारे कैसे देखा सुना या जाना जा सकेगा?

आत्मा का परिष्कृत रूप ही परमात्मा है। जीवात्मा वह जो लोभ, मोह से-वासना, तृष्णा से प्रभावित होकर स्वार्थ-परता एवं संकीर्णता के बन्धनों में जकड़ा पड़ा है। अपना चिन्तन, कर्तृत्व शरीर और कुटुम्ब के भौतिक लाभों तक सीमित रखने वाला भव-बन्धनों में जकड़ा जीव है। मुक्त उसे कहा जायगा जिसने अपनेपन की, आत्म-भाव की परिधि को अधिकाधिक विस्तृत बना लिया है। जिसके लिए समस्त विश्व अपना परिवार है। समस्त प्राणी जिसके अपने कुटुम्बी है। औरों के सुख को अपना दुख मानकर जो उसके निराकरण का प्रयास करता है। औरों को सुख देकर सुखी होता है। अपने और औरों के बीच की दीवार तोड़कर सर्वत्र एक ही आत्मा का विस्तार देखता है वह दिव्यदर्शी ही दूसरे शब्दों में परमात्म दर्शी कहा जाता है। आत्मा का परिष्कृत एवं विकसित रूप ही परमात्मा है। परमात्मा स्तर को प्राप्त करना ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

10 – मैं ही तुम सब का अमृत हूँ

ओ३म् वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेशां पाही श्रुधि हवम्॥ ऋग्वेद सुक्त 2.1

ऋग्वेद के प्रथम सुक्त में प्रभू स्वयं को अग्नि कह कर सम्बोधित करते है और इस दूसरे सुक्त में वह कहते है कि वह वायु के समान है, इसके पिछे एक बहुत महत्त्वपूर्ण कारण है उसको समझ ले, जैसा कि हम सब इस सासांर किसी वस्तप को समझने के लिये उदारहरण को देते है इस संसार के लौकिक वस्तुओं का, वहीं यहाँ पर भी हो रहा है अर्थात परमेंश्वर स्वयं को जिस वस्तु को जानते है उसी वस्तु से हम सब को समझ रहा है। परमेश्वर को समझाने का तरिक अलौकिक और अद्भुत है। हम सब अग्नि को और जल को बहुत अच्छि तरह से जानते है और इनको अपने दैनिक जीवन में प्रयोग भी करते है बिना इनके उपभोग के हमारा जीवन इस पृथ्वी पर बहुत कठीन और दुस्कर होगा। जैसा कि हम सब जानते है कि यह सब कुछ उर्जा से बना है हम सब भी इस उर्जा से ही बने है। जैसा कि आज का वैज्ञानिक कहते है। यह बात बहुत पुरानी है और यह सब वेद के मंत्रो के द्वारा प्रतिपादित हो रहा है। जैसा कि हमने पिछे चर्चा किया था किस तरह से जल का एक अणु अपने अन्दर दो कणों को मिला कर एक परमाणु बनाता है। जिसमें एक आक्सिजन है दूसरा हाइड्रोजन के कण है। इसमें जो आक्सिजन है वहीं वायु है, इस प्रकार से यह जल का जो एक परमाणु है इसमें–इसमें अग्नि, जल, वायु यह तिन तत्व मुख्य रूप से उपस्थित है।

यह वायु क्या है और किससे निर्मित है? जैसा कि हम सब को हमारे आज के विज्ञान ने बताय है कि यह जल और अग्नि एक रासायनिक अभिक्रिया के कारण ही इस रूप में हम सब को प्राप्त होते है और यह वायु इनमें ही व्याप्त है, इस तरह से यह मुख्य तिन तत्व हुए जिसको हम सब त्रैत वाद कह सकते है इन तीन से ही और दूसरे तत्व प्रकट होते है। जिसमें आकाश और पृथ्वी भी है। यह पहले एक परमाणु के रूप में प्रकट हुये, यह परमाणु कैसे प्रकट हुआ? यह भी एक प्रस्न है तो इसके उत्तर में यह है। ऐतरेय उपनिषद कहता है।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत् किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति॥1.1.1॥

सर्व प्रथम इस श्रृष्टि के पहले केवल यह एक आत्मा ही विद्यमान था और इसके अतिरिक्त जीवन की आखं को झपकाने वाला कोई नहीं था। उस आत्मा ने यह श्रृष्टि उत्पन्न अर्थात श्रृष्टि के सर्जन करने कि इच्छा जागृत हुई।

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः। पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः॥1.1.2॥

उस आत्मा ने अम्भ, मरिचि, मर और आप इन लोको कि रचना की। जो द्युलोक से परे है स्वर्ग लोक जिसकी प्रतिष्ठा है वह अम्भ है, अन्तरिक्ष (भुवर्लोक) मरिची है पृथ्वी मर लोक है जो पृथ्वी के निचे है वह आप है।

उसने आत्मा ने विचार किया कीं मैं लोकों को अर्थात इस संसार विश्वब्रह्मण्ड का सर्जन करु और फिर उसने इस विश्वब्रह्माण्ड को रचा, इनको रचने के लिये उसने जल का उपयोग किया जो यहाँ मरने वाला विर्य है। जिसके लिये यहाँ पर मरिची कहा जा रहा है। इस से सभी मरने वाले तत्व जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इत्यादि अन्तरिक्ष के साथ ही विराट पुरुष को वह रचा जिसकी शरीर ही यह विश्वब्रह्माणड है।

स ईक्षतेमे नु लोकाः लोकपालान्नु सृजा इति। सोऽद्भ्य एव पुरूषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत्॥1.1.3॥

और इस पुरुष को उसने लोकपाल बनाया इन सब का स्वामी जो इस मृत्युलोक के सभी जड़ और मरने वाले पदार्थों कि रखवाली कर सके और इनको अपने नियंत्रण में रख सके.

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डम्। मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्याँ प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षीभ्याँ चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्याँ श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङनिरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधि वनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः॥1.1.4॥

इसके बाद उसने इस पुरुष को तपाया और जब वह पुरुष तप गया तो उसका मुख खुला। जैसे अण्डा फटता है मुक से वाणी निकली, वाणी से अग्नि निकली, जिससे उस विराट पुरुष के दोने नाशिकायें खुली और नासिकाओं से प्राण निकला और प्राण से वायु निकली, जिससे दोनों आखों के गोलक बने और दोनों आखें खुली। आखों से चक्षु देखने का इन्द्रिय निकला, चक्षु से सूर्य निकला। इसके पश्चात कान खुले और कानो से श्रोत्र निकले, श्रोत्र से दिशाये निकली, च्वचा खुली और त्वचा से लोम अर्थात रोए आदि निकले, (स्पर्श इन्द्रिय) और लोमों से औषधिया, वनस्पत्तियाँ निकली, हृदय खुला और हृदय से मन निकला, मन से चन्द्रमा। नाभी खुली और नाभी से अपान निकला और अपान से मृत्यु निकली, जिसस शिश्न खुला और शिश्न से विज निकला और विज से जल निकला।

सर्वप्रथम जब कुछ भी नहीं था शिवाय परमेश्वर के इस परमेश्वर ने शब्द का उच्चारण किया अपने अदृश्य मुख से जिससे यह शब्द जो ध्वनी रूप थी अनन्त में व्याप्त हो कर उर्जा का सुक्ष्मतर रूप में प्रकट हुई और यह उर्जा ही परमाणु रूप हुया और इस परमाणु को सर्वप्रथम तिन भागों में जाना गया जिसको ही हम सब सत, रज, तम के रूप में जानते है और यह तिन तत्व मिल कर ही किसी पदार्थ के परमाणु को उत्पन्न करते है। जैसा कि हम सबने जाना कि यह परमाणु तिन कणों से मिल कर बना है इसमें ही यह तीन कण अग्नि, इन तीनों को सात-सात रूपों में भिभक्त किया गया है। पहले अग्नि के सात रूपो के नाम इस प्रकार से बताये गये है। वेद के प्रधान देवताऔं में से एक। विशेष—ऋगवेद का प्रादुर्भाव इसी से माना जाता है। वेद में अग्नि के मंत्र बहुत आधिक है। अग्नि की सात जिह्वाएँ मानी गई है जिनके अलग-अलग नाम है, जैसे—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता। इसी प्रकार से वायु भी सात रूप में बताई गई है।

सात लोक हैं: पहले 3 भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक। इन तीनों को त्रैलोक्य कहते हैं। ये त्रैलोक्य नाशवान लोक हैं। दूसरे 3 जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक-ये तीनों अनश्वर या नित्य लोक हैं। नित्य और अनित्य लोकों के बीच में महर्लोक की स्थिति मानी गई है। उक्त 7 में त्रैलोक्य की वायु का वर्णन है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वेदों में वायु की 7 शाखाओं के बारे में विस्तार से वर्णन मिलता है। अधिकतर लोग यही समझते हैं कि वायु तो एक ही प्रकार की होती है, लेकिन उसका रूप बदलता रहता है, जैसे कि ठंडी वायु, गर्म वायु और समान वायु, लेकिन ऐसा नहीं है। दरअसल, जल के भीतर जो वायु है उसका वेद-पुराणों में अलग नाम दिया गया है और आकाश में स्थित जो वायु है उसका नाम अलग है। अंतरिक्ष में जो वायु है उसका नाम अलग और पाताल में स्थित वायु का नाम अलग है। नाम अलग होने का मतलब यह कि उसका गुण और व्यवहार भी अलग ही होता है। इस तरह वेदों में 7 प्रकार की वायु का वर्णन मिलता है।

ये 7 प्रकार हैं-1.प्रवह, 2.आवह, 3.उद्वह, 4. संवह, 5.विवह, 6.परिवह और 7.परावह। 1. प्रवह: पृथ्वी को लांघकर मेघमंडलपर्यंत जो वायु स्थित है, उसका नाम प्रवह है। इस प्रवह के भी प्रकार हैं। यह वायु अत्यंत शक्तिमान है और वही बादलों को इधर-उधर उड़ाकर ले जाती है। धूप तथा गर्मी से उत्पन्न होने वाले मेघों को यह प्रवह वायु ही समुद्र जल से परिपूर्ण करती है जिससे ये मेघ काली घटा के रूप में परिणत हो जाते हैं और

अतिशय वर्षा करने वाले होते हैं। 2. आवह: आवह सूर्यमंडल में बंधी हुई है। उसी के द्वारा ध्रुव से आबद्ध होकर सूर्यमंडल घुमाया जाता है। 3. उद्वह: वायु की तीसरी शाखा का नाम उद्वह है, जो चन्द्रलोक में प्रतिष्ठित है। इसी के द्वारा ध्रुव से सम्बद्ध होकर यह चन्द्र मंडल घुमाया जाता है। 4. संवह: वायु की चौथी शाखा का नाम संवह है, जो नक्षत्र मंडल में स्थित है। उसी से ध्रुव से आबद्ध होकर संपूर्ण नक्षत्र मंडल घूमता रहता है। 5. विवह: पांचवीं शाखा का नाम विवह है और यह ग्रह मंडल में स्थित है। उसके ही द्वारा यह ग्रह चक्र ध्रुव से सम्बद्ध होकर घूमता रहता है। 6. परिवह: वायु की छठी शाखा का नाम परिवह है, जो सप्तर्षिमंडल में स्थित है। इसी के द्वारा ध्रुव से सम्बद्ध हो सप्तर्षि आकाश में भ्रमण करते हैं। 7. परावह: वायु के सातवें स्कंध का नाम परावह है, जो ध्रुव में आबद्ध है। इसी के द्वारा ध्रुव चक्र तथा अन्यान्य मंडल एक स्थान पर स्थापित रहते हैं।

हमारी सफलता का राज क्या है? यहाँ कौन नहीं चाहता है कि वह अपने जीवन में सफल हो और अपनी मन चाही मंजिल को इस संसार में उपलब्ध करें। जैसा कि हम सब जानते है लेकिन इस जीवन में सफल बहुत हि कम व्यक्ती होते है। जो सफलता को उपलब्ध करते है, इसके पिछे कारण क्या है? आज हम उन सभी मुख्य कारणों पर बिचार करेगें और भरसक प्रयाश करेंगे उनको किस प्रकार से दूर किया जा सकता है।

पहली बात यह कि जीवन में सफलता का चाहना हि ज़रूरी नहीं है, मैं ऐसे बहुत लोगों को अच्छी तरह से जानता हूँ कि जो चाहते तो बहुत कुछ है लेकिन उसको वह अपने जीवन में सफलता उपलब्ध नहीं कर पाते है। वह हमेंशा समय से पिछे रहते है। समय हमेंशा उनसे आगे रहता है। वह सब कुछ जितना चाहते है लेकिन स्वयं को हार कर यह कैसे संभव है। सफलता का यह पहला सबक है कि हम सबसे पहले अपने मन बचन कर्म से स्वयं को संतुलित करें और एक रास्ते पर चलते रहते रहे मंजिल जब तक नहीं पहूंच जाते है।

माना कठिनाई बहुत बड़ी है यहाँ कोई कार्य आसान नहीं है सफलता को प्राप्त करने के लिये सिर्फ़ ज़रूरी यह नहीं है कि आप परिश्रम करते है ज़रूरी यह है कि सही दिशा में लम्बे समय तक परिश्रम करना होगा। हम जब समाज में नजर दौड़ाते है तो देखते है कि एक से बढ़ कर एक महा पुरुष हो चुके है जिन्होंने बहुत अधिक कठिन परिस्थियों में अपने दिमाग का संतुलन बनाये रखा। और अपने जजीवन कि कमियों को दूर करके अपने जीवन कि सफलता को उपलब्ध किया। आज हमारे समाज में सबससे बड़ी कुरिती के रूप में जो कुछ उभर रहा है वह है निर्धनता बिमारी अपाहिजपना इसके चुगंल में अक्सर लोग फंस जाते है और इससे पार होने का मार्ग उनके जीवन में उन्हे नहीं दिखाई देता है। जब आपका समय खराब होता है तो सब आपके खिलाफ हो जाते है। यहाँ तक आपकी प्रकृति भी आपका साथ नहीं देती है। आपको जीने से अच्छा मरना लगता है और कितने लोग यह रास्ता चुन लेते है। अर्थात अपनी आत्म हत्या का यह रास्ता आसान नहीं है बहुत किठिन है लेकिन जब आदमी हर प्रकार से निराश हो जाता है और लड़ते-लड़ते बुरी तरह से थक जाता है उसको अपने जीवन में कहीं से भी आशा कि रौशनि नहीं दिखाई देती है। तो वह क्या करें वह आदमी बहुत अधिक मजबुर और निराशा को घनघोर बदलों से अपने आपको घिरा हुआ पाता है।

मैं ऐसे ही एक आदमी को जानता हूँ जो आत्महत्या के लिये तैयार हो चुका ता और वह प्रयाश कर रहा था स्वयं को समाप्त करने का, जब मैंने उससे पूछ कि भाई तुम इतना सुन्दर जीवन को छोड़ कर मरने के लिये क्यों उतावले हो चुके हो? तो उस आदमी ने अपने जीवन के सामाप्त करने का कारण मुझसे बताने लगा, वह कोई 40 साल का व्यक्ती था। उसने कहा कि मैं अब इस संसार से लड़ते-लड़ते बुरी तरह से थक चुका हूआ मुझे किसी प्रकार कि सफलता नहीं मिली है। आज तक मैं हर क्षेत्र हारा बुरी तरह से पराजित हूआ हूँ मुझे अब जिने कि इच्छा नहीं है मैं अब मरना चाहता हूं। मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है मेरा पिरवार मेरी सहायता के योग्य नहीं है। मेरी पत्नी और बच्चों कि मृत्यु हो चुकी है इस तंगी और गरिबी कि मार झेलते हुए. मैं भी बहुत लंबे समय से परेसान चल रहा हूँ मुझे ऐसी बिमारी ने पकड़ लिया है जिसका इलाज कराते-कराते थक चुका हूं और विमारी ठीक नहीं हो रही वह मुझे अन्दर ही अन्दर से खोखला करती जा रही है। मैं इस

विमारी को झेलते झलते पुरी तरह से टुट चुका हूँ मेरा सारा धन जो भी मैने कमाया था। इस विमारी के इलाज में खर्च कर दिया है। मेरे पास रहने खाने के लिये अब कुछ नहीं बचा है। मैं स्वयं को बहुत असहाय और लाचार महशुस कर रहा हूँ मेरे पास इस आत्म हत्या के शिवाय कोई रास्ता नहीं है।

मैने उस व्यक्ति कि बातों को बहुत ध्यान सुना और मैने समझा कि वास्तव में बहुत गंभिर समस्या है, मैंने उससे कहा कि हिम्मत मत हारो, परमेस्वर पर भरोशा करों और पुरुषार्थ करों सफलता अवश्य मिलेगी। उसने कहा जिस शरीर से पुरुषार्थ करना है। वह ही अब बेकार हो रही है यह किसी कार्य को पुरी तरह से करने में सफलता नहीं प्राप्त कर रही है। मैंने कहा कि शरीर से काम उतना ही लो जितना यह करने में समर्थ है। काम अपने मन और अपने आत्मा से लो और उसको द्वारा ही चिन्तन करो और हिम्मत मत हारो हौशला बनाकर रखो, इस तरह से आत्महत्या करने से तो तुम्हारी आत्मा को और अधिक कष्ट होगा। यद्यपि यदि तुम पुरुषार्थ करोगों तो हो सकता है कि तुम्हारी समस्या का समाधान मिल जाये। सबसे बड़ी उस आदमि की समस्या उसकी निर्धनता थी, दूसरी समस्या उसको ऐसे विमारी ने पकड़ लिया था, जिसका इलाज कराने पर भी वह ठीक नहीं हो रही थी। तीसरी समस्या उसकी थी कि उसका कोई साथ देने वला नहीं था। चौथी समस्या थी कि उसके पास रहने खाने के लिये भी पर्याप्त साधन नहीं था। ऐसी स्थिति में उसको मर जाना ही अपनी सारी समस्या का समाधान ठीक लग रहा था। क्योंकि वह अपनी विमारी से बुरी तरह से टुट चुका था। केवल एक बात पर मुझको उस पर दया आ रही ही थी। कि उसकी उम्र कोई बहुत अधिक अभी नहीं थी। मैंने कहा कि तुम बिल्कुल ठीक विचार रहे हो कि तुम्हारी आत्महत्या से ही तुम्हारी समस्या का समाधान संभव है। क्योकि अब तुम्हारे लिये जब इस दूनिया के सभी दरवाजे बन्द हो चुके है और जो सबसे बड़ा साधन तुम्हारी शरीर है, वह भी तुम्हार साथ नहीं दे रही है। तो फिर तुम किसके सहारे जि सकते हो, यहाँ तक तुम्हारे पास अपने रहने के लिये भी कोई स्थान नहीं है, इसके अतिरिक्त खाने के लिये भी नहीं है। तो मर ही जाओं यही ठीक है। लेकिन मैं तुमसे केवल एक ही बात कहहना चाहता हूं कि अभी तुम्हारे लिये सारे रास्ते बन्द नहीं है, यह आत्महत्या करना भी तो एक रास्ता ही है। जैसा कि मैं समझता हूँ कि ऐसी हमारे समाज में व्यवस्था होनी चाहिए कि जब किसी को इस संसार में जिना इतना अधिक मुस्किल हो जाये। तो उसके पास यह अधिकार अवस्य हो की वह स्वयं को मार सके और कैसा मोह इस न्सवर संसार का, मैं नहीं समझता कि क्या ठिक है क्या ग़लत हैं? मैं समझता हूँ कि यही उसके जिवन कि सबसे बड़ी सफलता है। स्वयं को इस नरक पूर्ण शरीर से मुक्त करने का। यदि आप सब को कोई दूसार रास्ता समय में आये तो अवस्य सूचित करें क्या मरने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता है तो वह कौन-सा है? हमारी सफलता का एक सबसे बड़ा राज यह मृत्यु भी हो सकता है। यदि हम इसका प्रयोग करना जानते है तो जैसा कि वह आदमी कर रहा है जो इस दूनिया के सभी रास्ते बन्द होने पर भी अपने लिये दूसरे दरवाजे को खोलने की बात कर रहा है जहाँ कोई मृत्यु नहीं है यह मृत्यु भी एस दरवाजे की तरह से जो हमे इस नस्वर शरीर और नस्वर संसार से मुक्त कर सकता है।

जो कुछ इन आँखों से देखते हैं क्या यही संसार है? इस प्रश्न का उत्तर हाँ में ही दिया जा सकता है, पर वह वस्तुतः नितान्त बालकों को ही होगा। वस्तुतः जो कुछ हम देखते हैं वह उन अस्तित्वों का अति स्वल्प अंश है जिसे हम देख नहीं सकते। न केवल खुली आँखों से वरन् सूक्ष्मदर्शी यन्त्र भी उन्हें देखने में ही नहीं अनुभव करने में भी असमर्थ रहते हैं।

कई बार दृश्य के अदृश्य में और अदृश्य के दृश्य में परिणत होने की घटनाएँ घटित होती रहती हैं और वे इतनी विचित्र होती हैं कि उन्हें भूत-प्रेत, देवी-देवता की करतूत, सिद्धि चमत्कार अथवा अतीन्द्रिय चेतना की अनुमति आदि कहकर मन समझाना पड़ता है। वास्तविकता क्या है इसका सही पता लगा सकना और उन अद्‌भुत घटनाओं का समाधान करण विश्लेषण कर सकना प्रायः सम्भव नहीं हो पाता।

इस संदर्भ में आये दिन जहाँ-तहाँ घटित होने वाली घटनाओं में से दो इस प्रकार है-

(1) मनीला की यू0पी0 आई नामक प्रामाणिक समाचार एजेन्सी ने पूरी खोज बीन के पश्चात एक समाचार प्रकाशित कराया था कि-कार्नेलियो क्लोजा नामक एक बारह वर्षीय छात्र जब तक अनायास ही अदृश्य हो जाता है। स्कूल के क्लास से गायब हो जाना और दो-दो दिन बाद वापिस लौटना आरम्भ में लड़के की चकमेबाजी समझा गया। किन्तु पौधे उसके दिये गये ब्यौरे पर ध्यान देना पड़ा। वह कहता था कोई समवयस्क परी जैसी लड़की उसे खेलने के लिए अपने पास बुलाती हैं और वह रुई की तरह हलका होकर उसके साथ खेलने, उड़ने लगता है। पुलिस ने बहुत खोज की उस पर विशेष पहरा बिठाया गया। यहाँ तक कि उसके पिता ने कमरे में बन्द रखा तो भी उसका गायब होना रुका नहीं। पीछे किसी पादरी के मंत्रोच्चार से वह संकट दूर हुआ।

(2) फ्राँसीसी वैज्ञानिक सेलारियर जिनकी विश्वासनीयता पर किसी को उंगली उठाने का साहस नहीं हो सकता। उनने एक घटना का उल्लेख किया है-पैरिस की एक प्राचीन प्रतिमा की जब वैज्ञानिकों का एक दल परीक्षा कर रहा था तो वह मूर्ति देखते-देखते अदृश्य हो गई और उसके स्थान पर एक दूसरी विशालकाय मूर्ति आ विराजी जो पहली की तुलना में कही बड़ी थी।

यह घटना अभी बहुत पुरानी नहीं हुई हैं जिसमें टेनेसी राज्य के गालटिन नगर के एक घनी किसान डेविड लेंग के अचानक गायब हो जाने के समाचार ने दूर-दूर तक आतंक पैदा कर दिया था और उस सम्बन्ध में भारी जाँच पड़ताल हुई थी। वह किसी ज़रूरी काम से घर से बाहर जा रहा था कि देखते-देखते आंखों के सामने से अदृश्य हो गया और फिर कभी नहीं लौटा। कोई ऐसी वजह भी नहीं थी जिससे वह जान-बूझकर भाग जाता। हँसता-हँसाता यह कहकर घर से निकला था कि "अभी दस मिनट में आता हूँ।" जिस स्थान से वह गायब हुआ था उसके आस-पास पंद्रह फुट के घेरे की घास बुरी तरह झुलस गई थी। पुलिस तथा दूसरे खोजी सिर तोड़ प्रयत्न करने पर भी उसका कुछ पता न लगा सकें।

ऐसी घटनाओं की विवेचना करते हुए वैज्ञानिक क्षेत्रों में कई प्रकार से चर्चा होती रहती है। अब विज्ञान इस निश्चय पर पहुँच चुका है। कि मनुष्य की इन्द्रिय चेतना के आधार पर विकसित बुद्धि जितना जान पाता है, दुनिया वस्तुतः उससे कहीं अधिक है। उसे न बुद्धि समझ पाती है और न मानव निर्मित यन्त्र ही उसे पूरी तरह पकड़ पाते हैं। फिर भी कुछ विशेष सूक्ष्म सम्वेदना वाले यन्त्र थोड़ी बहुत जानकारी कभी-कभी देते रहते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि प्रत्यक्ष दर्शन न केवल अधूरा वरन् भ्रामक भी है।

हम नित्य ही सूर्य की 'धूप' को देखते हैं। पर सच यह है कि धूप कभी भी नहीं देखी जा सकती। उसके प्रभाव से प्रभावित पदार्थ विशेष स्तर पर चमकने लगते हैं, यह पदार्थों की चमक है। सूर्य किरणें जो इस चमक का प्रधान कारण है हमारी दृश्य शक्ति से सर्वथा परे है। अन्तरिक्ष में प्रायः पूरे सौरमण्डल को प्रकाशित एवं प्रभावित करने वाली धूप वस्तुतः सोलर स्पेक्ट्रमा-सौरमण्डलीय वर्ण क्रम है। उसे ऊर्जा की तरंगों एवं स्फुरणाओं की एक सुविस्तृत पट्टी कह सकते हैं। इस पट्टी में प्रायः 10 अरब प्रकार के रंग हैं। पर उनमें से हमारी आँखें लाल से लेकर बैंगनी तक एक-एक रंग सप्तक की तथा उसके सम्मिश्रणों को ही देख पाती है। बाकी सारे रंग हमारे लिए सर्वथा अदृश्य अपरिचित और अकल्पनीय है।

अब हम कुछेक सूक्ष्म किरणों की कीन्हीं विशेष यन्त्रों की सहायता से देख समझ सकने में थोड़ा-थोड़ा समर्थ होते जाते हैं। जैसे धूप में "इन्फ्रारेड" तरंगें देखी तो नहीं जाती पर जलन के रूप में अनुभव होती है। इन किरणों का फोटोग्राफी में प्रयोग करके दुनिया का वास्तविक रंग विचित्र पाया गया है। घास-पात, पेड़-पौधे, वस्तुतः बिल्कुल सफेद हैं, आसमान समुद्र बिल्कुल काले। जबकि पंक्तियाँ हरी और आसमान तथा समुद्र नीले देखते हैं। इन किरणों की सहायता से अमेरिका ने क्यूबा में लगे रूसी प्रक्षेपणास्त्रों के फोटो हवाई जहाज में खीचते थे। आश्चर्य यह कि उसमें वे उन जलती सिगरेटों के फोटो भी आ गये जो 24 घण्टे पहले वहाँ के कर्मचारियों ने जलाई थी और वे तभी बुझ भी गई थी। दृश्य जगत में पदार्थ समाप्त हो जाने पर भी वह अन्तरिक्ष में अपनी स्थिति बनाये जा सकता है यह अजूबा हमें भूत और वर्तमान के बीच खिंची हुई लक्ष्मण रेखा

से आगे बढ़ा ले जाता है। जो वस्तु अपने अनुभव के अनुसार समाप्त हो गई वह भी अन्तरिक्ष में 'वर्तमान' की तरह यथावत मौजूद हैं, यह कैसी विचित्रता है।

ट्रेवर जेम्स ने इन्फ्रारेड मूवी फ़िल्म के लिए प्रयुक्त होने वाले एक विशेष कैमरे आई° आर° 135 का उपयोग करके मोजाबें रेगिस्तान के अन्तरिक्ष की स्थिति चित्रित की है। फ़िल्म में ऐसे पक्षी दिखाई पड़ते हैं जो अपनी आँखों से कभी भी दिखाई नहीं पड़ते। जीवाणुओं की अपनी अनोखी दुनिया है वे मिट्टी घास-पात, पानी और प्राणियों के शरीरों में निवास करते और अपने ढर्रे की मजेदार ज़िन्दगी जीते हैं। पर हम उनमें से कुछ को ही सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों से देख पाते हैं। बाकी तो इतने सूक्ष्म है कि किसी भी यन्त्र की पकड़ में नहीं आते किन्तु अपने क्रिया-कलाप बड़ी शान के साथ जारी रखते हैं।

शास्त्रकार ने उसे "अणोरणीयान् महतों महीयान्" कहा है। परमाणु से भी गहरी-उसकी संचालनकर्ती सूक्ष्मता को देखा और जाना तो नहीं जा सका पर उसका आभास पा लिया गया है। महतो महीयान की बात भी ऐसी ही है। विशालकाय ग्रहपिण्ड और निहारिका समुच्चय अत्यन्त विशाल है इतना विशाल जिसकी तुलना में अपना सौरमण्डल बाल बराबर भी नहीं हैं। फिर भी वह सब कुछ अधिक दूरी होने के कारण दीखता नहीं। रेडियो, दूरबीनें जिन आकाशीय पिंडों का परिचय देती हैं यह आँखों से देखे जा सकने वाले सितारों की तुलना में अत्यधिक विस्तृत हैं। आश्चर्य यह है कि यह रेडियो, दूरबीनें भी पूरी धोखेबाज है वे अब से हजारों लाखों वर्ष पुरानी उस स्थिति का दर्शन करती हैं जो सम्भवतः अब आमूलचूल ही बदल गई होंगी सम्भव है वे तारे बूढ़े होकर मर भी गये हों जो हमारी रेडियो, दूरबीनों पर जगमगाते दीखते हैं।

अल्ट्रा वायलेट फोटोग्राफी से ऐसे प्राणियों के अस्तित्व का पता चलता है जो हमारी समझ परख और प्रामाणिकता के लिए काम में लाई जाने वाली सभी कसौटियों से ऊपर है। इन प्राणियों को 'प्रेत मानव' अथवा 'प्रेत प्राणी' कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अब हमारे परिवार में यह अदृश्य प्राणधारी भी सम्मिलित होने आ रहे हैं। सूक्ष्म जीवाणु की तरह उनकी हरकतें और हलचलें भी अपने अनुभव की सीमा में आ जायेंगी।

हर्बर्ट गोल्डस्टीन ने अपने शोधर निबन्ध "प्राँपगेशन ऑफ शार्ट रेडियो वेव्स" में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किये हैं कि वायुमण्डल में संव्याप्त अपवतानाँव प्रवणता के पर्दे से पीछे अदृश्य प्राणियों की दुनिया है। वह दुनिया हमारे साथ जुड़ी हुई है और दृश्यमान सहचरों से कम प्रभावित नहीं करती। वर्तमान सूक्ष्मदर्शी साधन अपर्याप्त हैं तो भी हमें निराश न होकर ऐसे साधन विकसित करने चाहिए जो इस अति महत्त्वपूर्ण अदृश्य संसार के साथ हमारी अनुभव चेतना का सम्बन्ध जोड़ सकें।

साधारणतया हमारी जानकारी पदार्थ के तीन आयामों तक सीमित है-लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई. अब इसमें "काल" को चौथे आयाम के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है। आइंस्टीन ने अपने सापेक्षवाद सिद्धान्त की विवेचना करते हुए यह समझाने का प्रयत्न किया है कि यह भौतिक संसार वस्तुतः "संयुक्त चतुर्विस्तारीय दिक्-काल जगत" है। वे देश और काल की वर्तमान मान्यताओं को एक प्रकार से सापेक्ष और दूसरे प्रकार से अपूर्व अवास्तविक मानते हैं।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के डा। राबर्ट सिरगी अपने दल के साथ ऐसे उपकरण बनाने में संलग्न है जिनसे पदार्थ के चौथे आयाम को समझ सकना सम्भव हो सकें। वे कहते हैं जो हम जानते और देखते हैं उनसे आगे की गतियाँ और दिशाएँ मौजूद है, हम केवल तीन आयामों की परिधि में आने वाले पदार्थों का ही अनुभव कर पाते हैं जबकि इससे आगे भी एक विचित्र दुनिया मौजूद है। उस विचित्रता को समझे बिना हमारी वर्तमान जानकारियाँ बाल बुद्धि स्तर की ही बनी रहेगी। दृश्य का अदृश्य बन जाना और अदृश्य का दिखाई देने लगना मोटी बुद्धि से बुद्धि भ्रम अथवा कोई दैवी चमत्कार ही कहा जा सकता है। इतना होते हुए भी एक ऐसे सूक्ष्म जगत का अस्तित्व मौजूद हैं जो अपने इस ज्ञात जगत की तुलना में न केवल अधिक विस्तृत वरन् अधिक शक्तिशाली भी है। भूतकाल में उसे सूक्ष्म जगत एवं दिव्य लोक कहा जाता रहा हैं। उसमें पदार्थों का ही नहीं

प्राणियों का भी अस्तित्व मौजूद है। वे प्राणी मनुष्य की तुलना में बहुत छोटे भी हो सकते हैं और बहुत बड़े भी। आवश्यकता एवं परिस्थितियाँ उनकी भी हो सकती है और जिस प्रकार हम उस सूक्ष्म जगत के साथ सम्बद्ध जोड़ने को उत्सुक है उसी प्रकार वे भी हमारे सहचरत्व के लिए इच्छुक हो सकते हैं। प्राणियों और पदार्थ का लुप्त एवं प्रकट होते रहना इन स्थूल और सूक्ष्म जगत के बीच होते रहने वाले आदान प्रदान का एक प्रमाण हो सकता है।

सुप्रसिद्ध विज्ञान काथा लेखन एच0जी0वेल्स ने अपनी एक पुस्तक "दि इन विजिविल मौन" अदृश्य मानव में उन सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनके अनुसार कोई अदृश्य वस्तुएँ दृष्टिगोचर होने लग सकती है। इन विज्ञान की उन्होंने अपर्वतनाँक-रिफ्रैक्टिव इण्डिसेन्स-नाम देकर उसके स्वरूप एवं क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया है।

हम ज्ञात को ही पर्याप्त न माने। प्रत्यक्ष को ही सब कुछ न कहें। प्रस्तुत मस्तिष्कीय और यान्त्रिक साधनों को सीमित मानकर न चलें और जो अविज्ञात है उसकी शोध में बिना किसी पूर्वाग्रह के लगे रहें तो इस अणोरणीयान महतो महीयान जगत के वे रहस्य जानने की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं जो अभी तक नहीं जाने जा सकें।

11 – मैं वायु के समान संसार रूप शरीर में प्राण हूं

ओ३म् द्वाविमौ वातौ वात आसिन्धोरा परावतः।

दक्षं ते अन्य आवतु परान्यो वातु यद्रपः। । ऋग्वेद १०, १३७-२

यहाँ पर वायु एक रूपक की तरह प्रयोग किया जा रहा है। वायु का भौतिक उपयोग तो हम सब जानते ही है इस के लिये ऋग्वेद कहता हैः- यहाँ दो प्रकार के वायु बहते है एक वायु भीतर हृदय तक बहता है दूसरा बाहर वायुमंडल में बहता है। उसमें एक तेरे अन्दर तेरे लिये शक्ति बल को बहा कर लाये दूसरा तेरे से बाहर तेरे रोग बिमारी को बाहर बहा कर ले आवे।) वह परमेश्वर आनन्दस्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा के समान है। वही परमेश्वर शुक्रम शीघ्रकारी अथवा शुद्ध भाव से शुक्र विर्य के कण के समान है। वह महान होने से ब्रह्मा सर्वत्र व्यापक होने से प्रजापति। भी कहलाता है। अर्थात वायु मुख्यतः दो प्रकार की होती है, एक अन्दर जो जाती है यह हमारा जीवन है जिसे हम सब प्राण कहते है और एक वायु जो शरीर से बाहर निकलती है जो अपान है अर्थात यह मृत्यु है। आध्यात्मिक भाषा में इसे प्राणायाम कहते है यह जीवन को विस्तार देने वाला और मृत्यु को दूर करने वाला बताया गया है। प्राणायाम यह बहुत प्राचिन वायु विज्ञान है यहाँ प्राण को स्थित करने की बात की जा रही है। प्राणायाम योग के आठ अंगों में से एक है। प्राणायाम = प्राण + आयाम। इसका का शाब्दिक अर्थ है-'प्राण (श्वसन) को लम्बा करना' या 'प्राण (जीवनीशक्ति) को लम्बा करना'। (प्राणायाम का अर्थ 'स्वास को नियंत्रित करना' या कम करना नहीं है।) हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है-

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्। योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥२॥ अर्थात प्राणों के चलायमान होने पर चित्त भी चलायमान हो जाता है और प्राणों के निश्चल होने पर मन भी स्वत: निश्चल हो जाता है और योगी स्थाणु हो जाता है। अतः योगी को श्वांसों का नियंत्रण करना चाहिये।

यह भी कहा गया हैः-यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते। मरणं तस्य निष्क्रान्तिः ततो वायुं निरोधयेत्॥ जब तक शरीर में वायु है तब तक जीवन है। वायु का निष्क्रमण (निकलना) ही मरण है। अतः वायु का निरोध करना चाहिये। प्राणायाम दो शब्दों के योग से बना है- (प्राण+आयाम) पहला शब्द "प्राण" है दूसरा "आयाम" । प्राण का अर्थ जो हमें शक्ति देता है या बल देता है। आयाम का अर्थ जानने के लिये इसका संधि विच्छेद

करना होगा क्योंकि यह दो शब्दों के योग (आ+याम) से बना है। इसमें मूल शब्द ' "याम" ' है 'आ' उपसर्ग लगा है। याम का अर्थ 'गमन होता है और' "आ" 'उपसर्ग' उलटा 'के अर्थ में प्रयोग किया गया है अर्थात आयाम का अर्थ उलटा गमन होता है। अतः प्राणायाम में आयाम को' उलटा गमन के अर्थ में प्रयोग किया गया है। इस प्रकार प्राणायाम का अर्थ ' प्राण का उलटा गमन होता है। यहाँ यह ध्यान देने कि बात है कि प्राणायाम प्राण के उलटा गमन के विशेष क्रिया की संज्ञा है न कि उसका परिणाम। अर्थात प्राणायाम शब्द से प्राण के विशेष क्रिया का बोध होना चाहिये। प्राणायाम के बारे में बहुत से ऋषियों ने अपने-अपने ढंग से कहा है लेकिन सभी के भाव एक ही है जैसे पतन्जलि का प्राणायाम सूत्र एवं गीता में जिसमें पतन्जलि का प्राणायाम सूत्र महत्त्वपूर्ण माना जाता है जो इस प्रकार है-तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम॥ इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा-श्वास प्रश्वास के गति को अलग करना प्राणायाम है। इस सूत्र के अनुसार प्राणायाम करने के लिये सबसे पहले सूत्र की सम्यक व्याख्या होनी चाहिए लेकिन पतंजलि के प्राणायाम सूत्र की व्याख्या करने से पहले हमे इस बात का ध्यान देना चाहिए कि पतंजलि ने योग की क्रियाओं एवं उपायें को योगसूत्र नामक पुस्तक में सूत्र रूप से संकलित किया है और सूत्र का अर्थ ही होता है-एक निश्चित नियम जो गणितीय एवं विज्ञान सम्मत हो। यदि सूत्र की सही व्याख्या नहीं हुई तो उत्तर सत्य से दूर एवं परिणाम शून्य होगा। यदि पतंजलि के प्राणायाम सूत्र के अनुसार प्राणायाम करना है तो सबसे पहले उनके प्राणायाम सूत्र तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम॥ की सम्यक व्याख्या होनी चाहिए जो शास्त्रानुसार, विज्ञान सम्मत, तार्किक, एवं गणितीय हो। इसी व्याख्या के अनुसार क्रिया करना होगा। इसके लिये सूत्र में प्रयुक्त शब्दों का अर्थबोध होना चाहिए तथा उसमें दी गयी गति विच्छेद की विशेष युक्ति को जानना होगा। इसके लिये पतंजलि के प्राणायाम सूत्र में प्रयुक्त शब्दो का अर्थ बोध होना चाहिये। प्राणायाम प्राण अर्थात् साँस आयाम याने दो साँसो में दूरी बढ़ाना, श्वास और नि: श्वास की गति को नियंत्रण कर रोकने व निकालने की क्रिया को कहा जाता है। श्वास को धीमी गति से गहरी खींचकर रोकना व बाहर निकालना प्राणायाम के क्रम में आता है। श्वास खींचने के साथ भावना करें कि प्राण शक्ति, श्रेष्ठता श्वास के द्वारा अंदर खींची जा रही है, छोड़ते समय यह भावना करें कि हमारे दुर्गुण, दुष्प्रवृत्तियाँ, बुरे विचार प्रश्वास के साथ बाहर निकल रहे हैं। हम साँस लेते है तो सिर्फ़ हवा नहीं खीचते तो उसके साथ ब्रह्मान्ड की सारी उर्जा को उसमे खींचते है। अब आपको लगेगा की सिर्फ़ साँस खीचने से ऐसा कैसा होगा। हम जो साँस फेफडो में खीचते है, वह सिर्फ़ साँस नहीं रहती उसमे सारे ब्रह्माण्ड की सारी उर्जा समायी रहती है। मान लो जो साँस आपके पूरे शरीर को चलाना जनती है, वह आपके शरीर को दुरुस्त करने की भी ताकत रखती है। प्राणायाम निम्न मंत्र (गायत्री महामंत्र) के उच्चारण के साथ किया जाना चाहिये। ॐ भूः भुवः ॐ स्वः ॐ महः, ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं, ब्रह्म भूर्भुवः स्वः ॐ।

प्राणायाम का योग में बहुत महत्त्व है। सबसे पहले तीन बातों की आवश्यकता है, विश्वास, सत्यभावना, दृढ़ता। प्राणायाम करने से पहले हमारा शरीर अन्दर से और बाहर से शुद्ध होना चाहिए. बैठने के लिए नीचे अर्थात भूमि पर आसन बिछाना चाहिए. बैठते समय हमारी रीढ़ की हड्डियाँ एक पंक्ति में अर्थात सीधी होनी चाहिए. सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन किसी भी आसन में बैठें, मगर जिसमें आप अधिक देर बैठ सकते हैं, उसी आसन में बैठें। प्राणायाम करते समय हमारे हाथों को ज्ञान या किसी अन्य मुद्रा में होनी चाहिए. प्राणायाम करते समय हमारे शरीर में कहीं भी किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए, यदि तनाव में प्राणायाम करेंगे तो उसका लाभ नहीं मिलेगा। प्राणायाम करते समय अपनी शक्ति का अतिक्रमण ना करें। हर साँस का आना जाना बिलकुल आराम से होना चाहिए. जिन लोगो को उच्च रक्त-चाप की शिकायत है, उन्हें अपना रक्त-चाप साधारण होने के बाद धीमी गति से प्राणायाम करना चाहिये। यदि ऑँप्रेशन हुआ हो तो, छः महीने बाद ही प्राणायाम का धीरे-धीरे अभ्यास करें। हर साँस के आने जाने के साथ मन ही मन में ओम् का जाप करने से आपको आध्यात्मिक एवं शारीरिक लाभ मिलेगा और प्राणायाम का लाभ दुगुना होगा। साँसे लेते समय किसी एक चक्र पर ध्यान केंन्द्रित होना चाहिए नहीं तो मन कहीं भटक जायेगा, क्योंकि मन बहुत चंचल होता है। साँसे लेते समय मन ही मन भगवान से प्रार्थना करनी है कि "हमारे शरीर के सारे रोग शरीर से बाहर निकाल दें और हमारे शरीर

में सारे ब्रह्मांड की सारी ऊर्जा, ओज, तेजस्विता हमारे शरीर में डाल दें"। ऐसा नहीं है कि केवल बीमार लोगों को ही प्राणायाम करना चाहिए, यदि बीमार नहीं भी हैं तो सदा निरोगी रहने की प्रार्थना के साथ प्राणायाम करें।

भस्त्रिका प्राणायामः-सुखासन सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन में बैठें। नाक से लंबी साँस फेफडो में ही भरे, फिर लंबी साँस फेफडो से ही छोडें। साँस लेते और छोडते समय एकसा दबाव बना रहे। हमें हमारी गलतीयाँ सुधारनी है, एक तो हम पुरी साँस नहीं लेते; और दुसरा हमारी साँस पेट में चाली जाती है। देखिये हमारे शरीर में दो रास्ते है, एक (नाक, श्वसन नलिका, फेफडे) और दूसरा (मुँह, अन्ननलिका, पेट्) । जैसे फेफडोमें हवा शुद्ध करने की प्रणली है, वैसे पेट में नहीं है। उसीके का रण हमारे शरीर में ऑक्सीजन की कमी मेहसूस होती है और उसेके कारण हमारे शरीर में रोग जडते है। उसी गलती को हमें सुधारना है। जैसे कि कुछ पाने की खुशि होति है, वैसे हि खुशि हमे प्राणायाम करते समय होनि चाहिए और क्यो न हो सारि जिन्दगि का स्वास्थ्य आपको मील रहा है। आप के पन्चविध प्राण सशक्त हो रहे है, हमारे शरीर की सभि प्रणालिया सशक्त हो रही है।

लाभः-हमारा हृदय सशक्त बनाने के लिये हैं। हमारे फेफडों को सशक्त बनाने के लिये हैं। मस्तिष्क से सम्बंधित सभी व्याधिओं को मिटाने के लिये भी यह लाभदायक है। पार्किनसन, पैरालिसिस, लूलापन इत्यादि स्नायुओं से सम्बंधित सभी व्यधिओं को मिटाने के लिये। भगवान से नाता जोडने के लिये।

कपालभाति प्राणायामः-सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन में बैठें और साँस को बाहर फेंकते समय पेट को अन्दर की तरफ धक्का देना है, इस में सिर्फ़ साँस को छोडते रहना है। दो साँसो के बीच अपने आप साँस अन्दर चली जायेगी जान-बूझ कर साँस को अन्दर नहीं लेना है। कपाल कहते है मस्तिष्क के अग्र भाग को, भाती कहते है ज्योति को, कान्ति को, तेज को; कपालभाति प्राणायाम करने लगातार करने से चहरे का लावण्य बढ़ाता है। कपालभाति प्राणायाम धरती की सन्जीवनि कहलाता है। कपालभाती प्राणायाम करते समय मुलाधार चक्र पर ध्यान केन्द्रित करना है। इससे मूलाधार चक्र जाग्रत हो के कुन्डलिनी शक्ति जाग्रत होने में मदद होती है। कपालभाति प्राणायाम करते समय ऐसा सोचना है कि हमारे शरीर के सारे नगेटिव तत्व शरीर से बाहर जा रहे है। खाना मिले ना मिले मगर रोज कम से कम ५ मिनिट कपालभाति प्राणायाम करना ही है, यह द्रिढ संक्लप करना है।

लाभः- बालों की सारी समस्याओँ का समाधान प्राप्त होता है। चेहरे की झुरियाँ, आँखो के नीचे के डार्क सर्कल मिट जायेंगे। थायराँइड की समस्या मिट जाती है। सभी प्रकार की चर्म समस्या मिट जाती है। आखों की सभी प्रकार की समस्याऐं मिट जाती है और आँखो की रोशनी लौट आती है। दातों की सभी प्रकार की समस्याऐं मिट जाती है और दातों की खतरनाक पायरिया जैसी बीमारी भी ठीक हो जाती है। कपालभाति प्राणायाम से शरीर की बढ़ी चर्बी घटती है, यह इस प्राणायाम का सबसे बड़ा फायदा है। कब्ज, ऐसिडिटी, गैस्ट्रिक जैसी पेट की सभी समस्याएँ मिट जाती हैं। यूटरस (महिलाओं) की सभी समस्याओँ का समाधान होता है। डायबिटीस संपूर्णतया ठीक होता है। कोलेस्ट्रोल को घटाने में भी सहायक है। सभी प्रकार की ऐलर्जियाँ मिट जाती हैं। सबसे खतरनाक कँन्सर रोग तक ठीक हो जाता है। शरीर में स्वतः हीमोग्लोबिन तैयार होता है। शरीर में स्वतः कैलशियम तैयार होता है। किडनी स्वतः स्वच्छ होती है, डायलेसिस करने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

बाह्य प्राणायामः-सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन में बैठें। साँस को पूरी तरह बाहर निकालने के बाद साँस बाहर ही रोके रखने के बाद तीन बन्ध लगाते है। १) जालंधर बन्ध:-गले को पूरा सिकोड कर ठोडी को छाती से सटा कर रखना है। २) उड्ड्यान बन्ध:-पेट को पूरी तरह अन्दर पीठ की तरफ खीचना है। ३) मूल बन्ध:-हमारी मल विसर्जन करने की जगह को पूरी तरह ऊपर की तरफ खींचना है।

लाभः-कब्ज, ऐसिडिटी, गॅसस्टीक, जैसी पेट की सभी समस्याऐं मिट जाती हैं। हर्निया पूरी तरह ठीक हो जाता है। धातु और पेशाब से सम्बंधित सभी समस्याएँ मिट जाती हैं। मन की एकाग्रता बढ़ती है। व्यंधत्व (संतान हीनता) से छुटकारा मिलने में भी सहायक है।

अनुलोम-विलोम प्राणायामः-सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन में बैठें। शुरुवात और अन्त भी हमेशा बाये नथुने (नोस्टिरल) से ही करनी है, नाक का दाँया नथुना बंद करें व बाये से लंबी साँस लें, फिर बाये को बंद करके, दाँया वाले से लंबी साँस छोडें...अब दाँये से लंबी साँस लें और बाये वाले से छोडें...यानि यह दाँया-दाँया बाँया-बाँया यह क्रम रखना, यह प्रक्रिया १०-१५ मिनट तक दुहराएं। साँस लेते समय अपना ध्यान दोंनों आँखो के बीच में स्थित आज्ञा चक्र पर ध्यान एकत्रित करना चाहिए और मन ही मन में साँस लेते समय ओउम-ओउम का जाप करते रहना चाहिए. हमारे शरीर की ७२, ७२, १०, २१० सुक्ष्मादी सूक्ष्म नाड़ी शुद्ध हो जाती है। बायी नाड़ी को चन्द्र (इड़ा, गन्गा) नाड़ी और बायी नाडी को सूर्य (पीन्गला, यमुना) नाड़ी कहते है। चन्द्र नाड़ी से ठण्डी हवा अन्दर जाती है और सूर्य नाड़ी से गरम नाड़ी हवा अन्दर जाती है। ठण्डी और गरम हवा के उपयोग से हमारे शरीर का तापमान संतुलित रहता है। इससे हमारी रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ जाती है। इनके अतिरीक्त एक और नाड़ी अन दोनो के मध्य में होती है जिसको सुशूम्ड़ा सरस्वती कहते है। जिसकी चर्चा ऋग्वेद के एक मंत्र में करते है वह मंत्र इस प्रकार से हैः-येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पियूषं द्योदिरतिरद्रिबर्हाः। उक्तशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्रसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥ 10, 63, 3 अर्थात यह सब की माता माँ के सामन है मधु अमृत रूप मती ज्ञान रस को पिलाने पयः जो प्राण रूप तत्व पिने योग्य पदार्थ है सूर्य पृथिवी और ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले अद्रिश्य ब्रह्मा जैसा की पहले बताया गया है शुष्मड़ा नाड़ी में स्थित वही सब में प्राण जो प्रण से बना है संकल्प को पैदा करने वाला सामर्थ का श्रोत है जिसे पाकर लोग परमआनन्द को प्राप्त करते है। जिससे ही सभी जीव जन्तुओं का कल्याण होता है। जैसा की अथर्वेद का एक मंत्र कहता है अष्टसिद्धि नवद्वारा पूरीअयोद्धा॥ अर्थात अष्ट सिद्धि आठ चक्रों को जागृत करने से मिलती है। आठ चक्र क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, सहस्रार, ब्रह्मरन्ध्र यह आठ चक्र जो इसी शुष्मड़ा नाड़ी में ही स्थित है।

भारतीय पारंपरिक औषधि विज्ञान के अनुसार, चक्र की अवधारणा का सम्बंध पहिए-से चक्कर से हैं, माना जाता है इसका अस्तित्व आकाशीय सतह में मनुष्य का दोगुना होता है। कहते हैं कि चक्र शक्ति केंद्र या ऊर्जा की कुंडली है जो कायिक शरीर के एक बिंदु से निरंतर वृद्धि को प्राप्त होनेवाले फिरकी के आकार की संरचना (पंखे प्रेम हृदय का आकार बनाते हैं) सूक्ष्म देह की परतों में प्रवेश करती है। सूक्ष्म तत्व का घूमता हुआ भंवर ऊर्जा को ग्रहण करने या इसके प्रसार का केंद्र बिंदु है। ऐसा माना जाता है कि सूक्ष्म देह के अंतर्गत सात प्रमुख चक्र या ऊर्जा केंद्र (जिसे प्रकाश चक्र भी माना गया) स्थित होते हैं। ब्रह्मांड से अधिक मजबूती के साथ ऊर्जा खींचकर इन बिंदुओं में डालता है, इस मायने में यह ऊर्जा केंद्र है कि यह ऊर्जा उत्पन्न और उसका भंडारण करता है। मुख्य नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला और सुषुन्ना (संवेदी, सहसंवेदी और केंद्रीय तंत्रिका तंथ) एक वक्र पथ से मेरूदंड से होकर जाती है और कई बार एक-दूसरे को पार करती हैं। प्रतिच्छेदन के बिंदु पर ये बहुत ही शक्तिशाली ऊर्जा केंद्र बनाती है जो चक्र कहलाता है। मानव देह में तीन प्रकार के ऊर्जा केंद्र हैं। अवर अथवा पशु चक्र की अवस्थिति खुर और श्रोणि के बीच के क्षेत्र में होती है जो प्राणी जगत में हमारे विकासवादी मूल की ओर इशारा करता है। मानव चक्र मेरूदंड में होते हैं। अंत में, श्रेष्ठ या दिव्य चक्र मेरूदंड के शिखर और मस्तिष्क के शीर्ष पर होता है।

एनोडा जूडिथ (1996, पृ। 5) ने चक्र की आधुनिक व्याख्या दी है: चक्र को क्रियाकलापों का केंद्र माना जाता है जो जीवन शक्ति ऊर्जा को ग्रहण करता है, आत्मसात करता है और अभिव्यक्त करता है। चक्र का शाब्दिक अनुवाद चक्का या कुंडल है और यह चक्कर काटते जैविक ऊर्जा क्रियाकलापों का वृत्त है जो प्रमुख तंत्रिका गैंगलिया से निकलकर मेरूदंड में शाखाओं में बंट कर आगे बढ़ता है। सामान्य तौर पर इनमें से छह चक्रों के लिए कहा जाता है कि यह ऊर्जा के एक स्तंभ की तरह खड़ा होता है जो मेरूदंड के आधार से

उठता हुआ माथे के मध्य तक विस्तृत होता है और सातवां कायिक क्षेत्र से बाहर होता है। छह प्रमुख चक्र हैं जो चेतना के मूल अवस्थाओं से परस्पर जुड़े होते हैं ...

सुजैन शुमस्की (2003, पृ। 24) इस विचार का समर्थन करती हैं: ऐसा माना जाता है कि आपके मेरूदंड का हरेक चक्र शारीरिक कार्यकलापों को मेरूदंड के निकट क्षेत्र को प्रभावित और यहाँ तक कि नियंत्रित करता हैं। शव-परीक्षण में चक्रों का खुलासा नहीं होता, इसलिए अधिकांश लोग यह सोचते हैं कि वे अनोखी उर्वर कल्पना कर रहे हैं। लेकिन सुदूर पूर्व की परंपराओं में इसके अस्तित्व को अच्छी तरह प्रमाणित किया गया है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, चक्र एक ऊर्जा केंद्र हैं जो मेरूदंड में अवस्थित होता है और मेरूदंड के आधार से ऊपर उठकर खोपड़ी के मध्य तक मानव तंत्रिका तंत्र के विभिन्न हिस्सों में बंट जाता है। चक्र को मानव देह का प्राण या कायिक-जैविक ऊर्जा का बिंदु या बंधन माना गया है। शुमस्की कहती हैं कि "आपके सूक्ष्म देह, आपकी ऊर्जा क्षेत्र और संपूर्ण चक्र तंत्र का आधार प्राण है। ... जो कि ब्रह्मांड में जीवन और ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है।" चक्र का अध्ययन कई प्रकार की चिकित्सा और शिक्षण के लिए केन्द्रिक है। अरोमाथेरापी, मंत्र, रेकी, प्रायोगिक उपचार, पुष्प अर्क, विकिरण चिकित्सा, ध्वनि चिकित्सा, रंग / प्रकाश चिकित्सा और मणिभ / रत्न चिकित्सा जैसे कुछ अभ्यास हैं जिनके माध्यम से सूक्ष्म ऊर्जा का पता लगाया गया है। वज्रयान और तांत्रिक शक्त सिद्धांत के अनुसार एक्यूपंक्चर, शिअत्सू, ताई ची और ची कुंग ऊर्जावान पराकाष्ठा के संतुलन पर ध्यान देता है, जो कि चक्र प्रणाली का एक अभिन्न अंग हैं।

"नाभि" शब्द पहली बार हिंदू धर्म के पवित्र ग्रंथ अथर्व वेद में आया और इसका उपयोग यह परिभाषित करने के लिए किया गया कि देह की सभी नाड़ियाँ किस तरह यहाँ आबद्ध होती हैं और इसे यह नाभि चक्र के रूप में जाना जाता है और इसके अलावा मूलाधार चक्र शब्द भी पहली बार अथर्ववेद [जिस वेद से आयुर्वेद की उत्पत्ति हुई] में वर्णित किया गया। उपनिषद में चक्रों के वर्णन अधिक विस्तार से हैं, ब्रह्मोपनिषद में नाभि चक्र को अग्नि और सूर्य के निवास के रूप में वर्णित किया गया है। योगराज उपनिषद में नौ प्रकार के चक्रों- ब्रह्म, स्वाधिष्ठान, नाभि, हृदय, कंठ, तालुका, भ्रू, ब्रह्म रंध्र, व्योम चक्र का वर्णन है योग चूड़ामणिउपनिषद में षड चक्र का वर्णन है, पतंजलि योग दर्शन के विभूतिपाद में षड चक्र का वर्णन है और जब पहले सूत्र में इसे समझाया जाता है तब 12 चक्र के वर्णन पाए जाते हैं।

यह आठ चक्र को जागृत करने से ही आठ सिद्धिया उपलब्ध होती है वह आठ सिद्धिया इस प्रकार से है। सिद्धि अर्थात पूर्णता की प्राप्ति होना व सफलता की अनुभूति मिलना। सिद्धि को प्राप्त करने का मार्ग एक कठिन मार्ग हो ओर जो इन सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है वह जीवन की पूर्णता को पा लेता है। असामान्य कौशल या क्षमता अर्जित करने को 'सिद्धि' कहा गया है। चमत्कारिक साधनों द्वारा 'अलौकिक शक्तियों को पाना जैसे-दिव्यदृष्टि, अपना आकार छोटा कर लेना, घटनाओं की स्मृति प्राप्त कर लेना इत्यादि,' सिद्धि' इसी अर्थ में प्रयुक्त होती है। शास्त्रों में अनेक सिद्धियों की चर्चा की गई है और इन सिद्धियों को यदि नियमित और अनुशासनबद्ध रहकर किया जाए तो अनेक प्रकार की परा और अपरा सिद्धियाँ प्राप्त कि जा सकती है। सिद्धियाँ दो प्रकार की होती हैं, एक परा और दूसरी अपरा। यह सिद्धियाँ इंद्रियों के नियंत्रण और व्यापकता को दर्शाती हैं। सब प्रकार की उत्तम, मध्यम और अधम सिद्धियाँ अपरा सिद्धियाँ कहलाती है। मुख्य सिद्धियाँ आठ प्रकार की कही गई हैं। इन सिद्धियों को पाने के उपरांत साधक के लिए संसार में कुछ भी असंभव नहीं रह जाता। सिद्धियाँ क्या हैं व इनसे क्या हो सकता है इन सभी का उल्लेख मार्कंडेय पुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में प्राप्त होता है जो इस प्रकार है:-अणिमा लघिमा गरिमा प्राप्तिः प्राकाम्यंमहिमा तथा। ईशित्वं च वशित्वंच सर्वकामावशायिता:॥

यह आठ मुख्य सिद्धियाँ इस प्रकार हैं:-अणिमा सिद्धि अपने को सूक्ष्म बना लेने की क्षमता ही अणिमा है। यह सिद्धि यह वह सिद्धि है, जिससे युक्त हो कर व्यक्ति सूक्ष्म रूप धर कर एक प्रकार से दूसरों के लिए अदृश्य हो जाता है। इसके द्वारा आकार में लघु होकर एक अणु रूप में परिवर्तित हो सकता है। अणु एवं

परमाणुओं की शक्ति से सम्पन्न हो साधक वीर व बलवान हो जाता है। अणिमा की सिद्धि से सम्पन्न योगी अपनी शक्ति द्वारा अपार बल पाता है। महिमा सिद्धिः–अपने को बड़ा एवं विशाल बना लेने की क्षमता को महिमा कहा जाता है। यह आकार को विस्तार देती है विशालकाय स्वरुप को जन्म देने में सहायक है। इस सिद्धि से सम्पन्न होकर साधक प्रकृति को विस्तारित करने में सक्षम होता है। जिस प्रकार केवल ईश्वर ही अपनी इसी सिद्धि से ब्रह्माण्ड का विस्तार करते हैं उसी प्रकार साधक भी इसे पाकर उन्हें जैसी शक्ति भी पाता है। गरिमा सिद्धिः–इस सिद्धि से मनुष्य अपने शरीर को जितना चाहे, उतना भारी बना सकता है। यह सिद्धि साधक को अनुभव कराती है कि उसका वजन या भार उसके अनुसार बहुत अधिक बढ़ सकता है जिसके द्वारा वह किसी के हटाए या हिलाए जाने पर भी नहीं हिल सकता। लघिमा सिद्धिः–स्वयं को हल्का बना लेने की क्षमता ही लघिमा सिद्धि होती है। लघिमा सिद्धि में साधक स्वयं को अत्यंत हल्का अनुभव करता है। इस दिव्य महासिद्धि के प्रभाव से योगी सुदूर अनन्त तक फैले हुए ब्रह्माण्ड के किसी भी पदार्थ को अपने पास बुलाकर उसको लघु करके अपने हिसाब से उसमें परिवर्तन कर सकता है। प्राप्ति सिद्धिः–कुछ भी निर्माण कर लेने की क्षमता इस सिद्धि के बल पर जो कुछ भी पाना चाहें उसे प्राप्त किया जा सकता है। इस सिद्धि को प्राप्त करके साधक जिस भी किसी वस्तु की इच्छा करता है, वह असंभव होने पर भी उसे प्राप्त हो जाती है। जैसे रेगिस्तान में प्यासे को पानी प्राप्त हो सकता है या अमृत की चाह को भी पूरा कर पाने में वह सक्षम हो जाता है केवल इसी सिद्धि द्वारा ही वह असंभव को भी संभव कर सकता है। प्राकाम्य सिद्धिः–कोई भी रूप धारण कर लेने की क्षमता प्राकाम्य सिद्धि की प्राप्ति है। इसके सिद्ध हो जाने पर मन के विचार आपके अनुरुप परिवर्तित होने लगते हैं। इस सिद्धि में साधक अत्यंत शक्तिशाली शक्ति का अनुभव करता है। इस सिद्धि को पाने के बाद मनुष्य जिस वस्तु कि इच्छा करता है उसे पाने में कामयाब रहता है। व्यक्ति चाहे तो आसमान में उड़ सकता है और यदि चाहे तो पानी पर चल सकता है। ईशिता सिद्धिः–हर सत्ता को जान लेना और उस पर नियंत्रण करना ही इस सिद्धि का अर्थ है। इस सिद्धि को प्राप्त करके साधक समस्त प्रभुत्व और अधिकार प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है। सिद्धि प्राप्त होने पर अपने आदेश के अनुसार किसी पर भी अधिकार जमाय जा सकता है। वह चाहे राज्यों से लेकर साम्राज्य ही क्यों न हो। इस सिद्धि को पाने पर साधक ईश रूप में परिवर्तित हो जाता है। वशिता सिद्धिः–जीवन और मृत्यु पर नियंत्रण पा लेने की क्षमता को वशिता या वशिकरण कही जाती है। इस सिद्धि के द्वारा जड़, चेतन, जीव–जन्तु, पदार्थ–प्रकृति, सभी को स्वयं के वश में किया जा सकता है। इस सिद्धि से संपन्न होने पर किसी भी प्राणी को अपने वश में किया जा सकता है। शरीर में नव द्वार हैं। दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र का है। इड़ा पिंगला और सुषुम्ना के मेल होने पर ब्रह्मरन्ध्र के द्वार से जीव के प्रयाण करने पर जीव मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। दो नाक के छिद्र, दो कान के छिद्र, दो आँख के छिद्र, एक मुख का एक गुदा का और एक लिंग का छिद्र है।

12 मैं गुरुओं का भी गुरु हूं

गुकारस्त्वन्धकारस्यात् रुकारस्तन्निरोधकः। अन्धकार विनाशित्याद गुरुरित्य भिधीयते॥

'गुकार अर्थात् अन्धकार और रुकार अर्थात् उस अन्धकार को मिटाने वाला प्रकाश, इस प्रकार जो शिष्य में पाये जाने वाले अन्धकार का विनाश करके उसे ज्ञान रूपी प्रकाश देता है वही गुरु कहा जाता है।'

गायत्री को सनातन धर्म में गुरु मंत्र कहा गया है। आज भी देश भर में इसका प्रचार है और प्रायः सभी प्राँतों के पंडित यज्ञोपवीत धारण कराते समय शिष्य को इस मंत्र का उपदेश देते हैं। उनका यह कार्य केवल एक रूढ़ि पूजा के ढंग पर होता है क्योंकि अधिकाँश में न तो वे स्वयं गायत्री की उपासना और साधना करने वाले होते हैं और न शिष्य को उसकी विधिवत शिक्षा देकर उसे साधन–मार्ग में अग्रसर कराने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि बहुत समय से लोग गुरु मंत्र का महत्व और उससे लाभ उठाने की विधि को भूल गये हैं। अगर गुरु सच्चे और ज्ञानी हों तो वे इस मंत्र की शिक्षा देकर अपने अनुयाइयों का अपार हित कर सकते

हैं। इस विषय में गुरु का महत्व बतलाते हुए अहमदाबाद के 'प्रज्ञान-मन्दिर' के संचालक महात्मा सदाशिव जी के निम्न विचार पाठकों को विशेष उपयोगी प्रतीत होंगे।

गुरु तीन प्रकार के होते हैं-'क्रियाशक्ति' प्रधान स्थूल देहधारी लौकिक गुरु-'इच्छाशक्ति' प्रधान सूक्ष्म देहधारी सिद्धगुरु और 'ज्ञानशक्ति' प्रधान कारण देहधारी ज्ञानी गुरु। कितने ही गुरु ऐसे भी हैं जो वंश परम्परा से मंत्र का प्रयोग कर रहे हैं, पर उन्होंने स्वयं साधन द्वारा उसे चैतन्य शक्ति संपन्न नहीं किया वे हैं लोग शक्तिहीन मंत्र का प्रयोग करते रहते हैं जिससे उसका कोई प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता। ऐसे गुरुओं को सूक्ष्म देहधारी-सिद्ध गुरुओं की सहायता नहीं मिलती, जिससे अपना अथवा अन्य लोगों का विशेष उपकार नहीं कर सकते।

साधारण रीति से 'गुरु' शब्द का अर्थ 'भारी' होता है। उसका विपरीत शब्द 'लघु' अर्थात् 'हलका' होता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो विश्व की समस्त जड़ और चेतन वस्तुएं एक दूसरे के मुकाबले में भारी हलकी सिद्ध होंगी। पर इनमें से किसी भी व्यक्ति या वस्तु के लिये यह नहीं कहा जा सकता कि वह सदैव और प्रत्येक परिस्थिति में गुरु (उपादेय अथवा वन्दनीय) ही है, अथवा कोई व्यक्ति या वस्तु सदैव, प्रत्येक दशा में लघु ही है। इस हिसाब से कोई भी एक व्यक्ति, वह चाहे जितना भी विद्वान, ज्ञानी अथवा बुद्धिमान क्यों न हो, तो भी समस्त जगत का गुरु नहीं बन सकता। इसी प्रकार यदि खास वंश में कोई विशिष्ट पुरुष हो गया हो और बहुत से व्यक्तियों को सत मार्ग दिखलाकर गुरु की वंदनीय पदवी प्राप्त कर गया हो तो उसके आगे वाले शिष्य अथवा पुत्र पौत्रादि भी वंश परम्परा के आधार पर गुरु होने का दावा नहीं कर सकते। जब से हमारे देश में पुत्र-परम्परा अथवा शिष्य-परम्परा से लोग गुरु बनने का दावा करने लगे तभी से उनका आदरमान घटने लग गया और धीरे-धीरे नष्ट प्रायः हो गया। इसके फल से समाज में वास्तविक ज्ञान और ज्ञानी, गुण और गुणी का अभाव होकर भयंकर अंधाधुँधी का साम्राज्य फैल गया।

अगर प्राइमरी स्कूल का कोई शिक्षक अपने शिष्यों से यह दावा करे कि केवल मैं ही गुरु हूँ और तुम लोग मेरे सिवाय और किसी को गुरु मत बनाना तो इसका परिणाम यह होगा कि उसके शिष्य दो-चार दर्जा पढ़कर ही रह जायेंगे, उनमें से कोई बी.ए., एम.ए. न हो सकेगा। इसलिए जो हमको विद्या, बुद्धि प्राप्त करने में जितने अंश तक सहायता दे सके उसे उतने अंशों में गुरु मानना चाहिये। एम.ए. की डिग्री प्राप्त करने तक जितने शिक्षकों और आचार्यों के पास पढ़ा जाय उन सबको ही गुरु के समान मानना चाहिये। जिस प्रकार हमारे माता-पिता एक ही होते हैं और वे ही इस बात का दावा कर सकते हैं, वैसा नियम गुरु के संबंध में काम नहीं दे सकता। हाँ अगर किसी को संयोगवश या भाग्य से कोई दैवी जगत का ज्ञानी गुरु मिल जाय तो उसकी बात दूसरी है, पर जब तक ऐसा अलौकिक गुरु नहीं मिलता तब तक शिष्य को गुरु बदलने का अधिकार भी होता है। शास्त्रों में लिखा है-

आमोदार्थो यथा भृंगो पुष्पातपुष्पादन्तरंग गच्छेत्। विज्ञानार्थो तथा शिरुो गुरु गर्वोन्तरं गच्छेत्॥

अर्थात् 'जिस प्रकार भौंरा आमोद अर्थात् सुगंधि और मधु के लिए एक फूल से दूसरे, तीसरे फूल में जाता है, उसी प्रकार जब तक शिष्य की जिज्ञासा तृप्त न हो तब तक वह दूसरा, तीसरा गुरु कर सकता है।' अगर एक ही गुरु से सब प्रकार के ज्ञान की तृप्ति हो जाय तो फिर गुरु बदलने की आवश्यकता नहीं रहती। पर ऐसे उच्च अधिकारी और अलौकिक गुरु कभी भी शिष्य को ढूँढ़ने नहीं जाते, शिष्य ही आकर्षित होकर उनके पास आते हैं। तब भी वे तत्काल शिष्य को स्वीकार नहीं कर लेते, वरन् उनकी जाँच करके ही स्वीकार करते हैं। स्वीकार करने के बाद वे शिष्य के शरीर में शक्तिपात करते हैं जिससे शिष्य में पहले से पाई जाने वाली वासनाएं दूर होने लगती हैं और वह क्रमशः गुरु की इच्छा और आदेश के अनुसार व्यवहार करने लगता है। यह कार्य प्रायः ऐसे ढंग से होता कि शिष्य को खबर भी नहीं पड़ती वह अपने को स्वतंत्र स्वाधीन समझता रहता है, पर मंत्र उस पर निरन्तर प्रभाव डालकर उसे बदलता जाता है। शिष्य की जितनी इच्छायें और प्रवृत्तियाँ गुरु के विपरीत होती हैं, वे तरह-तरह के उपायों से दूर हो जाती हैं और अन्त में वह पूर्णतया गुरु की आज्ञाधीन उनका

अनुवर्ती हो जाता है। इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य अगर प्रयत्न करे तो कभी-कभी बाघ के मुँह में से भी छुटकारा पा जाता है पर अलौकिक शक्ति सम्पन्न गुरु जिसको एक बार पकड़ लेते हैं, अर्थात् स्वीकार करके शरण में ले लेते हैं, वे शिष्य हजार प्रयत्न करने पर भी उनसे छूटकर अलग नहीं हो सकते, अर्थात् वे गुरु की कल्याणकारी इच्छा के विपरीत अकल्याणकारी मार्ग पर नहीं चल सकते इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिये गुरु तरह-तरह विचित्र उपाय भी करते हैं। इसलिये साधारण मनुष्यों के उचित है कि यदि गुरु का कोई व्यवहार उनकी समझ में न आवे अथवा उलटा जान पड़े, तो वे तुरन्त ही उनके विषय में भली-बुरी कल्पना न कर बैठें। जीवतत्व, ईश्वर तत्व भाग्य तत्व की अपेक्षा भी गुरु और गुरुतत्व अधिक गहन, गंभीर है।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार मंत्र की महिमा बहुत अधिक है और हमारे पूर्वज अति प्राचीन काल से इसका प्रयोग करके आत्म कल्याण और परमार्थ करते रहे हैं। अब भी करोड़ों व्यक्ति नियमित रूप से मंत्र जपते रहते हैं, परंतु मंत्र-रहस्य और मंत्र-विज्ञान से ठीक-ठीक परिचित न होने से यथोचित फल प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिये वे बार-बार मंत्र को बदलते हैं, गुरु को बदलते हैं और अंत में निराश होकर मंत्र को त्याग देते हैं और साथ-साथ मंत्र, शास्त्र तथा मंत्र वेत्ता गुरुओं की मूर्खता पूर्ण निन्दा और चर्चा करने में लग जाते हैं। यह सब इसी कारण होता है कि वे अपने उपयुक्त गुरु प्राप्त करने में सफल नहीं होते। अगर वे सच्चे गुरु द्वारा मंत्र के जप व साधन का ठीक मार्ग जान सकें तो वे भी प्राचीन काल के धर्मात्मा लोगों के समान संसार में सुखपूर्वक रहते हुए भी परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे देश के वैदिक काल के ऋषि-मुनि अधिकाँश में गृहस्थी ही थे और लौकिक कार्यों में लगे रहते थे, तो भी वे 'सत्यं' और 'शिवं' में संलग्न रह कर 'सुन्दर' जीवन बनाने का मार्ग बतला गये हैं। अगर अब भी हमारे गुरुओं और शिष्यों द्वारा उस वेद-विज्ञान सम्मत विधि-विधान और अनुशासन को शिरोधार्य करते हुये जीवन निर्माण किया जाये तो इस मायामय संसार और भौतिक पदार्थों का यथावत भोग करते हुए आनन्दमय, कल्याणकारी जीवन को प्राप्त किया जा सकता है।

सविता देवः वः श्रेष्ठतमाय कर्मणे प्रार्पयतु= परमेश्वर की प्रार्थना उपाषना उसके सानिद्धय के साथ विद्वानों के सहयोग से यह संभव होगा। मनन करने से जो त्राण करे, उसे मंत्र कहते हैं। मंत्रविद्या का विस्तार असीम है, उसमें अनेकानेक शब्दगुच्छक हैं। अनेक शब्दों में मंत्रों का विस्तार हुआ है। उनके जप तथा सिद्धिपरक अनेकानेक योगाभ्यास भी हैं, कर्मकांड भी, किंतु उन सबके मूल में एक ही ध्वनि आती है-वह है ओंकार। यही शब्दब्रह्म-नादब्रह्म की धुरी है। शब्दब्रह्म यदि मंत्र विज्ञान की पृष्ठभूमि बनाता है तो नादब्रह्म की साधना नादयोग का आधार बनती है। ओंकार के विराट ब्रह्मांड में गुंजन से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई है, यदि यह कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। नाद या शब्द से सृष्टि की उत्पत्ति व ताप, प्रकाश, आदि शक्तियों का आविर्भाव उसके बाद होता चला गया। इस प्रकार सृष्टि का मूल-इस निखिल ब्रह्मांड में संव्याप्त ब्राह्मी चेतना की धुरी यदि कोई है तो वह शब्द का नाद ही है। परमपूज्य गुरुदेव ने इस अनूठे किंतु जटिल विषय पर जिस सरलता से प्रतिपादन प्रस्तुत किया है, वह देखकर उसे पढ़कर आश्चर्यचकित होकर रह जाना पड़ता है। समस्त योगाभ्यासों का मूल ही-यहाँ तक कि परमात्मा तक पहुँचने के मार्ग का द्वार ही शब्दब्रह्म-नादब्रह्म है। इसे समझ कर उसे कैसे आत्मसात् किया जाए कैसे अपने अंदर छिपे पड़े प्रसुप्त के जखीरे को जगाया जाए यह सारा मार्ग दर्शन वाङ्मय के इस खंड में है। शब्दब्रह्म-नादब्रह्म की विधा भारतीय अध्यात्म की एक महत्त्वपूर्ण धारा है। जहाँ शब्दब्रह्म में मंत्र-जप, नामोच्चारण, प्रार्थना, समूहिक साधना आदि की महत्ता है, वहाँ नादब्रह्म में नादयोग एवं संगीत की। यह तो मोटा वर्गीकरण हुआ। इस खंड में शब्दब्रह्म की साधना व नादब्रह्म की साधना के जटिल पक्षों को खोला गया है एवं जन-जन के लिए उसे सुगम बनाने का प्रयास किया गया है। पुराणों में एक आख्यायिका आती है। देवर्षि नारद ने एक बार लंबे समय तक यह जानने के लिए प्रव्रज्या की कि सृष्टि में आध्यात्मिक विकास की गति किस तरह चल रही है? वे जहाँ भी गए, प्रायः प्रत्येक स्थान में लोगों ने एक ही शिकायत की भगवान परमात्मा की प्राप्ति अति कठिन है। कोई सरल उपाय बताइये, जिससे उसे प्राप्त करने, उसकी अनुभूति में अधिक कष्ट साध्य तितीक्षा का सामना न करना पड़ता हो। नारद ने इस प्रश्न का उत्तर स्वयं भगवान् से पूछकर देने का आश्वासन दिया और स्वर्ग के लिए चल पड़े। आपको ढूँढ़ने में तप-साधना की प्रणालियाँ बहुत कष्टसाध्य हैं, भगवन्! नारद

ने वहाँ पहुँचकर विष्णु से प्रश्न किया-ऐसा कोई सरल उपाय बताइए, जिससे भक्तगण सहज ही में आपकी अनुभूति कर लिया करें?

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वा। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥ नारद संहिताः-हे नारद! न तो मैं वैकुंठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, मैं तो वहाँ निवास करता हूँ, जहाँ मेरे भक्त-जन कीर्तन करते हैं, अर्थात् संगीतमय भजनों के द्वारा ईश्वर को सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। इन पंक्तियों को पढ़ने से संगीत की महत्ता और भारतीय इतिहास का वह समय याद आ जाता है, जब यहाँ गाँव-गाँव प्रेरक मनोरंजन के रूप में संगीत का प्रयोग बहुलता से होता था। संगीत में केवल गाना या बजाना ही सम्मिलित नहीं था, नृत्य भी इसी कला का अंग था। कथा, कीर्तन, लोक-गायन और विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक पर्व-त्यौहार एवं उत्सवों पर अन्य कार्यक्रमों के साथ संगीत अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता था। उससे व्यक्ति और समाज दोनों के जीवन में शांति और प्रसन्नता, उल्लास और क्रियाशीलता का अभाव नहीं होने पाता था। अक्षर परब्रह्म परमात्मा की अनुभूति के लिए वस्तुतः संगीत साधना से बढ़कर अन्य कोई अच्छा माध्यम नहीं, यही कारण रहा है कि-यहाँ की उपासना पद्धति से लेकर कर्मकांड तक में सर्वत्र स्वर संयोजन अनिवार्य रहा है। मंत्र भी वस्तुतः छंद ही है। वेदों की प्रत्येक ऋचा का कोई ऋषि कोई देवता तो होता ही है, उसका कोई न कोई छंद जैसे ऋयुष्टुप, अनुष्टुप, गायत्री आदि भी होते हैं। इसका अर्थ ही होता है कि उस मंत्र के उच्चारण की ताल, लय और गतियाँ भी निर्धारित हैं। अमुक फ्रीक्वेन्सी पर बजाने से ही अमुक स्टेशन बोलेगा, उसी तरह अमुक गति, लय और ताल के उच्चारण से ही मंत्र सिद्धि होगी-यह उसका विज्ञान है। कोलाहल और समस्याओं से घनीभूत संसार में यदि परमात्मा का कोई उत्तम वरदान मनुष्य को मिला है, तो वह संगीत ही है। संगीत से पीड़ित हृदय को शांति और संतोष मिलता है। संगीत से मनुष्य की सर्जन शक्ति का विकास और आत्मिक प्रफुल्लता मिलती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, शादी विवाहोत्सव से लेकर धार्मिक समारोह तक के लिए उपयुक्त संगीत निधि देकर परमात्मा ने मनुष्य की पीड़ा को कम किया, मानवीय गुणों से प्रेम और प्रसन्नता को बढ़ाया। शास्त्रकार कहते हैं-"स्वरेण संल्लीयते योगी" "स्वर साधना द्वारा योगी अपने को तल्लीन करते हैं" और एकाग्र की हुई, मनःशक्ति को विद्याध्ययन से लेकर किसी भी व्यवसाय में लगाकर चमत्कारिक सफलताएँ प्राप्त की जा सकती हैं, इसलिए वह मानना पड़ेगा कि संगीत दो वर्ष के बच्चे से लेकर विद्यार्थी, व्यवासायी, किसान, मजदूर, स्त्री-पुरुष सबको उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है। उससे मनुष्य की क्रियाशक्ति बढ़ती और आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है। यह बात ऋषि मनीषियों ने बहुत पहले अनुभव की थी और कहा था-"अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते।" ऋग्वेद 6 / 85 / 3 अर्थात्-अनेक मनीषी विश्व के महाराजाधिराज भगवान् की ओर संगीतमय स्वर लगाते हैं और उसी के द्वारा उसे प्राप्त करते हैं। एक अन्य मंत्र में बताया है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्मयोग मनुष्य के लिए कठिन है। भक्ति-भावनाओं से हृदय में उत्पन्न हुई अखिल करुणा ही वह सर्व सरल मार्ग है, जिससे मनुष्य बहुत शीघ्र, परमात्मा की अनुभूति कर सकता है और उस प्रयोजन में भक्ति-भावनाओं के विकास में संगीत का योगदान असाधारण है-स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः। ऋग्वेद 8 / 33 / 2 हे शिष्य! तुम अपने आत्मिक उत्थान की इच्छा से मेरे पास आये हो। मैं तुम्हें ईश्वर का उपदेश करता हूँ, तुम उसे प्राप्त करने के लिए संगीत के साथ उसे पुकारोगे तो वह तुम्हारी हृदय गुहा में प्रकट होकर अपना प्यार प्रदान करेगा। पौराणिक उपाख्यान है कि ब्रह्मा जी के हृदय में उल्लास जागृत हुआ तो वह गाने लगे। उसी अवस्था में उनके मुख से गायत्री छंद प्रादुर्भूत हुआ-गायत्री मुखादुदपतदिति च ब्राह्मणम्। -निरुक्त 7 / 12 गान करते समय ब्रह्मा जी के मुख से निकलने के कारण गायत्री नाम पड़ा। संगीत के अदृश्य प्रभाव को खोजते हुए भारतीय योगियों को वह सिद्धियाँ और अध्यात्म का विशाल क्षेत्र उपलब्ध हुआ, जिसे वर्णन करने के लिए एक पृथक वेद की रचना करनी पड़ी। सामवेद में भगवान् की संगीत शक्ति के ऐसे रहस्य प्रतिपादित और पिरोये हुए हैं, जिनका अवगाहन कर मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियों को, कितनी ही तुच्छ हों-भगवान् से मिला सकता है। अब इस सम्बंध में पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ भी भारतीय दर्शन की पुष्टि करने लगी हैं। विदेशों में विज्ञान की तरह ही एक शाखा विधिवत संगीत का अनुसंधान कर रही है और अब तक जो निष्कर्ष निकले हैं, वह मनुष्य को इस बात की प्रबल प्रेरणा देते हैं कि यदि मानवीय गुणों और आत्मिक आनंद को जीवित रखना है तो मनुष्य

अपने आपको संगीत से जोड़े रहे। संगीत की तुलना प्रेम से की गई है। दोनों ही समान उत्पादक शक्तियाँ हैं, इन दोनों का ही प्रकृति (जड़ तत्त्व) और जीवन (चेतन तत्त्व) दोनों पर ही चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है। "संगीत आत्मा की उन्नति का सबसे अच्छा उपाय है, इसलिए हमेशा वाद्य यंत्र के साथ गाना चाहिये।" यह पाइथागोरस की मान्यता थी; पर डॉ। मैकफेडेन ने वाद्य अपेक्षा गायन को ज़्यादा लाभकारी बताया है। मानसिक प्रसन्नता की दृष्टि से पाइथागोरस की बात अधिक सही लगती है। मैकफेडेन ने लगता है, केवल शारीरिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर ऐसा लिखा है। इससे भी आगे की कक्षा आत्मिक है, उस सम्बंध में कविवर रवींद्रनाथ टैगोर का कथन उल्लेखनीय है। श्री टैगोर के शब्दों में स्वर्गीय सौंदर्य का कोई साकार रूप और सजीव प्रदर्शन है, तो उसे संगीत ही होना चाहिये। रस्किन ने संगीत को आत्मा के उत्थान, चरित्र की दृढ़ता कला और सुरुचि के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन माना है। विभिन्न प्रकार की सम्मतियाँ वस्तुतः अपनी-अपनी तरह की विशेष अनुभूतियाँ हैं, अन्यथा संगीत में शरीर, मन और आत्मा तीनों को बलवान् बनाने वाले तत्त्व परिपूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं, इसी कारण भारतीय आचार्यों और मनीषियों ने संगीत शास्त्र पर सर्वाधिक जोर दिया। साम वेद की स्वतंत्र रचना उसका प्रणाम है। समस्त स्वर-ताल, लय, छंद, गति, मंत्र, स्वर, चिकित्सा, राग, नृत्य, मुद्रा, भाव आदि साम वेद से ही निकले हैं। किसी समय इस दिशा में भी भारतीयों ने योग सिद्धि प्राप्त करके, यह दिखा दिया था कि स्वर साधना के समक्ष संसार की कोई और दूसरी शक्ति नहीं। उसके चमत्कारिक प्रयोग भी सैकड़ों बार हुए हैं।

अकबर की राज्य- सभा में संगीत प्रतियोगिता रखी गई। प्रमुख प्रतिद्वंद्वी थे तानसेन और बैजूबावरा। यह आयोजन आगरे के पास वन में किया गया। तानसेन ने टोड़ी राग गाया और कहा जाता है कि उसकी स्वर लहरियां जैसे ही वन खंड में गुंजित हुईं, मृगों का एक झुंड वहाँ दौड़ता हुआ चला आया। भाव-विभोर तानसेन ने अपने गले पड़ी माला एक हरिण के गले में डाल दी। इस क्रिया से संगीत प्रवाह रुक गया और तभी सब के सब सम्मोहित हरिण जंगल में भाग गये। टोड़ी राग गाकर तानसेन ने यह सिद्ध कर दिया कि संगीत मनुष्यों की ही नहीं, प्राणिमात्र की आत्मिक-प्यास है, उसे सभी लोग पसंद करते हैं। इसके बाद बैजूबाबरा ने मृग रंजनी टोड़ी राग का अलाप किया। तब केवल एक वह मृग दौड़ता हुआ राज्य-सभा में आ गया, जिसे तानसेन ने माला पहनाई थी। इस प्रयोग से बैजूबावरा ने यह सिद्ध कर दिया कि शब्द के सूक्ष्मतम कंपनों में कुछ ऐसी शक्ति और सम्मोहन भरा पड़ा है कि उससे किसी भी दिशा के कितनी ही दूरस्थ किसी भी प्राणी तक अपना संदेश भेजा जा सकता है।

शब्द को ब्रह्म कहा गया है। 'शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म' शब्दों का उपयोग शास्त्र में अनेक स्थानों पर आया है। यह उक्ति अलंकार नहीं-वरन् यथार्थ है। हाँ, यदि ध्वनि मात्र को यह उपमा दी जाएगी तो उसे उपहासास्पद समझा जाएगा । जिह्वा स्वर यन्त्र है। वाद्य यन्त्र पर उलटी सीधी अंगुली से आघात लगाये जाएँ तो आवाज भर होगी। क्रमबद्ध, तालबद्ध, राग-रागिनी निकालनी हो तो उसके लिए सधे हाथ एवं प्रशिक्षित मस्तिष्क का भी योगदान आवश्यक है। जिव्हा से बोले गये मन्त्र वाद्य-यन्त्र पर जैसे जैसे अंगुली चलाने की तरह है, उतने भर से दीपक राग या मेघ मल्हार जैसे प्रभावोत्पादक परिणामों की अपेक्षा नहीं की जा सकती । जिव्हा से उच्चरित शब्द सामान्यतया जानकारियों के आदान प्रदान का उद्देश्य पूरा करते हैं। एक व्यक्ति शब्द माध्यम से अपनी अनुभूति एवं जानकारी दूसरे तक पहुँचा सकता है। इसमें भी आवश्यक नहीं कि जिससे जो कहा गया है वह उसे उसी रूप में स्वीकार कर ले। कारण कि आजकल वचन छल का दौर दौरा है। लोग एक दूसरे को ठगने की दृष्टि से कपट वचन बोलने की कला में प्रवीण हो चले है। अस्तु सुनने वाले को फूँक-फूँक कर कदम रखना होता है और देखना पड़ता है कि कथन में छल, प्रपंच की दुरभिसंधियाँ तो घुसी हुई नहीं है। कितना कथन संदिग्ध हो सकता है, इसकी खोज करने में सुनने वाला लगता है। जितना अंश गले उतरता है, उतने पर ध्यान देकर शेष को उपेक्षा के गर्त में फेंक देता है। जब सामान्य व्यवहार तक में वाणी की यह दुर्गति हो रही हो। उच्चारण को अविश्वस्त और अप्रमाणिक मानने की परम्परा चल रही हो तो उससे व्यावहारिक आदान प्रदान तक की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती। फिर आध्यात्मिक प्रयोजन तो पूरे हो ही कैसे सकेंगे । इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए ही मन्त्राराधन में 'वाणी' मात्र से सम्भव हो सकने वाले क्रिया-काण्डों को महत्त्व नहीं दिया गया है।

जीभ से तो लोग आये दिन कथा, कीर्तन, भजन, पाठ, जप आदि के माध्यम से तरह तरह के चित्र विचित्र वचन बोलते रहते हैं। यदि उतने भर से धर्मचर्या के उद्देश्य पूरे हो जाया करते तो फिर सरलता की अति ही कही जाती। छोटे छोटे लाभ प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कठोर श्रम करने, साधन जुटाने एवं मनोयोग लगाने की आवश्यकता पड़ती है तब कहीं आधी अधूरी सफलता का योग बनता है। अध्यात्म क्षेत्र जितना उच्चस्तरीय है उतनी ही उसकी विभूतियाँ भी बहुमूल्य है। निश्चित रूप से उसके लिए प्रयास भी अपेक्षाकृत अधिक कष्ट साध्य ही होते हैं। यदि उतने बड़े लाभ मात्र जिव्हा से अमुक शब्दावली दुहरा देने भर से प्राप्त हो जाया करते तो उन्हें पाने से कोई भी वंचित न रहता, पर इतना सस्तापन है कहाँ ? महत्त्व की दृष्टि से हर वस्तु का मूल्य निर्धारित है। अध्यात्म उपलब्धियों में शब्द शक्ति की महत्ता बताई और महिमा गाई गई है। मन्त्राराधन के फलस्वरूप मिलने वाले लाभों का वर्णन विस्तारपूर्वक शास्त्रों में भरा पड़ा है, पर उसे शब्द चमत्कार भर नहीं मान लिया जाना चाहिए। यदि उच्चारण ही सब कुछ रहा होता तो साधन ग्रन्थ पढ़ने वाली से प्रेस कर्मचारी और, पुस्तक विक्रेता पहले ही लाभान्वित हो लेते। पाठक को उनका बचा-खुचा ही शायद कुछ हाथ लगता। शब्दोच्चारण में जप के अति सरल कर्मकाण्ड के लिए थोड़ा-सा संयम लगा देने में किसी को क्या कुछ असुविधा होगी ? उतना तो कोई बालक नासमझ या वृद्ध अशक्त भी कर सकता है, फिर समर्थ व्यक्ति तो उसे उत्साहपूर्वक करते और भरपूर लाभ उठाते। ऐसा कहाँ होता है ? लाभों का महात्म्य विस्तार पढ़ते हुए भी कुछ करने के लिए कहाँ किसी का उत्साह होता है। शब्द ब्रह्म-शब्दों में जो गहन रहस्य छिपा है वह यह है कि अध्यात्म प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली को उच्चस्तरीय होना चाहिए। वह इतनी परिष्कृत हो कि उसकी पवित्रता, प्रामाणिकता एवं क्षमता को ईश्वर के समतुल्य ठहराया जा सके। इसके लिए कई लोग स्वर विन्यास की बात सोचते हैं और अनुमान लगाते हैं कि मन्त्रों में उच्चारण का जो स्वर क्रम बताया गया है, उसे जान लेने से काम बन जाएगा । यह मान्यता भी तथ्य की दिशा में एक छोटा कदम भर ही है। इस चिन्तन में इतनी सी जानकारी है कि हमारे क्रिया कृत्यों को अनगढ़ नहीं-सुव्यवस्थित होना चाहिए। भले ही वह उच्चारण ही क्यों न हो? वाणी को शिष्टाचार-सन्तुलन सभ्यता का अंग माना जाता है। जो ऐसे ही अण्ड-बण्ड बोलते रहते हैं वे असभ्य कहलाते और तिरस्कार के पात्र बनते हैं। ऐसी दशा में मन्त्र प्रयोजनों में यदि उसके साथ जुड़े हुए व्यवस्था नियमों का पालन किये जाने का निर्देश है तो उसका पालन होना ही चाहिए। इसमें सतर्कता एवं जागरूकता अपनाये जाने की बात दृष्टिगोचर होती है। यह दिशा उत्साहवर्धक है। इससे प्रमाद पर अंकुश लगने और व्यवस्था अपनाने में उत्साह उत्पन्न होने का बोध होता है, यह उचित भी है और आशाजनक भी। मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध हो। सही हो। गति का ध्यान रहे। स्वर, लय, क्रम, विराम आदि को जाना माना जाय। यह अनगढ़पन से मन्त्र चार की सभ्यता में प्रवेश करने का कदम है। पूजा, उपचार के अन्य कर्मकाण्डों में भी यह सतर्कता बरती जानी चाहिए। आलसी प्रमादियों की तरह आधी-अधूरी चिह्न पूजा करने की बेगार भुगत लेने से तो अश्रद्धा ही टपकती है। अन्य मनस्कता एवं उपेक्षापूर्वक किये गये नित्य कर्म तक बेतुके बेढंगे होते हैं, इस स्वभाव से तो आजीविका उपार्जन जैसे काम तक असफल जैसे बने रहते हैं, फिर अध्यात्म मार्ग की उपलब्धियों में तो उसका परिणाम अवरोध उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ हो ही क्या सकता है ?

उच्चारण से लेकर विधि-विधान तक में सुव्यवस्था एवं सतर्कता बरती जानी चाहिए किन्तु इतने भर से ही यह नहीं मान लेना चाहिए कि हमारे उच्चारण 'मन्त्र' बन गये और उन्हें शब्द ब्रह्म की संज्ञा मिल गई। इसके लिए वाणी को 'वाक्' के रूप में परिष्कृत करना होगा। यह स्वर साधना नहीं वरन् जीवन साधना के क्षेत्र में होने वाला प्रयोग है। इसके लिए समूचे व्यक्तित्व को मन, वचन, कर्म को, गुण कर्म स्वभाव को, चिन्तन एवं चरित्र को, उच्चस्तरीय बनाने के भागीरथ प्रयत्न में जुटना होता है। मन्त्रोच्चारण की विधि-व्यवस्था कुछ घण्टों में सीखी जा सकती है। उसका परिपूर्ण अभ्यास कुछ दिनों में हो सकता है। किन्तु व्यक्तित्व की मूल सत्ता का स्तर ऊँचा उठाना काफी कठिन है। उसके लिए प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है। दूसरों को सुधारने में जितनी कठिनाई पड़ती है, अपने को सुधारना उससे भी अधिक कष्ट साध्य और श्रम साध्य है। जिव्हा उच्चारण तन्त्र है। अन्य वाद्य यन्त्रों की तरह उसका सही होना तो प्राथमिक आवश्यकता है। मन्त्र की शब्दावली शुद्ध हो। भाषा की अशुद्धियाँ न हों। प्रवाह एवं स्वर ठीक हो। इसके अतिरिक्त जिव्हा साधना की दृष्टि से सामान्य व्यवहार में उसके

रसना प्रयोजन एवं वार्ताक्रम में साधकों जैसी रीति नीति का समावेश किया जाय। अति की, हराम की कमाई न खाई जाय। परिश्रम और न्याय के सहारे जितना कुछ कमाया जा सके उतने में ही मितव्ययितापूर्वक गुजारा किया जाय। चटोरेपन की बुरी आदत से लड़ा जाय और सात्विक सुपाच्य पदार्थों को औषधि भाव से उतनी ही मात्रा में लिया जाय जितनी कि पेट की आवश्यकता एवं क्षमता है। इस दृष्टिकोण को अपनाने वाले के लिए मद्य, माँस जैसे अभक्ष्य को ग्रहण करने की तो बात ही क्या-उत्तेजक मसाले और नशीले पदार्थों-मिष्ठान्न पकवानों तक से परहेज करने की जरूरत स्पष्ट है। सात्विक आहार से मनः क्षेत्र में सात्विकता बढ़ती है और उससे अनेकों दोष-दुर्गुण जो अभक्ष्य खाते रहने पर छुट नहीं सकते थे, अनायास ही घटते-मिटते चले जाते हैं। अस्वाद व्रत पालन करने वाले के लिए अन्य इन्द्रियों पर काबू रख सकना सरल हो जाता है।

आहार की सात्विकता का वाणी की पवित्रता पर गहरा असर पड़ता है। अभक्ष्य आहार से जिव्हा की सूक्ष्म शक्ति नष्ट होती है और उसके द्वारा उच्चरित शब्द आध्यात्मिक प्रयोजन पूरे कर सकने की क्षमता से रहित ही बने रहते हैं। वाणी का दूसरा कार्य है वार्त्तालाप। हमारे दैनिक जीवन में वार्तालाप का स्तर उच्चस्तरीय एवं आदर्श परम्पराओं से युक्त होना चाहिए। कटुता घृणा, तिरस्कार, छल, असत्य का पुट उसमें न रहे। दूसरों को भ्रम में डालने, कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाले, हिम्मत तोड़ने वाले शब्द न बोले। यह नियंत्रण मात्र सतर्कता बरतने से नहीं हो सकता है। उपचार में भी बार-बार भूल होती रहती है। वस्तुतः हमारे भीतर सद्भावों का इतना गहरा पुट हो कि वाणी पर नियन्त्रण करने की आवश्यकता ही न पड़े। जो भीतर होता है वही बाहर निकलता है। यदि हमारे अन्तःकरण में सद्भावनाएँ भरी होंगी दृष्टिकोण आदर्शवादी होगा तो स्वभावतः वार्तालाप में उच्चस्तरीय श्रेष्ठता भरी होगी। सद्भाव सम्पन्न मनुष्यों का सामान्य वार्तालाप भी शास्त्र वचन के स्तर का होता है उनके मुख से निकलने वाले वाक्य 'आप्त वाक्य' कहलाने योग्य होते हैं। इस प्रकार का वार्ता-अभ्यास जिव्हा को दैवी प्रयोजनों के उपयुक्त बनाता चला जाता है। उसके द्वारा जिन मन्त्रों की आराधना की जाती है वे सफल ही होते चले जाते हैं। मन्त्र को धीमे जपा जाता है। शब्दावली अस्पष्ट एवं धीमी रहती है। बहुत बार तो वाचिक से भी अधिक महत्त्व मानसिक और उपाँशु का होता है। उनमें तो वाणी नाम मात्र को ही होती है। किन्तु इन मौन जपों में भी मध्यमा, परा, पश्यन्ती, वाणियाँ काम करती रहती है। यह तीनों वाणियाँ मनुष्य के दृष्टिकोण, चरित्र एवं आकांक्षा से सम्बन्धित रहती है। यदि व्यक्ति ओछा, घटिया और दुष्ट है। उसकी आकांक्षाएँ निकृष्ट, दृष्टिकोण विकृत एवं चरित्र भ्रष्ट है तो तीनों सूक्ष्म वाणियाँ निम्नस्तरीय ही बनी रहेंगी और उनका समन्वय रहने में बैखरी वाणी तक प्रभावहीन संदिग्ध एवं अप्रामाणिक बनी रहेगी उसका साँसारिक उपयोग कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न न कर सकेगा फिर उसके द्वारा की गई मन्त्र साधना तो सफल हो ही कैसे सकती है ? मन्त्र जप की सरल विधि के साथ कठिन साधना यह है कि उसके लिए जिव्हा समेत समस्त उपकरणों का परिशोधन करना पड़ता है। जो तथ्य को समझते हैं वे साधनाओं के विधि-विधान तक सीमित न रह कर जीवन-प्रक्रिया को उच्चस्तरीय बनाने की सुविस्तृत रूपरेखा तैयार करते हैं। उस प्रयास में जिसे जितनी सफलता मिलेगी उसके जप तप उसी अनुपात में सफल होते देखे जा सकेंगे । शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार इसी मार्ग पर चलने से सम्भव होता है। समूची आत्मसत्ता को परिष्कृत बनाने से वाणी की परिणित 'वाक्' शक्ति में होती है। वाक् शक्ति का प्रभाव असीम है। उसकी सहायता से असम्भव को भी सम्भव किया जा सकता है।

शतपथ ब्राह्मण में शब्द ब्रह्म का विवेचन करते हुए कहा गया है। परा वाक् उसका मर्मस्थल है। परा वाक् का रहस्योद्घाटन करते हुए बताया है-वह हृदयस्पर्शी है प्रसुप्त को जगाती है। स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि का आधार वही है। देवताओं के अनुग्रह वरदान का केन्द्र उसी में है। इस विश्व में जो कुछ श्रेष्ठता है वह वाक् की प्रतिध्वनि एवं प्रतिक्रिया ही समझी जानी चाहिए। वैखरी वाणी जब साधना सम्पन्न होकर 'वाक्' बनती है तो उसका विस्तार श्रवण क्षेत्र तक सीमित न रह कर तीनों लोकों की परिधि तक व्यापक होता है। वाणी में ध्वनि है ध्वनि में अर्थ। किन्तु वाक् शक्ति रूपा है। उसकी क्षमता का उपयोग करने पर वह सब जीता जा सकता है। जो जीतने योग्य है। कौत्स मुनि ने मन्त्र अक्षरों के अर्थ की उपेक्षा होती है और कहा है कि उनकी क्षमता शब्द

गुँथन के आधार पर समझी जानी चाहिए। उसमें 'वाक्' तत्त्व ही प्रधान रूप से काम करता है। इस 'परावाक्' का स्तवन करते हुए श्रुति कहती है।

देवी वाचमजनयन्त देवास्ताँ, विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मंद्रेष्षमूर्ग दुहाना, धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुवैतु॥ प्रा वाक् देवी है। विश्व रूपिणी है। देवताओं की जननी है। देवता मन्त्रात्मक ही है। यही विज्ञान है। इसे कामधेनु हम बोलते और जानते हैं।

13 - मैं ही सब में सर्व श्रेष्ठ हूं

आप्यायध्वम्= इस प्रकार तुम प्रतिदिन बढ़ो और तुम्हार झुकाव श्रेष्ठ कर्मों में हो।

"दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धाममनृतेऽधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ।।" (यजुर्वेदः–१९.७७)

सर्वज्ञ और आदिस्रष्टा परमेश्वर ने अश्रद्धा को असत्य में तथा श्रद्धा को सत्य में स्थापित किया है । "श्रद्धा"– शब्द श्रत् धा इन दो तत्त्वों के योग से निष्पन्न होता है । "श्रत्" का अर्थ है सत्य या ज्ञान और धा का तात्पर्य धारण करना या भावना है । अतः केवल सहज विश्वास अथवा अन्धविश्वास का नाम श्रद्धा नहीं है । सत्य को निश्चयपूर्वक जानकर उसे दृढता के साथ धारण करना श्रद्धा है । सत्य धारणा अथवा निष्ठा के साथ अभीष्ट की ओर उन्मुख रहना श्रद्धा है अथवा हृद की गहनतम भावना के साथ साध्य की साधना करना श्रद्धा है ।श्रद्धा हृदय की उत्कृष्टतम अनुभूति है । अन्य शब्दों में श्रेष्ठता की प्रति अटूट आस्था का नाम ही श्रद्धा है । अन्तःकरण की दिव्यभूमि में जब श्रद्धा अंकुरित होती है तो व्यक्ति का समग्र जीवन प्रशस्त हो उठता है । श्रद्धा आध्यात्मिक क्षेत्र की ऊर्जा है । जिस प्रकाप भौतिक क्षेत्र में अग्नि या सूर्य की शक्ति ऊर्जा मानी जाती है, वैसे ही अध्यात्म के क्षेत्र में आन्तरिक ऊर्जा श्रद्धा ही है । श्रद्धा ही सारे धार्मिक कृत्यों और आयोजनों का प्राण है, उसके बिना मनुष्य के सब धर्म निष्फल है । धार्मिक कर्मकाण्ड और मान्यताएँ श्रद्धा के अभाव में मूल्यहीन हो जाती है । अतः शक्ति या प्रभाव आडम्बर की विशालता में नहीं, श्रद्धा की शक्ति में सन्निहित होता है । कर्मकाण्ड की या साधन-विधान की उतनी महत्ता नहीं, जितनी उसके मूल में काम करने वाला श्रद्धा की है । श्रद्धाविहीन कर्म मनुष्य को लकीर का फकीर बना देते हैं । श्रद्धा न हो तो यज्ञ की अग्नि और रसोई के चूल्हे की अग्नि, वेदमन्त्रों और साधारण शब्दों तथा गाय और घोडे में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा । इसीलिए श्रुति का उद्घोष है- "श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।" (ऋग्वेदः–१०.१५१.१) श्रद्धा के अभिसिञ्चन से असाध्य कार्य भी सिद्ध हो सकते हैं, पाषाण में भी प्राणवानों जैसी दिव्य शक्ति का सञ्चार हो सकता है । श्रद्धा के बल पर ही एकलव्य ने मिट्टी की द्रोणाचार्य की प्रतिमा से उतनी शिक्षा प्राप्त कर ली थी, जितनी पाण्डव साक्षात् द्रोणाचार्य से भी प्राप्त नहीं कर सके । श्रद्धा के कारण ही युधिष्ठिर का विशाल राजसूय यज्ञ नेवले के आधे शरीर को सुवर्णमय नहीं बना सका, किन्तु निर्धन ब्राह्मण के त्याग ने उसे आधी कञ्चन काया प्रदान कर दी थी । इसलिए नारदपुराण में कहा गया है कि श्रद्धा से ही सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धा से ही भगवान् सन्तुष्ट होते हैं । श्रद्धा की महिमा प्रकट करते हुए गीताकार ने भी कहा है— "सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत । श्रद्धामयोऽयं पुरुषों यो यच्छर्द्धः स एव सः ।।" (गीता–१७.३)

अर्थ—जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है । व्यक्तित्व की श्रेष्ठता-निकृष्टता की पहचान यही श्रद्धा ही है । श्रद्धा से ही सत्य की सिद्धि होती है—"श्रद्धया सत्यमाप्यते" (यजुर्वेदः–१९.३०) श्रद्धा से ही वसु की उपलब्धि होती है—"श्रद्धया विन्दते वसु" (ऋग्वेदः–१०.१५१.४) तथा श्रद्धा से ही विद्वान् जन देवत्व को प्राप्त

करते हैं—"श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते ।" (तैत्तिरीय-ब्राह्मण—३.२.३) मानव जीवन में ज्ञान का महत्त्व सर्वोच्च है—"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।" (गीता–३.३८) अर्थात् संसार में ज्ञान से बढकर पवित्र कुछ भी नहीं है तथा ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में श्रद्धा का विशेष महत्त्व है—"श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्।" (गीता–३.३९) श्रद्धावान् व्यक्ति को ही ज्ञान-लाभ होता है । श्रद्धा से ही ज्ञानरूप अग्नि प्रज्वलित होती है । श्रद्धा होने पर ही सद्गुरु एवं सद्ग्रन्थ प्रभावी होते हैं । इसीलिए कहा गया है कि श्रद्धायुक्त कर्मों का उल अनन्त होता है—

"श्रद्धाविधिसमायुक्तं कर्म यत् क्रियते नृभिः । सुविशुद्धेन भावेन तदनन्ताय कल्पते ।।" (याज्ञवल्क्य-स्मृतिः) साधना के क्षेत्र में श्रद्धा की अपरिमित शक्ति ही काम करती है । श्रद्धा और विश्वास होने पर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, यह तर्क से संभव नहीं है । हमारे शास्त्रकार स्वयं यह घोषणा करते हैं कि जो हमारे अच्छे आचरण है, उन्हीं का तुम्हे अनुसरण करना चाहिए, अन्य का नहीं—"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ।" आज हमारे समाज में नैतिक मूल्यों का संकट विषम रूप में उपल्थित है । एक ओर वैज्ञानिक प्रगति ने तथाकथित शिक्षित मनुष्य को मानवीय गुणों से शून्य, यन्त्रवत् बना डाला है तो दूसरी ओर अधिसंख्य अशिक्षित जन अन्धश्रद्धा के जाल में जकडे हुए हैं । अतः इस बात की महती आवश्यकता है कि "श्रद्धा" जैसे सार्वकालिक, सार्वभौमिक सद्गुणों के सत्य स्वरूप को जनसाधारण तक पहुँचाया जाए, ताकि भारतीय संस्कृति के सनातन सन्देश सर्वजनग्राह्य हो सके । वैदिक ऋषि की यह कामना पूर्ण हो— "श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि । श्रद्धा सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ।।" (ऋग्वेदः–१०.१५१.४)

शब्दाद्वैतवाद के अनुसार शब्द ही ब्रह्म है। उसकी ही सत्ता है। सम्पूर्ण जगत शब्दमय है। शब्द की ही प्रेरणा से समस्त संसार गतिशील है। महती स्फोट प्रक्रिया से जगत की उत्पत्ति हुई तथा उसका विनाश भी शब्द के साथ होगा। इन्द्रियों में सबसे अधिक चंचल तथा वेगवान मन को माना गया है। 'मन के तीन प्रमुख कार्य हैं'- स्मृति, कल्पना तथा चिन्तन। इन तीनों से ही मन की चंचलता बनती है। लेकिन यदि मन को शब्द का माध्यम न मिले तो उसे चंचलता नहीं प्राप्त हो सकती। उसकी गति शब्द की बैसाखी पर निर्भर है। सारी स्मृतियाँ, कल्पनाएँ तथा चिन्तन शब्द के माध्यम से चलते हैं। दैनन्दिन जीवन में काम आने वाले शब्दों को दो भागों में बाँटा जा सकता है- व्यक्त और अव्यक्त। जैन पंन्थी इन्हें अपनी भाषा में जल्प और अन्तर्जल्प कहते हैं। जो बोला जाता है उसे जल्प कहते हैं। जल्प का अर्थ है- व्यक्त स्पष्ट मन्तव्य। जो स्पष्टतः बोला नहीं जाता, मन में सोचा अथवा जिसकी मात्र कल्पना की जाती है वह है- अन्तर्जल्प। मुँह बन्द होने होठ के स्थिर होने पर भी मन के द्वारा बोला जा सकता है, जो कुछ भी सोचा जाता है, वह भी एक प्रकार से बोलने की प्रक्रिया है तथा उतनी ही प्रभावशाली होती है जितनी की व्यक्त वाणी। शब्द अपनी अभिव्यक्ति के पूर्व चिंतन के रूप में होता है। अपनी उत्पत्ति काल में वह सूक्ष्म होता है पर बाहर आते-आते वह स्थूल बन जाता है। जो सूक्ष्म है वह हमारे लिये अश्रव्य है। जो स्थूल है वही सुनाई पड़ता है। ध्वनि विज्ञान ने ध्वनियों को दो रूपों में विभक्त किया है-श्रव्य और अश्रव्य। अश्रव्य- अर्थात्- अल्ट्रा साउण्ड- सुपर सोनिक। हमारे कान मात्र 20000 कम्पन आवृत्ति को ही पकड़ सकते हैं। वे न्यूनतम 20 कम्पन आवृत्ति प्रति सेकेण्ड तथा अधिकतम 20 हजार कम्पन आवृत्ति प्रति सेकेण्ड को पकड़ने में सक्षम हैं। पर उनसे कम तथा अधिक आवृत्ति वाली ध्वनि तरंगों का भी अस्तित्व है। श्रवणेन्द्रियों की मर्यादा अपनी सीमा रेखा को चीर नहीं पाती। फलस्वरूप वे ध्वनियाँ सुनाई नहीं पड़तीं। कान यदि सूक्ष्मातीत ध्वनि तरंगों को पकड़ने लगें तो मालूम होगा कि संसार में नीरवता कहीं और कभी भी नहीं है। कमरे में बन्द आदमी अपने को कोलाहल से दूर पाता है। पर सच्चाई यह है कि उसके चारों और कोलाहल का साम्राज्य है। समूचा अन्तरिक्ष ध्वनि तरंगों से आलोड़ित है। उनमें से थोड़ी-सी ध्वनियाँ मात्र मनुष्य के कानों तक पहुँच पाती हैं। प्रकृति की अगणित घटनाएँ सूक्ष्म जगत में पकती रहती हैं। घटित होने के पूर्व भी उनकी सूक्ष्म ध्वनि तरंगें सूक्ष्म अन्तरिक्ष में दोलयमान रहती हैं। उन्हें पकड़ा और सुना जा सके तो कितनी ही प्रकृति की घटनाओं का पूर्वानुमान लगा सकना सम्भव है। मनुष्येत्तर कितने ही जीव ऐसे हैं जिन्हें प्रकृति की घटनाओं का भूकम्प, तूफान आदि विभीषिकाओं का पूर्वाभास हो जाता है। सूचना मिलते ही उनका व्यवहार बदल जाता है। अपनी आदत के विरुद्ध वे अस्वाभाविक आचरण करने लगते हैं। कितने ही सुरक्षा के लिए सुरक्षित स्थानों की

ओर दौड़ने लगते हैं। सूक्ष्म ध्वनि स्पन्दनों के आधार पर ही वे सम्भाव्य विभीषिकाओं का अनुमान लगा लेते हैं। जो कुछ भी बोला अथवा सोचा जाता है वह तुरन्त समाप्त नहीं हो जाता, सूक्ष्म रूप में अन्तरिक्ष में विद्यमान रहता, तरंगित होता रहता है। हजारों-लाखों वर्षों तक ये कम्पन उसी रूप में रहते हैं। ऐसे प्रयोग भी वैज्ञानिक क्षेत्र में चल रहे हैं कि भूतकाल में जो कुछ भी कहा गया है ईथर में विद्यमान है उसे यथावत् पकड़ा जा सके। सदियों पूर्व महा-मानवों ऋषि कल्प देव पुरुषों ने क्या कहा होगा, उसे प्रत्यक्ष सुना जा सके ऐसे अनुसन्धान प्रयोगावधि में हैं। अभी सफलता तो नहीं मिल पायी है पर वैज्ञानिक आश्वस्त हैं कि आज नहीं तो कल वह विद्या हाथ लग जायेगी। निस्सन्देह यह उपलब्धि मानव जाति के लिए महत्वपूर्ण तथा अद्वितीय होगी अब तक की वैज्ञानिक उपलब्धियों में वह सर्वोपरि होगी। सम्भवतः इसी आधार पर कृष्ण द्वारा कही गयी गीता, एवं राम रावण संवादों को अपने ही कानों से सुनना सम्भव हो सकेगा। रेडियो, टेलीविजन, राडार की भाँति प्राचीन काल के आविष्कारों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा चमत्कारी खोज थी- मन्त्र विद्या। मन्त्र ध्वनि विज्ञान का सूक्ष्मतम विज्ञान था। इसके अनुसार जो कार्य आधुनिक यन्त्रों के माध्यम से हो सकते हैं वे मन्त्र के प्रयोग से भी सम्भव हैं। पदार्थ की तरह अक्षरों तथा अक्षरों से युक्त शब्दों में अकूत शक्ति का भाण्डागार मौजूद है। मन्त्र कुछ शब्दों के गुच्छक मात्र होते हैं पर ध्वनि शास्त्र के आधार पर उनकी संरचना बताती है कि एक विशिष्ट ताल, क्रम एवं गति से उनके उच्चारण से विशिष्ट प्रकार की ऊर्जा उत्पन्न होती है। प्राचीन काल में ऋषियों ने शब्दों की गहराई में जाकर उनकी कारण शक्ति की खोज-बीन के आधार मन्त्रों एवं छन्दों की रचना की थी। पिछले दिनों ध्वनि विज्ञान पर अमेरिका पश्चिम जर्मनी में कितनी ही महत्वपूर्ण खोजें हुई हैं। साउण्ड थैरेपी एक नयी उपचार पद्धति के रूप में विकसित हुई है। ध्वनि कम्पनों के आधार पर मारक शस्त्र भी बनने लगे हैं। ब्रेन वाशिंग के अगणित प्रयोगों में ध्वनि विद्या का प्रयोग होने लगा है। अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाले राकेटों, स्पेस शटलों के नियन्त्रण संचालन में भी शब्द विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है। पर वैज्ञानिक क्षेत्र में ध्वनि विद्या का अब तक जितना प्रयोग हुआ है, वह स्थूल है, सूक्ष्म और कारण स्वरूप अभी भी अविज्ञात अप्रयुक्त है जो स्थूल की तुलना में कई गुना अधिक सामर्थ्यवान है। मन्त्रों में शब्दों की स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म एवं कारण शक्ति का अधिक महत्व है। मानवी व्यक्तित्व की गहरी परतों- मन एवं अन्तःकरण को मन्त्र की सूक्ष्म एवं कारण शक्ति ही प्रभावित करती है। व्यक्तित्व का रूपान्तरण- विचारों में परिवर्तन उसके प्रभाव से ही होता है। यों तो वेदों के हर मन्त्र एवं छन्द का अपना महत्व है। देखने में गायत्री महामन्त्र भी अन्य मन्त्रों की तरह सामान्य ही लगता है, जो नौ शब्दों तथा 24 अक्षरों से मिलकर बना है। पर जिन कारणों से उसकी विशिष्टता आँकी गई है वे हैं- मन्त्र के विशिष्ट क्रम में अक्षरों एवं शब्दों का गुँथन प्रवाह, उनका चक्र-उपत्यिकाओं पर प्रभाव तथा उसकी महान प्रेरणाएँ। हर अक्षर एक विशिष्ट क्रम में जुड़कर असीम शक्तिशाली बन जाता है। 24 रत्नों के रूप में अक्षरों के नवनीत का एक मणिमुक्तक बना तथा आदिकाल में प्रकट हुआ। ब्रह्म की स्फुरणा के रूप में गायत्री मन्त्र का प्रादुर्भाव हुआ तथा आदि मन्त्र कहलाया। सामर्थ्य की दृष्टि से इतना विलक्षण एवं चमत्कारी अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है। दिव्य प्रेरणाओं की उसे गंगोत्री कहा जा सकता है। संसार के किसी भी धर्म में इतना संक्षिप्त, पर इतना अधिक सजीव एवं सर्वांगपूर्ण कोई भी प्रेरक दर्शन नहीं है जो एक साथ उन सभी प्रेरणाओं को उभारे जिनसे महानता की ओर बढ़ने तथा आत्मबल सम्पन्न बनने का पथ-प्रशस्त होता है। ब्रह्म की अनुभूति शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म के रूप में भी होती है जिसकी सूक्ष्म स्फुरणा हर पर सूक्ष्म अन्तरिक्ष में हो रही है। गायत्री महामन्त्र नाद ब्रह्म तक पहुँचने का एक सशक्त माध्यम है। प्राचीन काल की तरह सामान्य व्यक्ति को भी अतिमानव- महामानव बना देने की सामर्थ्य उसमें मौजूद है। आवश्यकता इतनी भर है कि गायत्री मन्त्र की उपासना के विधि-विधानों तक ही सीमित न रहकर उसने निहित दर्शन एवं प्रेरणाओं को भी हृदयंगम किया जाय और तद्नुरूप अपने व्यक्तित्व को ढाला जाय। पूरी श्रद्धा के साथ मन्त्र का अवलम्बन लिया जा सके तो आज भी वह पुरातन काल की ही तरह चमत्कारी सामर्थ्यदायी सिद्ध हो सकता है।

राजकुमार और उसके पुत्र के बलिदान की कहानीः- किसी समय शूद्रक नामक राजा राज्य किया करता था। उसके राज्य में वीरवर नामक महाराजकुमार किसी देश से आया और राजा की ड्योढ़ी पर आ कर द्वारपाल से बोला, मैं राजपुत्र हूँ, नौकरी चाहता हूँ। राजा का दर्शन कराओ। फिर उसने उसे राजा का दर्शन कराया और

वह बोला-- महाराज, जो मुझ सेवक का प्रयोजन हो तो मुझे नौकर रखिये, शूद्रक बोला – तुम कितनी तनख्वाह चाहते हो ? वीरवर बोला -- नित्य पाँच सौ मोहरें दीजिये। राजा बोला -- तेरे पास क्या- क्या सामग्री है ? वीरवर बोला -- दो बाँहें ओर तीसरा खड्ग। राजा बोला यह बात नहीं हो सकती है। यह सुनकर वीरवर चल दिया। फिर मंत्रियों ने कहा-- हे महाराज, चार दिन का वेतन दे कर इसका स्वरुप जान लीजिये कि यह क्या उपयोगी है, जो इतना धन लेता है या उपयोगी नहीं है। फिर मंत्री के वचन से बुलवाया और वीरवर को बीड़ा देकर पाँच सौ मोहरें दे दी। और उसका काम भी राजा ने छुप कर देखा। वीरवर ने उस धन का आधा देवताओं को और ब्राह्मणों को अर्पण कर दिया। बचे हुए का आधा दुखियों को, उससे बचा हुआ भोजन के तथा विलासादि में खर्च किया। यह सब नित्य काम करके वह राजा के द्वार पर रातदिन हाथ में खड्ग लेकर सेवा करता था और जब राजा स्वयं आज्ञा देता, तब अपने घर जाता था। फिर एक समय कृष्णपक्ष की चौदस के दिन, रात को राजा को करुणासहित रोने का शब्द सुना। शूद्रक बोला – यहाँ द्वार पर कौन- कौन है ? उसने कहा – महाराज, मैं वीरवर हूँ। राजा ने कहा – रोने की तो टोह लगाओं। जो महाराज की आज्ञा, यह कहकर वीरवर चल दिया और राजा ने सोचा- यह बात उचित नहीं है कि इस राजकुमारों को मैंने घने अंधेरे में जाने की आज्ञा दी। इसलिये मैं उसके पीछे जा कर यह क्या है, इसका निश्चय करूँ। फिर राजा भी खड्ग लेकर उसके पीछे नगर से बाहर गया और वीरवर ने जा कर उस रोती हुई, रुप तथा यौवन से सुंदर और सब आभूषण पहिने हुए किसी स्री को देखा और पूछा – तू कौन है ? किसलिये रोती है ? स्री ने कहा – मैं इस शूद्रक की राजलक्ष्मी हूँ। बहुत काल से इसकी भुजाओं की छाया में बड़े सुख से विश्राम करती थी। अब दूसरे स्थान में जाऊँगी। वीरवर बोला – जिसमें नाश का संभव है, उसमें उपाय भी है। इसलिए कैसे फिर यहाँ आपका रहना होगा ? लक्ष्मी बोली – जो तू बत्तीस लक्षणों से संपन्न अपने पुत्र शक्तिधर को सर्वमंगला देवी की भेंट करे, तो मैं फिर यहाँ बहुत काल तक रहूँ। यह कह कर वह अंतर्धान हो गई। फिर वीरवर ने अपने घर जा कर सोती हुई अपनी स्री को और बेटे को जगाया। वे दोनों नींद को छोड़, उठ कर खड़े हो गये। वीरवर ने वह सब लक्ष्मी का वचन उनको सुनाया। उसे सुन कर शक्तिधर आनंद से बोला – मैं धन्य हूँ, जो ऐसे, स्वामी के राज्य की रक्षा के लिए मेरा उपयोग प्रशंसनीय है। इसलिए अब विलंब का क्या कारण है ? ऐसे काम में देह का त्याग प्रशंसनीय है।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत। सन्निमित्ते वरंत्यागो विनाशे नियते सति।। अर्थात, पण्डित को परोपकार के लिए धन और प्राण छोड़ देने चाहिए, विनाश तो निश्चत होगा ही, इसलिये अच्छे कार्य के लिए प्राणों का त्याग श्रेष्ठ है। शक्तिधर की माता बोली – जो यह नहीं करोगे तो और किस काम से इस बड़े वेतन के ऋण से उनंतर होगे ? यह विचार कर सब सर्वमंगला देवी के स्थान पर गये। वहाँ सर्वमंगला देवी की पूजा कर वीरवर ने कहा – हे देवी, प्रसन्न हो, शूद्रक महाराज की जय हो, जय हो। यह भेंट लो। यह कह कर पुत्र का सिर काट डाला। फिर वीरवर सोचने लगा कि – लिये हुए राजा के ऋण को तो चुका दिया। अब बिना पुत्र के जीवित किस काम का ? यह विचार कर उसने अपना सिर काट दिया। फिर पति और पुत्र के शोक से पीड़ित स्री ने भी अपना सिर काट डाला, तब राजा आश्चर्य से सोचने लगा,

जीवन्ति च म्रियन्ते च मद्विधाः क्षुद्रजन्तवः। अनेन सद्दशो लोके न भूतो न भविष्यति।।

अर्थात, मेरे समान नीच प्राणी संसार में जीते हैं और मरते भी हैं, परंतु संसार में इसके समान न हुआ और न होगा। इसलिए ऐसे महापुरुष से शून्य इस राज्य से मुझे भी क्या प्रयोजन है बाद में शूद्रक ने भी अपना सिर काटने को खड्ग उठाया। तब सर्वमंगला देवी ने राजा का हाथ रोका और कहा- हे पुत्र, मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, इतना साहस मत करो। मरने के बाद भी तेरा राज्य भंग नहीं होगा। तब राजा साष्टांग दंडवत और प्रणाम करके बोला -- हे देवी, मुझे राज्य से क्या है या जीन से भी क्या प्रयोजन है ? जो मैं कृपा के योग्य हूँ तो मेरी शेष आयु से स्री पुत्र सहित वीरवर जी उठे। नहीं तो मैं अपना सिर काट डालूँगा। देवी बोली"-- हे पुत्र, जाओ तुम्हारी जय हो। यह राजपुत्र भी परिवार सहित जी उठे। यह कह कर देवी अन्तध्र्यान हो गई। बाद में वीरवर

अपने स्री- पुत्र सहित घर को गया। राजा भी उनसे छुप कर शीघ्र रनवास में चला गया। इसके उपरांत प्रातःकाल राजा ने ड्योढ़ी पर बैठे वीरवर से फिर पूछा और वह बोला- हे महाराज, वह रोती हुई स्री मुझे देखकर अंतध्र्यान हो गई, और कुछ दूसरी बात नहीं थी। उसका वचन सुन कर राजा सोचने लगा -""इस महात्मा की किस प्रकार बड़ाई करूँ।"

प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः। दाता नापात्रवर्षी च प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः।

क्योंकि, उदार पुरुष को मीठा बोलना चाहिये, शूर को अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये, दाता को कुपात्र में दान नहीं करना चाहिए और उचित कहने वाले को दयारहित नहीं होना चाहिये। यह महापुरुष का लक्षण इसमें सब है। बाद में राजा ने प्रातःकाल शिष्ट लोगों की सभा करके और सब वृत्तांत की प्रशंसा करके प्रसन्नता से उसे कर्नाटक का राज्य दे दिया।

एक समय की बात है । एक नगर में एक कंजूस राजेश नामक व्यक्ति रहता था । उसकी कंजूसी सर्वप्रसिद्ध थी । वह खाने, पहनने तक में भी कंजूस था । एक बात उसके घर से एक कटोरी गुम हो गई । इसी कटोरी के दुःख में राजेश ने 3 दिन तक कुछ न खाया । परिवार के सभी सदस्य उसकी कंजूसी से दुखी थे । मोहल्ले में उसकी कोई इज्जत न थी, क्योंकि वह किसी भी सामाजिक कार्य में दान नहीं करता था । एक बार उस राजेश के पड़ोस में धार्मिक कथा का आयोजन हुआ । वेदमंत्रों व् उपनिषदों पर आधारित कथा हो रही थी । राजेश को सद्बुद्धि आई तो वह भी कथा सुनने के लिए सत्संग में पहुँच गया । वेद के वैज्ञानिक सिद्धांतों को सुनकर उसको भी रस आने लगा क्योंकि वैदिक सिद्धान्त व्यावहारिक व् वास्तविकता पर आधारित एवं सत्य-असत्य का बोध कराने वाले होते है । कंजूस को ओर रस आने लगा । उसकी कोई कदर न करता फिर भी वह प्रतिदिन कथा में आने लगा । कथा के समाप्त होते ही वह सबसे पहले शंका पूछता । इस तरह उसकी रूचि बढती गई । वैदिक कथा के अंत में लंगर का आयोजन था इसलिए कथावाचक ने इसकी सूचना दी कि कल लंगर होगा । इसके लिए जो श्रद्धा से कुछ भी लाना चाहे या दान करना चाहे तो कर सकता है । अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार सभी लोग कुछ न कुछ लाए । कंजूस के हृदय में जो श्रद्धा पैदा हुई वह भी एक गठरी बांध सर पर रखकर लाया । भीड़ काफी थी । कंजूस को देखकर उसे कोई भी आगे नहीं बढ़ने देता । इस प्रकार सभी दान देकर यथास्थान बैठ गए । अब कंजूस की बारी आई तो सभी लोग उसे देख रहे थे । कंजूस को विद्वान की ओर बढ़ता देख सभी को हंसी आ गई क्योंकि सभी को मालूम था कि यह महाकंजूस है । उसकी गठरी को देख लोग तरह-तरह के अनुमान लगते ओर हँसते । लेकिन कंजूस को इसकी परवाह न थी । कंजूस ने आगे बढ़कर विद्वान ब्राह्मण को प्रणाम किया । जो गठरी अपने साथ लाया था, उसे उसके चरणों में रखकर खोला तो सभी लोगों की आँखें फटी-की-फटी रह गई । कंजूस के जीवन की जो भी अमूल्य संपत्ति गहने, जेवर, हीरे-जवाहरात आदि थे उसने सब कुछ को दान कर दिया। उठकर वह यथास्थान जाने लगा तो विद्वान ने कहा, "महाराज! आप वहाँ नहीं, यहाँ बैठिये ।" कंजूस बोला, "पंडित जी! यह मेरा आदर नहीं है, यह तो मेरे धन का आदर है, अन्यथा मैं तो रोज आता था और यही पर बैठता था, तब मुझे कोई न पूछता था।" ब्राह्मण बोला, "नहीं, महाराज! यह आपके धन का आदर नहीं है, बल्कि आपके महान त्याग (दान) का आदर है । यह धन तो थोड़ी देर पहले आपके पास ही था, तब इतना आदर-सम्मान नहीं था जितना की अब आपके त्याग (दान) में है इसलिए आप आज से एक सम्मानित व्यक्ति बन गए है। शिक्षा :- मनुष्य को कमाना भी चाहिए और दान भी अवश्य देना चाहिए । इससे उसे समाज में सम्मान और इष्टलोक तथा परलोक में पुण्य मिलता है ।

14 – मैं अहिंशा हूं

अघ्न्याः= तुम अहिंसक बनोः- अहिंसक बनने से पहले हमें यह जानना होगा की अहिंसा है क्या? "अहिंसा परमो धर्मः धर्म हिंसा तथैव चः ।(अर्थात् यदि अहिंसा मनुष्य का परम धर्म है और धर्म की रक्षा के लिए हिंसा करना उस से भी श्रेष्ठ है) "अहिंसा" का अर्थ है सर्वदा तथा सर्वदा (मनसा, वाचा और कर्मणा) सब प्राणियों के साथ द्रोह का अभाव। (अंहिसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः – व्यासभाष्य, योगसूत्र 2। 30)। अहिंसा के भीतर इस प्रकार सर्वकाल में केवल कर्म या वचन से ही सब जीवों के साथ द्रोह न करने की बात समाविष्ट नहीं होती, प्रत्युत मन के द्वारा भी द्रोह के अभाव का संबंध रहता है। योगशास्त्र में निर्दिष्ट यम तथा नियम अहिंसामूलक ही माने जाते हैं। यदि उनके द्वारा किसी प्रकार की हिंसावृत्ति का उदय होता है तो वे साधना की सिद्धि में उपादेय तथा उपकार नहीं माने जाते। "सत्य" की महिमा तथा श्रेष्ठता सर्वत्र प्रतिपादित की गई है, परंतु यदि कहीं अहिंसा के साथ सत्य का संघर्ष घटित हाता है तो वहाँ सत्य वस्तुतः सत्य न होकर सत्याभास ही माना जाता है। कोई वस्तु जैसी देखी गई हो तथा जैसी अनुमित हो उसका उसी रूप में वचन के द्वारा प्रकट करना तथा मन के द्वारा संकल्प करना "सत्य" कहलाता है, परंतु यह वाणी भी सब भूतों के उपकार के लिए प्रवृत्त होती है, भूतों के उपघात के लिए नहीं। इस प्रकार सत्य की भी कसौटी अहिंसा ही है। इस प्रसंग में वाचस्पति मिश्र ने "सत्यतपा" नामक तपस्वी के सत्यवचन को भी सत्याभास ही माना है, क्योंकि उसने चोरों के द्वारा पूछे जाने पर उस मार्ग से जानेवाले सार्थ (व्यापारियों का समूह) का सच्चा परिचय दिया था। हिंदू शास्त्रों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय (न चुराना), ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह, इन पाँचों यमों को जाति, देश, काल तथा समय से अनवच्छिन्न होने के कारण समभावेन सार्वभौम तथा महाव्रत कहा गया है (योगवूत्र 2। 31) और इनमें भी, सबका आधारा होने से, "अहिंसा" ही सबसे अधिक महाव्रत कहलाने की योग्यता रखती है। अंतर्ध्यान – अंहिसा क्या है ? अहिंसा का एक साधारण अर्थ जो हमें बताया जाता है – "हिंसा न करना" ही अहिंसा है । हिंसा नहीं करनी चाहिए क्योंकि हिंसा करना पाप है जबकि अहिंसा परम धर्म है । क्या सही में अहिंसा का वही अर्थ है जो हमें बताया जा रहा है, जो हमें सिखाया जा रहा है, जो हम सुनते आ रहे हैं । ये विचार मेरे दिमाग में इसलिए आया क्योंकि अगर अहिंसा ही परम धर्मं होता तो क्या कृष्ण जी ने पूरी गीता में अर्जुन को हथियार उठाने और युद्ध के लिए प्रेरित करके अधर्म किया था ? वो गलत था या हमारे समझने में कुछ फेर है ? क्योंकि अगर अहिंसा का अर्थ हिंसा न करना होता और अहिंसा ही परम धर्म होता तो क्या महाराणा प्रताप, महाराणा सांगा, शिवा जी, रानी लक्ष्मीबाई, ये सब अधर्मी थे क्या ? क्या अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए इन्होने जो युद्ध किये वो केवल अधर्म का ही अनुसरण था ? रामायण में कहा गया है –"जननी धर्म भूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी", तो उस मातृभूमि की रक्षा के लिए जो हिंसा की जाए, वो अधर्म कैसे हो सकती है । जरूर कहीं कुछ गड़बड़ है, या तो गीता और रामायण गलत बता रहे हैं या फिर "अहिंसा परमो धर्मः" को समझने में कुछ भूल है । स्कन्द पुराण में लिखा है कि एक ब्राहमण भी यदि स्त्री रक्षा, गौ रक्षा और कुटुंब की रक्षा के लिए शस्त्र उठा ले और लड़ते लड़ते मारा जाए तो उसकी गति उन परम तपस्विओं के फल से भी कहीं अधिक होती हैं जो हजारों वर्षों से तपस्या कर रहे हैं । मैंने जब और ढूँढा तो मैंने मनुस्मृति का वो श्लोक पढ़ा जिसमें धर्म के दस लक्षण बताये गए हैं –"धृति क्षमा दमोस्तेयं, शौचं इन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यं अक्रोधो, दसकं धर्म लक्षणम।। इसमें धर्म के दस लक्षण हैं पर कहीं भी अहिंसा नहीं है, हाँ, अक्रोध अवश्य है । पर अक्रोध और अहिंसा तो अलग अलग है ।फिर अहिंसा परम धर्म कैसे हुआ ? क्या ये सारे शास्त्र, पुराण धर्म के बारे में कुछ गलत कह रहे हैं या हम अहिंसा को कुछ गलत समझ रहे हैं ? इन सारी बातों पर बहुत विचार करने पर एक निष्कर्ष निकला कि अहिंसा का अर्थ "हिंसा न करना" नहीं है अपितु अंहिंसा का जो संभव अर्थ हो सकता है – "अकारण हिंसा न करना" । किसी जीव को अकारण नुक्सान न पहुँचाना ही अहिंसा है, चाहे मानसिक हो या शारीरिक क्योंकि हिंसा मानसिक भी हो सकती है । हाँ, यदि आपके पास कारण है, यदि सामने कोई आताताई है, यदि कोई किसी स्त्री का शोषण कर रहा है, यदि कोई आपके कुटुंब पर आघात करता हो, यदि कोई आपकी मातृभूमि पर कब्ज़ा करने का प्रयास करता है तो हिंसा आवश्यक है और परम पुण्य की प्राप्ति कराने वाली है। समय के साथ बहुत

सी बातें और बहुत सा ज्ञान विलुप्त हो रहा है, ऐसा इसलिए नहीं कि कलियुग है या फलाना है या ढिकाना है, वरन इसलिए क्योंकि हमने शब्दों के अर्थ बदल दिए हैं। हम शब्दों के अर्थों पर उतना मनन नहीं करते जितना आवश्यक है क्योंकि ये कार्य तो हमने विचारकों के लिए छोड़ दिया है। जो बाबा जी ने स्टेज पर से बता दिया वही सही है, क्यों सही है ? अरे देखो कितने लोग इनको करते है । ये क्या गलत कहेंगे ? इन्होने इतने शास्त्रों का अध्ययन किया है, ये क्या गलत बात बोलेंगे ? ये जो खुद की बुद्धि को प्रयोग न करने वाली जो प्रवुत्ति है, ये जो खुद को विचार न करने देने की प्रवृत्ति है, ये खतरनाक है। इसने ही धर्म का नाश किया है। आप केवल बाबाओं के भाषण मत सुनिए, उनसे प्रश्न कीजिये । गुरु-शिष्य परम्परा कभी प्रचवन वाली नहीं रही। उसमें शिष्य अपने अज्ञान को मिटाने के लिए अपने गुरु से विभिन्न प्रश्न करता है और गुरु उन प्रश्नों का समाधान करते हैं। आप भी प्रश्न कीजिये। पूछिए अपने गुरुओं से, बाबाओं से, डरिये मत कि लोग क्या कहेंगे ? कहने दीजिये लोग जो कहते हैं, यदि आप को सही में ज्ञान चाहिए तो आपको खड़े हो कर सवाल करने पड़ेंगे। चीजो को सही में समझना होगा। धर्म क्या है इसके अंत तक जाना पड़ेगा। यदि आप धर्म को सझते हैं तो आपका जीवन ऊर्ध्वगामी होगा अन्यथा जो बाबा जी कह रहे हैं उसे कीजिये और किसी भी बात को मान कर के उसे अपने जीवन में उतारिये। आप समझ रहे हैं कि आप धर्म कर रहे हैं, पुण्य कार्य कर रहे हैं किन्तु वास्तव में आपके जीवन में सिवाय कष्टों के कुछ नहीं है। इस बात को समझना होगा कि तिलक छापे लगाने वाला आवश्यक नहीं कि पंडित हो, पंडित का अर्थ तो है ग्यानी, जिसने वेद का, पुराणों का, शास्त्रों का अध्ययन किया हो और न केवल अध्ययन किया हो वरन अध्ययन के बाद चिंतन भी किया हो। हर कोई इतना अध्ययन नहीं कर सकता, इसलिए समाज में ब्राह्मण की परिकल्पना की गयी जिसका कार्य केवल समाज में ज्ञान का प्रचार और प्रसार था (ब्राहमणों में कई टाइप होते थे, जिनमें सभी कार्य ज्ञान का प्रचार प्रसार नहीं होता था)। यदि आप को अपने जीवन में कोई कष्ट है, कोई समस्या है तो राह चलते किसी तिलक छापे वाले से मत पूछिए, किसी भी बाबा से मत पूछिए बल्कि अपने चारों ओर ऐसे व्यक्ति को ढूंढिए जो सही में ग्यानी हो। ऐसे व्यक्ति को, ऐसे गुरु को ढूंढना पड़ता है, वो आसानी से नहीं मिलते। वो तम्बू डेरा लगा कर भाषण देने नहीं आते। पहले खुद को शिष्य बनाना पड़ेगा, सौम्य बनाना पड़ेगा, ये मानना पड़ेगा कि जो मुझे जो आता है, जो मैंने सीखा है वो पूर्ण नहीं है क्योंकि जब तक आपका खुद का गिलास खाली नहीं होगा, तब तक उसमें और जल नहीं भरा जा सकता। जब आप ये मान लेंगे, गुरु आपको मिलेगा और जब तक आप ये नहीं मानेगे, यकीन मानिए वो आपके सामने आकर निकल जाएगा और आप अपने अहंकार में ही डूबे रहेंगे कि मैंने तो इतना अध्ययन किया है, मैंने तो गीता पढ़ी है, मैंने तो फलाने गुरु जी से ज्ञान प्राप्त किया है, मुझे तो सब पता है। जाने कितने पड़े हैं गीता पढ़ने वाले, जाने कितने पड़े हैं पुराण पढने वाले जिन्हें पूरी पूरी गीता कंठस्थ है किन्तु वो रट्टू तोते से ज्यादा कुछ नहीं.... वो केवल शब्दों का अर्थ जानते हैं, बता सकते हैं कि कौन से पेज पर, कौन से श्लोक में, क्या लिखा है लेकिन ये ज्ञान नहीं है, ज्ञान तो बिना चिंतन के बिना मनन के आ ही नहीं सकता। आपको ऐसा चिंतन करना पड़ेगा। एक एक वाक्य पर, एक एक शब्द पर, आपके दिमाग में प्रश्न आयेंगे, आप उनका समाधान ढूंढिए, प्रश्न पूछिए अपने आप से, अपने गुरु से तभी आपको आगे का रास्ता साफ़ दिखाई देगा।|

अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमो दमः। अहिंसा परम दानं, अहिंसा परम तपः॥ अहिंसा परम यज्ञः अहिंसा परमो फलम्।

अहिंसा परमं मित्रः अहिंसा परमं सुखम्॥ महाभारत/अनुशासन पर्व (११५-२३/११६-२८-२९) याद रखने वाली बात है अहिंसा का अर्थ है अकारण हिंसा न करना। जीव हत्या पाप है यदि अकारण हो किन्तु यदि वही जीव आप पर आक्रमण कर दे तो उसका वध करना ही उचित है। यदि कोई आपको या आपकी स्त्री को, कुटुंब को, गाय को और अन्यान्य प्राणियों को कष्ट पहुंचता है तो आपको भी हिंसा करनी पड़ेगी और उस समय वह धर्म होगा। बस आपकी ओर से हिंसा शुरू नहीं होनी चाहिए वो भी अकारण। तब ये अहिंसा ही धर्म बन जाती है।

अहिंसा की कामना या हिंसा की वासना से मुक्त हो जाने का क्या अर्थ है? बहुत मजे की बात है कि ये सारे भिन्न-भिन्न मार्ग बहुत गहरे में कहीं एक ही मूल से जुड़े होते हैं। जब तक मनुष्य के मन में इंद्रियों का

लोभ है, तब तक हिंसा से मुक्ति असंभव है। जब तक आदमी इंद्रियों को तृप्त करने के लिए विक्षिप्त है, तब तक हिंसा से मुक्ति असंभव है। इंद्रियां पूरे समय हिंसा कर रही हैं। जब आपकी आंख किसी के शरीर पर वासना बन जाती है, तब हिंसा हो जाती है। तब आपने बलात्कार कर लिया। अदालत में नहीं पकड़े जा सकते हैं आप, क्योंकि अदालत के पास आंखों से किए गए बलात्कार को पकड़ने का अब तक कोई उपाय नहीं है। लेकिन जब आंख किसी के शरीर पर पड़ी और आंख मांग बन गई, काम बन गई, वासना बन गई; और आंख ने एक क्षण में उस शरीर को चाह लिया, पजेस कर लिया; एक क्षण में उस शरीर को भोगने की कामना का धुआं चारों तरफ फैल गया–बलात्कार हो गया। आंख से हुआ, आंख शरीर का हिस्सा है। आंख से हुआ, आंख के पीछे आप खड़े हैं। आंख से हुआ, आपने किया; हिंसा हो गई। हिंसा सिर्फ छुरा भोंकने से नहीं होती, आंख भौंकने से भी हो जाती है। इंद्रियां जब तक आतुर हैं भोगने को, तब तक हिंसा जारी रहती है। इंद्रियां जब भोगने को आतुर नहीं रहतीं, तभी हिंसा से छुटकारा है। जिसे हम हिंसा कहते हैं, वह कब पैदा होती है? यह सूक्ष्म हिंसा छोड़ें; जिसे हम हिंसा कहते हैं, स्थूल, वह कब पैदा होती है? वह तभी पैदा होती है, जब आपकी किसी कामना में अवरोध आ जाता है, अटकाव आ जाता है। तभी पैदा होती है। अगर आप किसी के शरीर को भोगना चाहते हैं और कोई दूसरा बीच में आ जाता है; या जिसका शरीर है, वही बीच में आ जाता है कि नहीं भोगने देंगे–तब हिंसा शुरू होती है। जब भी आपकी इंद्रियां भोगने के लिए कहीं कब्जा मांगती हैं और कब्जा नहीं मिल पाता, तभी हिंसा शुरू हो जाती है। स्थूल हिंसा शुरू हो जाती है। सूक्ष्म हिंसा पहले, भाव हिंसा पहले, फिर हिंसा सक्रिय होती और स्थूल बन जाती है। कृष्ण कहते हैं, अहिंसा के मार्ग से भी, अर्थात इंद्रियों से जिसने अब मांगना छोड़ दिया, इंद्रियां जिसके भिक्षापात्र न रहीं; इंद्रियों से जिसने छेदना छोड़ दिया, इंद्रियां जिसके शस्त्र न रहीं; इंद्रियों से जिसने आक्रमण छोड़ दिया। ध्यान में जाना हो, तो पहले प्रतिक्रमण। कभी आपने सोचा है कि प्रतिक्रमण का मतलब होता है, आक्रमण से उलटा! आक्रमण का मतलब है, दूसरे पर हमला। प्रतिक्रमण का मतलब है, आक्रमण की सारी शक्तियों को अपने में वापस लौटा ले जाना प्रतिक्रमण, आंख गई आप पर आक्रमण करने को, तो हिंसा हो गई। और मैंने आंख को वापस लौटा लिया उसकी पूरी कामना के साथ अपने भीतर, अपने भीतर, गहरे में वहां, जहां से उठती है कामना, वहीं उसे ले गया वापस–तो यह हुआ प्रतिक्रमण। और जब प्रतिक्रमण हो, तभी ध्यान हो सकता है, अन्यथा ध्यान नहीं हो सकता। क्योंकि आक्रमण करने वाली इंद्रियों के साथ ध्यान कैसा? प्रतिक्रमण करने वाली इंद्रियों के साथ ध्यान फलित हो सकता है। कृष्ण कहते हैं, अहिंसा के मार्ग से भी, अर्थात आक्रमण जो नहीं कर रहा। अब ध्यान रखें, अगर ठीक से समझें, तो किसी भी तल पर आक्रमण की कामना हिंसा है–किसी भी तल पर। सूक्ष्म से सूक्ष्म तल पर भी आक्रमण की इच्छा हिंसा है। अनाक्रमण, प्रतिक्रमण, शक्तियों को लौटा लेना वापस अपने में–आंख लौट जाए आंख के मूल में; कान लौट जाए कान के मूल में; स्वाद लौट जाए स्वाद के मूल में; फैलाव बंद हो; सब सिकुड़ आए अपने मूल में–जब ऐसा प्रतिक्रमण फलित हो, तब व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध हो पाता है। अहिंसा का अर्थ है, प्रतिक्रमण, लौटना, हिंसा का मतलब है, जाना दूसरे के ऊपर, किसी भी रूप में दूसरे के ऊपर जाना। दूसरे पर जाना! यह हिंसा शत्रुतापूर्ण भी हो सकती है, मित्रतापूर्ण भी हो सकती है। जो नासमझ हैं, वे शत्रुता के ढंग से दूसरे पर जाते हैं; जो होशियार हैं, वे मित्रतापूर्ण ढंग से दूसरों के ऊपर जाते हैं। लेकिन जब तक कोई दूसरे पर जाता है, तब तक हिंसा है। और जब कोई दूसरे पर जाता ही नहीं, अपने जाने को ही वापस लौटा लेता है, तब अहिंसा है। इस अहिंसा के क्षण में भी वही हो जाता है, जो योगाग्नि में जलकर होता है।

15 – मैं तुम सब कि आत्मा हूं

इन्द्राय भागम्= परमेश्वर के सान्निध्य में रहो। मेरे प्रिय आत्म मन मैं अपना अनुभव तुम सब के साथ बाट रहा हूं। मैंने अपने गहन अनुभव और शोध से यह जाना है कि इस संसार में रहना है और सफलता को

हासिल करना है और अपने लिये अच्छा कुछ श्रेष्ठ करना चाहते हो, तो तुम्हें कुछ एक वस्तुओं का जीवन में अस्थान नहीं देना चाहिये। पहली सबसे खतरनाक वस्तु है शान्ती, दूसरी सरलता, तीसरी सज्जनता। यह केवल शब्द कोश में ही रहें तो बहुत अच्छा है। यदी इनका अस्थान जीवन में हो गया तो जीवन का रहना बहुत कठीन और दुस्कर होगा। जो लोग शान्ती, सरलता और सज्जनता निर्दोषता की बातें करते है। वह सारे धुर्त के हिंसक और बहुत खतरनाक किस्म के व्यक्ती है। इनसे तुम्हे सावधान रहना चाहिये। अब संसार बदल गया है आज के संसार में एक सरल शान्त और सज्जन निर्दोष आदमी का जीवन जीना एक आत्मा हत्या के समान है और कौन बुद्धिमान आदमी स्वयं की आत्म हत्या करना चाहता होगा? मेरे एक मित्र है जो बहुत शान्त और सज्जन किस्म के व्यक्ती है। वह हमेशा हर किसी के साथ बहुत सरलता से और प्रेम भाव से ही पेश आते है। जिसके कारण उनके जीवन में कोई भी व्यक्ती उनके साथ नहीं है हर आदमी उनको मुर्ख समझता है हलांकि वह बहुत इमानदार और बुद्धिमान व्यक्ती है। लेकिन उनकी वुद्धीमानी उनके लिये हमेशा एक नये संकट को ही खड़ी करती। उनके पिता भी उनसे खुश नहीं रहते क्योंकि वह अपनी शान्ती के कारण ही ज़रूरत से अधिक सहन शक्ति उनके पिता की दृष्टी में वह मुर्ख और बेकार समझे जाते है और हमेशां उनको तरह-तरह यातना बचपन से देते रहे। जिसके कारण वह अक्सर मानसिक रूप से विक्षिप्त जैसे रहने लगे वह कोई कार्य सही ढंग से नहीं किया। उनकी पढ़ाई लिखाई भी पुरी नहीं हो सकी। वह अपने पीता के दुर्व्यवहार को लेकर हमेशा चिंतित और परेशान रहे। दोनों के सम्बंध बहुत कटुता पूर्ण बने रहें जो कभी भी सामंजस्य आपसे में नहीं बना पाये। उन्होने अपने घर को छोड़ दिया बाहर परदेश में रहने लगे लेकिन अत्यधिक शान्त स्वभाव के कारण वह लोगों की नजर में कायर और निकम्मे मुर्ख ही समझ में आये वह कही स्वयं को व्यवस्थित नहीं कर सके. उन्होंने अपने जीवन की परेशानियों और तनावों से मुक्ती पाने के लिये वह कई प्रकार के नशे का सेवन करने लगे और धिरे-धिरे वह नशें के शिकार हो गये वह अपनी परेशानियों से उभर नहीं पाये, जीवन चलता रहा पहले से बढ़ कर जीवन ने उनके लिये नई-नई चुनौतियों को खड़ा किया इसी बीच उनकी शादी भी गई. एक गरीब परिवार की लड़की के साथ और वह अपने उसी घर में रहने लगे जिसमें उनका पिता ही उनका सबसे बड़ा शत्रु था। उसनें हमारे सज्जन शांत मित्र के लिये रोज नई एक परेशानियाँ खड़ी करने लगे। जिससे पूर्णतः मुक्त हो पाते की उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ। जो एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी उनके लिये, लेकिन हमारें मित्र इसके लिये बिल्कुल तैयार नहीं थे। ना पत्नी की देख भाल करने में नाही उसकी आवश्यक्ता की पुर्ती करने में ही, इसमें एक नव जात का आना और उसकी देखभाल करना उनके लिये असंभव सिद्ध हुआ जिसके कारण बच्चा असमय बीमार हो कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। यही नहीं इसके कुछ समय बाद उनकी पत्नी भी उनसे अत्यधिक तंग आ कर उनका साथ छोड़ कर चली गई और दूसरी दूनिया बसा लिया अर्थात किसी और से शादी कर ली। इसके बाद वह पहले ऐसे ही नौकरिया करते और छोड़ते रहें। सैकड़ो नौकरियाँ किया लेकिन कहीं पर ज़्यादा समय तक टीक नहीं पाये। तो उन्होंने अपना स्वयं का एक छोटा व्यापार शुरु किया जो थोड़े समय तक ठीक रहा लेकिन उसने भी बहुत बुरी तरह से उनके परास्थ कर दिया। वह अपने धन्धे को आगें नहीं चला सके. वह फिर भी हिम्मत नहीं हारे उनके शाहस की मैं सराहना करता हूँ की उन्हें कदम-कदम पर हार का सामना करना पड़ा फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारा आगे एक नई योजना पर काम एक नये उत्साह के साथ शुरु कर दिया। उन्होंने एक विद्यालय चलाने का निर्णय किया कुछ दिन चलाया भी लेकिन उनके दुर्भाग्य ने उनका साथ नहीं छोड़ा और पहले से अधिक जोर से उनको पटका उनको एक-एक रुपये के लिये परेशान कर दिया। उनका सब कुछ डुब गया। यहाँ तक उनका जीवन भी बचाना उनके लिये संकट पूर्ण हो गया, उनके लिये खाने पीने रहने की मुसिबत आ कर खड़ी हो गई. वह सन्यासी बन गये और भीछाटन करने लगे उस पर भी उनका गुजारा नहीं हो सका। क्योकि उनको कोई भीछा देने के लिये राजी नहीं था जैसे पुरी कायनात ही उनका शत्रु बन गई हो। वह वेचारे ना जी पा रहे थे ना मर ही पारे थे। मुस्किले तो सब पर आती है लेकिन उनके उपर तो एक से बढ़ एक मुसिबतों के पहाड़ ही गिरने लगे। उनको एक बहुत भंयकर बिमारी ने पकड़ लिया जिसका इलाज करा पाना उनके लिये। आसान नहीं था फिर भी वह उस बिमारी से उभरने के लिये जी जान से जुटे रहे और किसी तरह से जो अपने कुछ परिचीत चाहने वाले कुछ अंतिम लोग थे पैसे का ऋण लेकर इलाज कराने के लिये। लेकिन उनको आशा जनक सफलता नहीं मिली। उनकी बिमारी बढ़ती ही गई जिसका उन्होंनें आपरेशन

भी कराया मगर उसमें सफलता नहीं मीली। अर्थात वह बिमारी नहीं ठीक हुई. उसी हालत में उनको अपने लिये खाना बनाना और अपना सब काम अकेले ही देख भाल करना पड़ता, एकान्त जंगल की एक कुटी में रह कर करना पंड़ता था। जहाँ पर आयें दिन चोर बदमाश लुटेरें उनके पास आते और उनको परेशान करते थे। उनका वहाँ जीना मुस्किल लगने लगा। जब उनको निश्चित हो गया की यदी यहाँ रहे तो उनकी मृत्यु होना निश्चित होगा और वह मरना नहीं चाहते थे। जैसा की कोई भी नहीं चाहता है। वह करना तो बहुत कुछ चाहते है लेकिन उसके लिये उनके पास ना ही साधन है और ना ही लोग उनका साथ ही देना चाहते है उस स्थाना पर। इसलिये उन्होंने वह स्थान छोड़ने का निश्चय किया और वहाँ से अपनी जान बचाने के लिये एक शहर में चले गये जहाँ पर उन्होंने पहले अपनी सेवा दी थी। उस संस्थान के मालिक को उन पर दया आ गई और उसने उनको इस बिमारी की हालत में काम पर रख लिया। जहाँ पर वह काम कर करके आपना इलाज कराने लगे उनका सारा पैसा उनके इलाज में ही खर्च हो रहा है। लेकिन वह स्वस्थ नहीं हुए. इसलिये कहता हूँ की इस शान्ती से दूर ही रहने में समझदारी है।

16 – मैं तुम सब का प्रजापति हूं

प्राजावतीः= श्रेष्ठ संतानों वाले बनो। सम्बंध क्या है, सम्बंधों पर ही यह दूनीया खड़ी है। सम्बंध कितने प्रकार के होते है। पति पत्नी का सम्बंध जो जिसे हम गृहस्थ जीवन कहते है जो सभी सम्बंधों का आधार है। आज के समय में सम्बंधों का मतलब बदल गया है। पहले लोग एक दूसरें के लिये ही जिते मरते थे एक दूसरें की इच्छा को ही अपनी इच्छा बना लेते थे। एक दूसरे के मन को वह जानने वाले थे उनके एक दूसरे के विचार, हृदय औप चित्त एक समान रहने वाले थे। जिस प्रकार से एक हाईड्रोजन और आक्सिजन के परमाणु आपस में मिल कर एक पानी के परमाणु को बनाते है। जो जीवन का मुल आधार है जीवन का सर्वप्रथम विकास जल में ही हुआ था ऐसा माना जाता है। यह जल दो अणुओं के मेल से बनता है। वह दो अणु ही स्त्री पुरुष के समान है। जीनको हम पति पत्नी कहते है यह भले ही दो अलग शरीर है लेकिन उनकी मानसिक स्थिति एक समान होती है। दोनों के शरीर में अन्तर है पुरुष शरीर आक्रामक है जबकी स्त्री शरीर शान्त है। जिस प्रकार से सूर्य है पुरुष के समान और स्त्री पृथिवी के समान है। इसी प्रकार से पानी में जो दो अणु है उसमें हाइड्रोजन आग के समान गरम और ज्वनलन शील है, जबति आक्सिजन सरल शान्त और ठन्डा है। इन दोनों विपरीत तत्वों में जब रासायनिक अभिक्रिया होती है तो एक नया पदार्थ उत्तपन्न होता है। लकिन जब दो भौतिक पदार्थ मिलते है तब उनके द्वारा कोई तीसरा नया पदार्थ उतपन्न नहीं होता है। पहले ऐसा नहीं था।

यह गृहस्थ जीवन जो संसार के सभी वर्णों का मुख्य श्रोत है इन गृहस्थों के द्वारा ही और सभी सम्बंधों का आधार भुत स्तम्भ खड़ा होता है। यह जब तक सच्चे और वफादार रहते तो इनके द्वारा ही और भी सम्बंध में रिस्तो में पवित्रता और सच्चाई रहती है। जिस प्रकार से यदि सूर्य अपना स्वभाव बदल दे तो क्या होगा, जो वह गरमी देने वाला है वह ठण्डी देने कार्य करने लगे तो क्या यहाँ पृथ्वी पर जीवन का विकास संभव है। या फिर पृथ्वी जब गरम होने लगे सूर्य के समान तो क्या होगा, क्या यहाँ पर जीवन का रहना संभव होगा। दोनो ही स्थिति में जीवन का ही सर्वनाष होगा या सूर्य ठंडा हो जाये या फिर पृथ्वी गरम हो जाये। इन दोनों के मध्य रासायनिक अभीक्रिया होगी जिसके द्वारा एक नया तत्व उत्तपन्न होगा जिसका कार्य होगा मृत्यु की सृजन, यही बात जल के अणुओं के साथ भी है जो आक्सिजन का स्वभाव शान्त है वह गरम हो जाये और हाईड्रोजन शान्त ठंडा हो जाये तो भी जीवन का सर्वनाश ही होना निश्चित है। जल नहीं होगा अग्नी होगी जो जीवन उत्पादन के लिये सहयोगी तत्व नहीं है। इसी प्रकार से जब पुरुष का स्वभाव बदलता है वह शान्त होता जा रहा है और स्त्री गरम होती जा रही है। जो आज के युग के में हो रहा है आधुनिकता के नाम पर औरते आक्रमक बन रही है। पुरष शान्त और मन्दवुद्धि होते जा रहे है निरंतर। जिसका प्रभाव जीवन पर पड़ रहा है। इससे भौतिक परिवर्तन शारिक रूप से नहीं हो रहा है लेकिन रासायनिक परिवर्तन हो रहा है जो बहुत सुक्ष्म है इससे जो तीसरा तत्व

उत्तपन्न जीवन का हो रहा है उसमें जीवन्तता कम हो रही है। वह निरंतर मृत्यु को उपलब्ध हो रहा है, जो उत्तपन्न हो रहा वह पहले से ही मृत्यु तत्व की अधिकता के साथ हो रहा है। अर्थात यह जो जीव उत्तपन्न हो रहा इन गृहस्थों के द्वारा यह संक्रमित चुका है इसके अन्दर से जीवन का ज्ञान पूर्णतः लुप्त हो चुका है। यह बहुत गंभिर और खतरनाक स्थिति है इस जीवन के लिये जो स्वभाव से ही पहले ज्ञान वान था। वह अब अज्ञान का वाहक बन चुका है। जैसा की पहले लोग जीवन से भरपुर होते थे वह बहुत अधिक शिक्षीत या शब्द ज्ञान वाले नहीं होते थे। इसके बाद भी वह लोग जो आविस्कार कर चुके थे जिसका आज के युग में वैज्ञानिकों पूर्णतः ज्ञान नहीं है। उदाहरण के लिये ऐसे कइ प्रमाण मिले है जो यह सिद्ध करते है कि पहले के लोगों के पास हमारी तरह ज्ञान विज्ञान का साधन नहीं था इसके वावजुद उन लोगों ने जीवन को लम्बा जीया और विमारीयों से मुक्त रहते थे। वह एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर आते जाते थे और पहले बहुत ग्रहों पर लोग रहते थे। वह ब्रह्माण्ड की यात्रा करने में सक्षम थे। वह पृथ्वी और दूसरें ग्रहों से आत्मिक सम्बंध स्थापित कर लेते थे। वह सूर्य पर भी यात्रा करने में समर्थ थे। वह प्रत्येक वस्तु जिसे हम भौतिक वस्तु कहते है उनसे भी सम्बंध बना लेते थे और उनके अपने मन के मुताबिक ढाल लेते थे। जैसे एक पुस्पक विमान था जिसका वर्णन हमारे प्राचिन ऐतिहासिक शास्त्रों में मिलता है। वह विशेष प्रकार का विमान था जो मन की इच्छ से चलता था। उसमें कितने ही आदमी वैठ जाये फिर भी उसमें एक बैठने के लिये स्थान हमेशा खाली ही रहता था। वह आदमीयों के आधार पर अपने को बड़ा और हल्का कर सकता था। वह प्रकाश की गती से यात्रा करके एक ग्रह से दूसरे स्थान पर आ जा सकता था। पहले लोग अपने शरीर को मन के मुताबिक बड़ा और छोटा कर सकते थे। वह आकाश में उड़ सकते थे जमिन में प्रवेश कर सकते थे। मन के संकल्प मात्र से वह अपनी शरीर को किसी दूसरे शरीर के रूप में परिवर्तित कर सकते थे। जैसा की हम आज देखते है कि जो मानव जिस शरीर के साथ जन्म लेता है उसी शरीर के साथ वह मरते समय तक रहता है। जबकी पहले लोग अपनी शरीर को पक्षी के समान या किसी और प्राणी के शरीर के समान कर लेते थे और बहुत कुछ जो हम सब आज शब्द ज्ञान के चलते फिरते इनसाक्लोपिडीया के समान है फिर भी अपंग और परेशान पशु के समान जीवन जीने के लिये विवश है।

सम्बंध का मतलब हम ग़लत निकाल रहें है आज के युग में, सम्बंध का मतलब है दो अब दो नहीं रहे वह एक हो गये है। अपने मन और आत्मा के स्तर पर जिस प्रकार से पानी के दो अणु एक जीवन रूप जल की बुंद को बनाते है। जिसे को योग कहते है यह एक सम्बंध है। इस योग के आविस्कार की ज़रूरत योग ऋषि को क्यों पड़ी, इसके पिछे कारण है कि मानव अपने जीवन और ज्ञान के स्थर से निरंतर निचे गीरता जा रहा है। उसके ज्ञान के विकास के लिये, लकिन इससे मा नव का विकास नहीं हुआ उसका निरंतर हाराश ही होता रहा। आज का मानव स्वयं को भौतिक विकास के साथ समृद्ध और संपन्न करने की आकांक्षा रखता है, जैसा की उसको शिक्षीत किया गया है। यद्यपि यह अधुरी समृद्धी है क्योकि इस समृद्धी ने मानव को मानव से जोड़ने का काम नहीं किया हलांकी मानव और मानव के बिच में दूरीयाँ अवश्य बढ़ा दी है। यह योग नहीं है यह वियोग कहा जायेगा इसका मतलब यह की आज जिसे हम सम्बंध कहते है वह लोगों को एक दूसरें के साथ जोड़ने के बजाय तोड़ने का कार्य कर रहे है।

यहाँ जो पृथ्वी पर मनुष्य बनाने की प्रकृया जब से प्रारम्भ हुई है यह ग़लत है इससे मनुष्य अभी तक एक भी नहीं बन पाया यद्यपी जानवरों की संख्या में निरंतर इजाफा हो रहा है। तो सबाल यह उठता है कि आखिर सच्चा और वास्तविक मनव कैसे उत्तपन्न होगा क्या इसकी कोई संभावना है? केवल एक संभावना है वह है कि हम स्वयं मनुष्य बने हमे बनाने वले हमेशा हमसे दूसरे है वह हमें नहीं जानते है वह स्वयं को भी पुरी तरह से नहीं जानते है। उनका सम्बंध स्वयं से नहीं है तो वह हमारा सम्बंध स्वयं से कैसे करायेगे?

मैं स्वयं में स्थित हूं

अनमिवाः= नीरोग रहने का प्रयाश करो सदा स्वस्थ रहो। जब मैं कहता हूँ की मैं ही इस ब्रह्मान्ड का केद्र हूँ तो सबसे पहले एक बात का ध्यान रखना है कि मुझे केवल शरीर मत समझना शरीर का स्वामी मैं चेतन आत्मा के रूप में एक ब्रह्माण्डीय प्राण उर्जा का मुख्य श्रोत प्राण हूं। मेरा कोई-कोई रूप आकार या नाम नहीं है, मैं ही अनन्त नामों से जाना जाता हूँ।

हर वस्तु मुझसे ही शुरु होती है और मुझमे ही वह वस्तु विलिन हो जाती है। मेरा कभी ना जन्म होता है ना ही मैं कभी मरता ही हूँ। जो जन्म लेता है या मरता है वह हमारी शरीर है। जो मेरा थोड़े समय तक रहने का स्थान घर के समान है, इसको समय के साथ बदलता रहता हूँ और कभी ऐसा भी होता है कि इस शरीर के बिना भी रहता हूं। मुझे शरीर की ज़रूरत दृश्य मय जगत में रहने के लिये और कुछ विशेष कार्य करने के लिये पड़ती है। जिससे मैं उनके द्वारा अपने प्रमुख कार्यो को सिद्ध कर सकु, यदी सभी प्राणियों को सत्य का ज्ञान हो जायेगा तो सभी प्राणि इस दृश्य मय संसार और शरीर से मुक्त हो जायेगे। जिसके कारण यह जीवन रूप संसार का अन्त हो सकता है। जिसको मैं रोक कर रखता हूँ सभी प्राणियों को मोह, माया, काम, क्रोध लोभ आदी वृत्तियों में उलझा कर रखता हूं। जिसके कारण यहाँ संसार से मुक्त होना बहुत कठीन और दुस्कर है। उसी प्रकार से जैसे कि सूर्य को ठंडा करना किसी जीव के लिये मुस्किल ही नहीं असंभव है। क्योंकि यदी वह अपनी दुष्ट वृत्तियों के वशी भूत होकर ठंडा करने का प्रयाश करता है तो अपने जीवन के लिये ही भंयकरतम संकटो को खड़ा करता है। मैं यह जानता हूँ की हर प्राणी अपने आप से बहुत अधिक प्रेम करता है किसी भी किमत पर वह मरना नहीं चाहता है। इसी भाव का सबसे अधिक फायदा उठा कर दूसरे प्राणियों को गुमराह करने के लिये और उनके सामने बड़ी-बड़ी भयंकर चुनौतियों को खड़ी करके उसको परिस्कृत और नविनी करण करता हूं। मेरे द्वारा इततने बड़े-बड़े संकटो को प्राणियों के सामने खड़ी करने बाद भी कुछ ऐसे पुरष होते रहते है समय के साथ जो इस दृश्मय जगत से मुक्त हो जाते है और मुझे उपलब्ध कर लेते है। वास्तव मैं अशरिर ही हूँ शरीर से जो मैं मुख्य कार्य करता हूँ वह यह है कि शुद्ध शब्दों का उच्चारण ब्रह्मज्ञान का विस्तार करता हूँ जिससे ही ब्रह्म अर्थात मैं ज्ञान मतलब मेरी जान मेरा जीवन जो इस ब्रह्माण्ड रूपी शरीर के कारण ही है। मैं यही हूँ इसे मैं जानता हूं। जिससे निरंतर शब्द के साथ उर्जा का निस्तारण मेरें द्वारा अनन्त प्राणी रूप शरीर से होता रहता है यह सिर्फ़ प्राणीयों के द्वारा ही नहीं होता है इसके साथ यह अनन्त ग्रह, अनन्त तारें और अनन्त ब्रह्माण्ड के साथ अनन्त आकाश गंगाये भी शब्दोंच्चारण करती है। जिससे अनन्त प्रकार की उर्जये निस्कासित होती रहती है जिससे अनन्त प्रकार के परमाणु निरंतर विकसीत होते रहते है। इसके साथ अनन्त जीवन के वाहक ग्रह तारे सौर्यमंडल इत्यादि बनते और नष्ट होते रहते है। यह मेरा कार्य अनन्त काल से ऐसा ही चलता आरहा है और ऐसा ही चलता रहेगा। इसका ना कही प्रारंभ है और ना ही कहीं पर इसका अंत ही है जिसके कारण ही लोग मुझे अनन्त भी कहते है और यह कार्य निरंतर सदा से होता ऐसा ही आरहा है। कभी भी इस ब्रह्माण्ड से मानव या सम्पूर्ण जीवन का पूर्ण अन्त नहीं हूआ है। मैं हमेशा इस जीवन को आगे बढ़ाता रहता हूं। इस पृथ्वी पर जीवन के बीज को बोने से पहले मैंने मंगल आदी ग्रहों पर जीवन को पैदा कर चुका हूं। इसके अतिरीक्त भी अनन्त ग्रहों की यात्रा यह जीवन यहाँ पृथ्वी पर आने से पहले कर चुका है। जो कहते है कि जीवन प्रथम विकास यहाँ पृथ्वी पर हुआ है यह ग़लत है। जीव सिर्फ़ शरीर को ही नहीं बदलता यद्यपी वह ग्रहों को भी बदलता रहता है। समय के साथ निरंतर जब उस ग्रह का दोहन पुरी तरह हो जाता है तो मैं दूसरे ग्रहों का निर्वाण करता हूँ जिससे की यह जीवन उस ग्रह पर अपना निवास बना सके. जिस प्रकार से कोई प्राणी अपनी शरीर का त्याग करता है और पुनः नई शरीर को धारण करके अपने कर्मों के अनुसार नये जीवन के संसकारों का सर्जन करता है। ऐसा यह ग्रह और नक्षत्र आदी भी करते है यह भी अपने शरीर का त्याग करते है। पुनः नये शरीरों को धारण अपनी तपस्या और शहन शक्ति की योग्यता के अनुसार करते है इस लिये तैतिस देवता में सर्व प्रथम आठ वसु है जो जीव को हर इस्थिती में स्वयं पर बसाते है और उनका अपने जीवन के अन्त तक हर प्रकार से पालन पोषण करते है। इन्ही गुणो को धारण करके मानव भी और दूसरे जीव भी स्वयं का उद्धार करने में और स्वयं को विकसीत करके मुझ में समाहित हो जाते है।

हम ही इस दृश्य मय हजारों ब्रह्माण्डों के मुख्य केन्द्र या ब्रह्माण्डिय मानव है हमारे अन्दर ही वह अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी विद्यमान हो कर वह त्रीकाल दर्शी हर पल शांशे ले रहा है। सम्पूर्ण दृश्य अदृश्य चरा चर जगत का नियंत्रण करता है। हमारे अन्दर ही वह वीग वैंग की घटना घट रही है और हमारे अन्दर ही वह ब्लैकहोल भी विद्यामान हो कर हर पल

घट रहा है। वह हमारे द्वारा ही ब्रह्माण्डों का सर्जन कराता है और हमारें द्वारा ही ब्रह्माण्डों को नष्ट भी कराता है। वह स्वयं कुछ भी नहीं करता है वह सारा कार्य हमारे द्वारा ही पूर्ण कराता है चाहे वह कार्य किसी के विकास के लिये उत्थान के लिये हो किसी के पतन या नाश करने के लिये भी वह हमारा ही उपयोग करता है हम सब उस अदृश्य सत्ता हमारे कर्म के मात्र मोहरे के अतिरीक्त कुछ भी नहीं है। हम स्वतन्त्र नहीं है हम सब उसकी परतंत्रता में ही अपना सम्पूर्ण जीवन जीते है। यदि कोई कहे की वह हमारे कर्मो का फल देता है यह सत्य नहीं है हम जैसा कर्म करते है उसका फल भी हम स्वयं ग्रहण कर लेते है इसमें उसका कोई अधिकार नहीं है वह किसी को कभी ना ही प्रसन्न कर सकता है ना ही वह उसे दुःखी ही कर सकता है। हम मृत्यु के भयंकर निर्दय पंजों में फंस चुके है तो उसमें हमारे स्वयं के कर्म ही कारण है उसमें वह परमेश्वर कुछ भी नहीं कर सकता है, वह हमें मृत्यु के घातक खतरनाक पंजो से मुक्त नहीं कर सकता है। हमने स्वयं के सर्वनाश में ही रस लेकर बहुत अधिक परिश्रम किया है। हमारे द्वार किये जाने वले कर्म के परिणाम का ज्ञान ना होने के कारण या लापरवाही के कारण जो कर्म किये जाते है। जिसका परिणाम हमारे लिये विनाश कारक सिद्ध होता है। मान लिया कोई एक पुरुष या स्त्री है जो नियम संयम से नहीं रहते है व्यभीचार करते है शरीर का निरंतर दोहन करते है कामुक्ता पूर्ण जीवन जीते है, उनका जीवन हमेशा दुःख मय होता है वह हमेशा अपने प्रत्येक कर्म से अपने लिये नये-नये दुःखो का निरंतर सर्जन करते है। इसके उपरान्त वह कितनी ही प्रार्थना या उपासना करते रहे, इससे उन्हे कोई फयादा नहीं होता है शीवाय इनकी परेशानी और बढ़ जाती है। हमारी प्रार्थना या उपासाना हमे ताकत वर बनाते है और हमारे संकल्प मनोबल की दृढ़ इच्छा शक्ति को बढ़ाते है, जिससे हम अपनी मुसबतों से पार बाहर निकलने में समर्थ होते है। इसमे उस परमेश्वर का कोई योग दान नहीं है। परमेश्वर कभी भी किसी का ना ही पक्ष में होता है नाही वह कभी विपक्ष ही किसी के होता है। वह हमेशा निस्पक्ष होता है। वह ना किसी को जन्म ही देता है ना ही वह किसी को मारता ही है। ना ही वह किसी को अमिर बनाता है ना ही वह किसी को गरीब ही बनाता है ना ही वह किसी को विद्वान बनाता है, नाही वह किसी को मुर्ख ही बनाता है। हम सब ही अपने पूर्ण मालिक है हमने ही अपने आप को ऐसा बनाया है जैसा की हम आज है। हम स्वयं की मृत्यु के स्वयं के जीवन के स्वयं के विकास के स्वयं के पतन के सब का सब दारोमदार अपना ही है। हम सब को ग़लत बनाया गया है, हम सब गैर जीम्मेदार किस्म के है अपनी कमियों और त्रुटियों का कारण दूसरो को घोषित करते है जिससे हमें दूसरों की नजर में उंचा उठने में सहायता मिलती है और स्वयं के अहंकार को बल मिलता है। हमारा कर्म जब हमारे स्वार्थ के वशी भुत हो कर किया जाता है तो वह हमे अपने वश में कर लेता है। हमारा स्वार्थ कितना क्षुद्र है जो किसी परमाणु या अणु के समान हो सकता है। या फिर हमारा कर्म और उसका स्वार्थ इतना बड़ा हो सकता है जितना बड़ा यह ब्रह्माण्ड है। यह हमारे स्वार्थ की दो श्रेणियाँ है एक परमाणु अणु की तरह बहुत सुक्ष्म गुप्त है क्षुद्र रूप है जिसके परिणाम से हम अनभिज्ञ होते है। इसका परिणाम बहुत खतरनाक होता है ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार से परमाणु बम कार्य करता है हमें हमारे अन्दर से ही पूरी तरह से निस्त नाबुत कर देता है। वहाँ किसी वस्तु का कभी सर्जन नहीं होता है। वहाँ चारो तरफ हमेशा मृत्यु ही अपने परों को फैला कर ही रखती है और एक दूसरे प्रकार का कर्म होता है जो बहुत बिशाल उद्देश्य को ध्यान में रख कर किया जाता है। जिसे हम परमेश्वर के समान कार्य करने वाले जो सभी परमाणुओं का संग्रह यह ब्रह्माण्ड जैसा कार्य है। जो प्रकृती करती है जिसको नियंत्रित करने के लिये यह मानव प्रयाश रत है कुछ हद तक कर लिया है कुछ अभी भी बाकी है, जिसके लिये प्रयाश रत है। एक तीसरे परकार का कर्म है जिस पर हमरे भरतिय मनिषों ने बहुत जोर दीया है। वह है निस्काम कर्म करने के लिये। निस्काम करम् का मतलब है जिसके पिछे हमार व्यक्तीगत कोई स्वार्थ ना हो जो करम्म करना यहा जगत में बहुत दुर्लभ हो चुका है।

18 – मैं तुम सब में निर्दोष हूं

मा वः स्तेनः ईशत= श्तेन अर्थात चोर लुटेरें तुम्हारें स्वामी ना बनने पाये। जब मैं कहता हू की परमेश्वर का कोई योग दान नहीं है, हमारे जीवन में ऐसा इसलिये है क्योकि हम ही परमेश्वर है और हमारे जैसे ही जीतने जीवन के बिन्दु है उतने ही परमेश्वर भी है। इन सब के द्वारा जो उर्जा का विसर्जन हो रहा है उससे सिर्फ़ हमार ही जीवन ही नहीं बनता है यद्यपी हमारे अतिरीक्त जो हमारा ब्रह्माण्ड है वह भी निरंतर बढ़ रहा है। इसको हम पृथ्वी के सात घटा कर देख सकते है जैसा यह मानव है उसके अनुरुप ही पृथ्वी भी स्वयं को ढालती जा रही है। ह भी बन रहीं है यह मानव के अनुकुल बनने के लिये हर पल प्रयाश रत है। यहाँ रहने वाला मानव अपने जीवन को ले कर अत्यधिक संकट में दिखाई दे रहा है। इसका जीवन खतरे में यहा पृथ्वी पर नजर आ रहा है इस लिये यह यहा से कही और दूसरे किसी ग्रह पर अपना निवास अस्थान बनाने के लिये लगातार परिश्रम कर रहा है। यह पृथ्वी भी अब ठीक मनुष्य की तरह है इसे भी अपने अस्तित्व पर खतरा नजर आ रहा है। ऐसा ही ब्रह्माण्ड के साथ भी हो रहा है। जीतना जीवन का विकास होगा उतना ही ब्रह्माण्ड का विकास

होगा, जिसको विग वैगं के नाम से जानते है और जितना जीवन का हराश होगा उतना ही उतना ही पृथ्वी का भी नाश होगा, इसके साथ ब्रह्माण्ड का भी पतन नाश होगा। जिसको ब्लैक होल कहते है। यह विग वैग की घटना एक परीवर्तन है जो हर परमाणु में घट रही है, यह ब्लैक होल भी हर परमाणु में भी विद्य मान है। यह नया नहीं है यही जीवन और मृत्यु है। जब जीवन से भरे है तो आपका विकास हो रहा है जिस वैज्ञानिक भाषा में विग वैगं कहते है। लेकिन जब आप मृत्यु के साये को अपने चारों तरफ महशुष करते है तो यह वैज्ञानिक भाषा में ब्लैक होल है जो आपको पिघला कर आपका जो जीवन रस है उसे चुस रहा है। जो एक बार इस शरीर से मुक्त करके दूसरे शरीर के लिये तैयार कर रहा है।

इस विश्व ब्रह्माण्ड के प्रारंभ में सर्वप्रथम सबका ज्ञात सबको जानने वाला और सबका उत्पादक सब को पैदा करने वाला, सबको विस्तायुक्त विस्तार कर्ता सब को फैलाने वाला, जो सब प्रकार के सद्गुण को धारण कर्ता सब का अद्वितिय प्रकाशका सूर्य के समान तेजस्वी है। सबसे श्रेष्ठ जिसमें सभी रुची लेते है जो अलौकिक अद्भुत प्रकाशयुक्त विषयों सबसे बहुमुल्य विषय है। जिसको प्राप्त करने की योग्यता प्रत्येक मनुष्य जन्मजात धारण करता है। जिसको सबने पहले से ही प्राप्त ही कर रखा है, जिस परमेश्वर के प्रेम पूर्ण सामर्थ के वशी भूत होकर सभी आकाशगंगा, ब्रह्माण्ड, सौर्यमंडल, ग्रह आदि अपना अपनी धुरी पर निरंतर यथा स्थान निश्चित गती कर रहे है। जो ईश्वर ज्ञान का दृष्टान्त लोक और अपने व्याप्ती से सब को आच्छादित कर रहा है, वह ईश्वर मर्यादा से देखने योग्य अव्यक्त अदृश्यता के कारण जो आकाश स्थान को ग्रहण करता है।

मा अघ शंसः = पापात्मा पुरुष के विचार तुम पर शासन ना करें। जिस ब्रह्मा के ब्रह्मज्ञान को जानने के लिये प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध सब लोक दृष्टान्त के समान है। जो सर्वत्र व्यापक सबका आवरण सबका प्रकाशक और सबका सुन्दर अनुशाशन कर्ता है। जिसने सभी को उनको नियम के साथ नियमन करके सभी छात्रों को जो लोकों के समान है लोकपाल है। उनको रखता है। वहीं परमेश्वर हम सब के अन्तर्मन में अन्तर्यामी रूप में विद्यमान है जो निरंतर हम सब की हर कामना में सर्व श्रेष्ठ और उपसना करने के योग्य है। इसके अतिरीक्त कोई दूसरा पदार्थ इसके स्थान पर सेवन के योग्य करने नहीं है और जो यह अद्भुत और अलौकिक कार्य करता है वही ब्राह्मण है जिसके लिये उसका ब्रह्मज्ञान सब कुछ है, जिस ब्राह्मण के पास ब्रह्मज्ञान नहीं है वह ब्राह्मण नहीं है वह कुछ और इसके अतिरीक्त है। यह ब्रह्मज्ञान सभी मनुष्यों को संतती के रूप में नहीं मिलता है यह अनुवांसिक वंस परम्परा का सम्वाहक नहीं है। इसके लिये केवल एक मार्ग है वह है पुरषार्थ के चरम उत्कर्ष को उपलब्ध होना ही ब्राह्मज्ञान है। जो सबसे बड़ा ब्रह्मज्ञानी है वहीं सबका उत्पादक सबका माता पिता और सबका सच्चा निस्वार्थ निस्पक्ष गुरु है। वही यह सब निश्चित करता है कि कौन-सा छात्र किस प्रकार की योग्यता रखता है। उसकी योग्यता के सामर्थ के अनुरुप ही वह ब्रह्मज्ञानी पुरुष उस छात्र को उसके लिये उपयुक्त शीक्षा का ज्ञान दे कर शीक्षित करता है और उस विशेष कार्य के लिये इस भुमंडल पर नियुक्त करता है। क्योकि हर किसी के लिये हर प्रकार का विशेष ज्ञान उपलब्ध करना इस छोटे से जीवन में संभव नहीं है और ना हि हर व्यक्ती हर प्रकार का विशेष कार्य ही कर सकता है। इसके लिये कुछ विशेष व्यक्तियों का ही वह परम पुरुष निश्चित करता है। मानवों में अत्यधिक मानव लेवर किस्म के कार्य का संपादन करते है। जिस प्रकार से हर व्यक्ती ना ही किसी देश का प्रधान मंत्री बनता है ना ही राष्ट्रपती ही बनता है। ना ही हर व्यक्ती जज, चिकित्सक ना ही हर व्यक्ती वैज्ञानिक ही बनते है। यह बात अलग है कि यह संभावन सब के अन्दर है। यद्यपी यह पुरुष के परिश्रम और उसकी परिस्थिति पर भी काफी कुछ निश्चित करता है। यदि वह मानव यह अपने प्रारंभिक जीवन में एक विशेष उद्देश्य बना कर निश्चित उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करें तो अवश्यमेव वह एक दिना अपने निश्चित लक्ष्य पर पहुंच जायेगा। इसके लिये वह अपना कर्म करने के लिये बिल्कुल स्वतन्त्र है, यही इस स्वतन्त्रता का ग़लत उपयोग ही इस मानव को बहुत सारे ना करने योग्य करम करता जिसके कारण ही उसे बंधन को उपलब्ध होना पड़ता है जिसके लिये वह अपने भाग्य, किस्मत और अपने भगवान को दोष देता है और बार-बार उलाहना करता है कि परमेश्वर तुमने हमें यह क्यों नहीं दिया, मुझे ऐसा क्यो बनाया? ऐसा ही मानवों की संख्या इस भुमंडल पर सबसे अधिक है जो स्वयं से और स्वयं के कर्मो से और मिलने वाले कर्मों से अत्यधिक अतृप्त है उनका जीवन साक्षात मृत्यु के समान है कहले को वह जीवीत होते है वास्तव में उनमे जीवन जैसा कुछ भी नहीं है, वह अपने अंदर पुरी तरह से टुट चुके होते है उनके सामने हर तरफ से केवल निराश के बादल ही दिखाई देते है उनके जीवन में कोई आशा की किलण नहीं दिखाई देती है। वह अपने जीवन में वस्तव मेंकभी जीवन को अनुभव ही नहीं करते है। सदा उन्हें मृत्यु ही दिखाई देती है। इसके पिछे मुख्य कारण है कि वह जिस समाज में रहते वह समाज और वह परिवार उनको बनाता हे वह स्वयं के मालिक नहीं होते है यद्यपी वह सब दाश क समान होते है। जो वस्तु जितनी दुर्लभ या बहुमुल्य है या जितनी बड़ी है या जितनी क्षुद्र है, उसको उपलब्ध करने वाले भी उसी प्रकार के व्यक्ती होते है। बहुत कम और दुर्लभ व्यक्ती ही होते है। जीवन के चरम उत्कर्श अपने जीवन में उपलब्ध कर पाते है। जितनी क्षुद्र या छोटी वस्तु है उसको चाहने वाले भी बहुत अधीक मात्रा में उपलब्ध होते है, यह सब निम्न स्तर के व्यक्ती होते है। यहाँ किसी को मुफ्त में कोई वस्तु नहीं मिलती है हर किसी व्यक्ती को उस वस्तु की उपयुक्त किमत अवश्य चुकानी पड़ती है। जो मुफ्त में किसी वस्तु को प्राप्त कर लेते है वह उसकी उपयोगिता और

बहुमुल्यता से अन्जान ही रहते है। जैसा कि हर व्यक्ती को नहीं पता है कि सूर्य की किमत क्या है? हवा की किमत क्या है? पृथ्वी की किमत क्या है? जल की किमत क्या है? आकाश की किमत क्या? इन पांच तत्वों का मेल ह यह शरीर है या फिर वह परममेश्वर हमारें जीवन के लिये कितना बहुमूल्य है। लोग इसको भुल कर हमेंशा किसी ना किसी प्रकार से येन केन प्रकारेण केवल हर समश्या का सामाधान के रूप रूपये को देखते है और इसको ही उपलब्ध करना अपने जीवन का परम उद्देश्य समझते है। जिसके कारण वह उस वस्तु का सही उचित उपयोग नहीं कर पाते इसके विपरीत वह उसका अधिकतर दुर्प्रयोग ही करते है। इस जगत में जो अ नाम का कोई एक प्राणी है जिसको ब्रह्मज्ञान हो गया है, विज्ञान के माध्यम से उसने स्वयं के जीवन में कुछ विशेष प्रयोग करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया। जिसके माता पिता स्वयं शिव है और जिसकी माता स्वयं पार्वती है जो स्वयं साक्षात अर्धनारेश्वर है जो ना स्त्री है ना पुरुष है वह दोनों से उपर उठ चुका है। वह उस जगत में रहता है जहाँ जगत जागते हु गती करता है।

19 मैं जीवन का जीवन हूं

ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात = अपनी इन्द्रियों का केन्द्र परमेश्वर को बना के रखो। जीवन क्या है? यह इस दुनिया में बहुत बड़ा और बहुत ही जटिल विषय है, इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हमारे पास कई महान विद्वान हैं, हर किसी ने अपनी शैली में प्राचीन कवि की तरह समझाया है कि जीवन में बहुत दर्द है और पश्चिमी देशों के कुछ महान विद्वान इसके बारे में कई प्रकार के विवरण देते हैं। हालांकि मुझे लगता है कि हर जवाब पूरी तरह से उचित या संतुष्ट नहीं दते है क्योंकि कुछ जानकार और प्रबुद्ध मानव ने हमेशा कहा है कि जीवन एक रहस्यमय की तरह है। हमारे जीवन का यह अनुभव है जब हम निस्वार्थ भाव से सत्य का अनवेषण करते है। तब यह वास्तव में सत्य सिद्ध होता है कि जीवन एक महान दर्द या आपदा और विनाशकारी अज्ञात गहरे समुद्र समान है आज तक इसके आतंक से कोई भी मुक्त हो पाया है। चाहे वह राजा हो या रंक हो दोनो को ही यह जीवन अपनी तरह से प्रताणित करता है। तरह-तरह के रूप और आकार बदल कर यह हमारे जीवन की शाश्वत सच्चाई है। जब हम जीवन की संपूर्णता में जीवन की हर परिस्थिति में हर पहलु से देखते है तो इस बात पर ठहरते है कि जीवन का स्वरूप दर्द मय ही है। जीवन को आनन्द भी कहते है जीवन में सुख भी दिखाई पड़ता है लेकिन आज तक किसी को सुख मिला नहीं है यदी किसी को वह सुख मिला होता तो वह ठहर जाता अपने जीवन के सफर में और पूकार पुकार कर कहता की मैं सुखी हो गया। लेकिन ऐसा देखने में कभी नहीं आता है अपवाद में कोई एकाक कहीं दिखाई दे तो उसको हम सब पर एक सामान नहीं लागू कर सकते है। इसका मतलब यह नहीं है कि जीवन में सुख या आनन्द नहीं है इसका मतलब यह है कि जीवन जीने का ढंग ग़लत है जिसका परिणाम ही जीवन में दुःख और पिड़ा है यह प्रमाण है कि हमने ग़लत दिशा में स्वय के जीवन को लेकर स्वयं की यात्रा कर रहे है और यहाँ जीवन के बारे में जो शिक्षा दिया जा रहा है वह ग़लत है इस पुरानी शिक्ष विधी को बदलना होगा। यदी हम जीवन में सुख और आनन्द की कामना करते है जीवन का सुख किसी वस्तु के आश्रित नहीं है। इसके लिये क्रान्तीकारी मार्ग का अनुसरण करना होगा। यह एक क्रान्तीकारी के लिये संभव है, लोगों को यह वेवश और वेसहारा लाचार अपंग बनाने पर जोर जिया जा जारहा है। लोगों के पास आंखे है लेकिन वह मुख्य तत्व को देखने में असमर्थ है। यह पत्थर की आंखें के पत्थर को ही देखने में समर्थ है यह अपार्दृशी नहीं किसी वस्तु के आऱ पार देखने में समर्थ नहीं है। इनको ऐसा बनाने के लिये ही लम्बे काल से प्रशिक्षीत किया जा रहा है जिसमें हमारी शिक्षा का सबसे बड़ा योग दान है।

यह सत्य है फिर यह सत्य सब पर प्रकाशित क्यों नहीं होता है और इसके पिछ कारण क्या है? यह सत्य है लेकिन हम इसको स्विकार नहीं कर पाते हमें इस प्रकार से संसाकारित किया जीता है कि सुख आने वाला है दुःख के बाद जबकि सत्य यह है कि वह सुख कभी आता नहीं है वह भवीष्य में होने वाली एक घटना है जो जीवन में कभी घटती नहीं है, यह पूर्णतः काल्पनिक है। जो दुःख स्वप्न को और ताकत वर शक्ति शाली बनाता है। हमारे सगे सम्बंधी परिवार माता पिता गुरु आदी हमें ग़लत शिक्षा देते है। हमें आक्रमण कारी बनाते है हममें विद्वेश की भावन भरते है, हमें गरीब बनाते है हमें अमिर बनने के लिये प्रोत्साहित उत्साहित करते है और कहते है संघर्ष करो तुम अवश्य तुम्हारी विजय होगी। जबकी सत्य यह है कि उनके संघर्ष ने स्वयं उनको कभी सफल नहीं किया है। इसलिये वह चाहते है कि तुम अपने जीवनको लगा कर उनकी कामना के लिये स्वयं को मिटा उनके स्वप्नो को सिद्ध करों। वह तुम्हे अपने लिये उपयोग करना चाहते है उनको तुमसे या तुम्हारे अस्तित्व से कोई लेना देने नहीं है। इस लिये तो इस जगत में कोई बाप अपने बेटे से खश नीं है ना कोई माँ ही अपनी बेटी से खुशी है। ऐसा ही वेटों और वेटियों के साथ भी है। जो यह दिखाने का प्रयाश करते है कि वह अपने वेटे और वेटीयों से बहुत खुश है तो यह समझ लेना की यह सब भ्रष्ट और झुझे लोग है। यह उसी प्रकार से है जैसे मुह में

राम और बगल में छुरी वह तुम्हे लुटने तुम्हे धुर्त झुठा बनाने के प्रयाश में लगे है उनको इसी में रस आता है। वह तुम्हारे सुख को आनन्द को किसी सर्त पर स्विकारना नहीं चाहते है। वह तुम रुची ले रहे है कि तुम उनके जैसे बनावटी बनो जिसमें उनको फायदा है। जिसे शभ्य शिक्षीत समाज और आधुनिक परिवार कहते है। जिसमें हर प्रकार की धुर्तता जो उन्होंने सभी हिन्सक जानवरों सिख कर अपने जीवन में धारण कर लिया है और अपने मानव जीवन के मुख्य परमतत्व परमेश्वर को त्याग कर के तुम्हे भी वह-सी प्रकार का चाहते है। जिस प्रकार शराबीयों के ब्व में एक गैर शराबी उन शराबियों के लिये शत्रु दिखाई देता है। जैसे सभी विद्वानों को मुर्खो से शत्रुता है। जैसे सूर्य को अंधकार से शत्रुता है। जैसे पानी को आग से खतरा है। जैसे मिट्टी के बर्तन को लोहे के बर्तन से शत्रुता है।

यह जीवन क्रान्ती का मार्ग उन पुरुषों के लिये है जो पुरुषार्थ को अपना अस्त्र बनाने वाला उद्यमी पुरुष के समान प्रयत्न शिल और शीघ्र वेग के साथ अपने शत्रु पर हमला करने वाले पराक्रमी योद्धा के समान है। शत्रु दो प्रकार के है एक आन्तरिक अज्ञानता को धारण करने वाला अज्ञान है और दूसरें बाहरी संसारीक शत्रु है, जो राग द्वेश को धारण करने वाले है। जो पराक्रमी योद्धा अपने शत्रु का नाश शिघ्र करता है, जिस प्रकार से अन्न को भुनने वाला मनुष्य अन्न को शिध्रता से भुनता है। उसी प्रकार पराक्रमी योद्धा अपने शत्रुओं की सेना को शिघ्रता से भुनता है। जिस प्रकार से आग पानी को वास्प में पलक झपकते ही बदल देती है। जिस प्रकार से काला रंग हर रंग पर बहुत जल्दी चढ़ जाता है ठीक इसी प्रकार से अपने विरोधी ताकतों को अपने वश में कर लेते है। जो ऐसा नहीं कर पाता है उसे फिर वह उन अपने शत्रुओं को सम्हलने का समय देता है जिससे उभरना समय के साथ मुस्किल और कठीन हो जाता है। जैसे जब हमारी इन्द्रियों में शक्ति होती है तभी उनको नियंत्रित करके अपने जीवन उद्देश्य को उपलब्ध कर लेते है। जब इन्द्रियाँ कमजोर हो जाती है और स्वयं के नियंत्रण करना असंभव हो जाता है। इस लिये कहा गया है कि जीवन के प्रारम्भ में ही जल्दी-जल्दी अपनी त्रुटियों को जीवन से दूर करके स्वयं परिपूर्ण करों और सोम रस का पान करो अर्थात जीवन रस के परम आनन्द का भोग करो, अर्थात सौम्य गुण वाले पेय शक्ति को बढ़ाने वाली परम दैविय औषधियों का सेवन करों है। क्योंकि वह परम तत्व एक रसायन ही है। तदुपरान्त हर्षित और उत्साहित होकर अपनी दुष्ट वृत्तियाँ जो शत्रु के समान है, उनको परास्थ करके इनसे हमेशा के लिये मुक्त हो जाओ.

20 - मैं अनन्त और अन्तर्यामी हूं

बह्नी = एक से अनेक बनो आत्मकेन्द्रित मत बनो। हे मनुष्यों जैसे एक अकेला अणु जो ऋतु के समान शास्वत शोभायमान प्रकट हो रहा है। जो निरंतर गति कर रहा है घोड़े के समान विशेष कर रूपादि का भेद पैदा करने वाला है। जो दो प्रकार के नियमों को बनाने वाला है। जो हमारें अंगों को ऋतु सम्बंधी पदार्थों को अनुकुल बनाने वला है, अग्नि के माध्यम से चेतना को शुद्ध और उसको नियम में करने वाला है। एक ईश्वर दूसरा प्रकृती है जिस तरह से ईश्वर जीव प्रकृती है इसी तरह से ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान है। जो एक परमाणु में तीन अणुओं की तरह है। सर्व प्रथम हमारी चेतना है जो हमारे शर में सर्वप्रथम उपस्थित होती है, वही से यह हमारे सारे शरीर को एक पीण्ड के रूप में सभी अंगों का देखभाल करती है। इसमें इसके दो सहायक है एक परमेश्वर दूसरा प्रकृती है। जैसा की मंत्रों में आता है कि यह मानव शरीर एक प्रकृती रूपी वृक्ष की तरह है जिसमें दो प्रकार से सुवर्ण सुन्दर पक्षी रहते है एक तो स्वयं की चेतना हा जो शरीर मन और इन्द्रियों से एकात्म अस्थापित करके संसारीक विषयों का निरंतर भोग करती है जिसका पाप पुण्य आत्मा को भोगना पड़ता है जब तक वह शरीर में निवास करती है। दूसरा पक्षी स्वयं परमेश्वर है जो आत्मा रुपी पक्षी के कर्मों का साक्षात्कार करता है और उसके किये कर्मों का उसको फल दे कर प्रसन्न और प्रताणित भी करता है। जब आत्मा को सांसारिक विषयों का ज्ञान हो जाता है कि इसमें शिवाय दुःख के कुछ नहीं है तो वह विषयों का त्याग करके परमेश्वर में अपना चित्त लगाता है जिससे परमेश्वर के गुण उस चेतना में भी उतरने लगते है जैसे लोहा आग के सम्पर्क करने से आग की गर्मी को प्राप्त करता है उसी प्रकार से आत्मा परमात्मा के गुणों को प्राप्त करता है। जिससे वह शरीर रूपी संसार से मुक्त होने लगता है। जब तक वह परमेश्वर के सान्निध्य में रहता है तब तक वह आनन्दित रहता है और जब उसके पुण्य कर्म क्षीण हो जाते है तो वह पुनः श्रेष्ठ मानव के समृद्ध परिवार में जन्म लेता है।

अब सुनो जो जीवन में परम आनन्द पाने का और सत्य को प्राप्त करने का नीयम है। जो अपने बल को बढ़ाने वाला है जिसने अपनी त्रुटियों को दूर करना जान लिया है और जो पुरु सद्गुणों को धारण करने वाला है। ऐसा पुरष ही हमेंशा दूसरों को उत्तम उपदेश कर सकता है। जो अपने बल शक्ति सामर्थ को धटाने वाला है वह बुरे और निकृष्ट विचारों

की प्रेरणा से अपने मन को दुषीत करता है। ऐसे व्यक्ती पापी और दुष्ट वृत्तियो वाले जो जन है उनको पकड़ कर बन्धन में रखना चाहिये। अर्थात कड़े अनुशासन में निरंतर उस पर नजर रखनी चाहिये, उनके लिये यथा योग्य दण्ड की व्यवस्था भी देने की समाज में होनी चाहिये। जो वृत्तिया मन का नाश करती और उसे बेकार बना कर के नष्ट भ्रष्ट कर देती है, उसका संहार या हत्या करना योग्य है। उस ग्रन्थी को जो बार–बार पिड़ा और क्लेश का कारण बनता है उसे ऐसे ही काट देना चाहिये। जैसे कुल्हाड़ी से वृक्षों का काटते है।

जो घमंडी और अहंकारी मनुष्य अपने आप को ही सर्वोपरी सबसे महान मानता है, इतना ही नहीं हम जो ज्ञान का संग्रह करते है, उसकी भी वह निन्दा करता है। उसके सभी कर्म उसके लिये कष्टप्रद होते है। क्योकि जो सत्य ज्ञान का विरोध करता है उसको दिव्य लोग जो ज्ञान का है, उसे बहुत प्रकार का कष्ट देता है। जिस प्रकार घोड़ा अपना पांव जब उठाता है तो वह अपने प्रापतव्य स्थान को प्राप्त करने के बाद ही रुकता है। उसी प्रकार इन सब विपत्तियों के मुख्य श्रोत को देख कर ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान के माध्यम से उन मुख्य कारण के श्रोतों को अपने में से अलग कर देना चाहिये। हर प्रकार की जीवन की कलह और क्लेश में अपनी विजय निश्चत हो ऐसी अपनी तैयारी हमेंशा करनी चाहिए और हर एक जीवन के युद्ध संग्राम में जाग्रत रहते हुए विजय प्राप्त करने से ही जीवन की सब पिड़ायें हट सकती है।

विश्वव्यापक पुरष जो अपनी दिव्य शक्तियों के द्वारा तथा विश्वम्भर इश्वर अपनी पोषण शक्तियों के द्वारा हमेंशा मेरी रक्षा करता है। मैं अपने आपको उसकी रक्षा में समर्पित करता हू क्योकि परमेश्वर सामर्थ पराक्रम, बल, जीवन, श्रवण, दर्शन और परिपालन इन शक्तियों से युक्त है। जो वैरी, शत्रु, कंजुस, खुन चुस और आसुरी वृत्ती वाले इनसे बचने की शक्ति तेरे अन्दर है। यह शक्ति मुझमें स्थिर कर, मैं अपने आपकोतेरे लिये अर्पण करता हूं। यह मनुष्य परमात्मा के द्वारा बनाया गया है और गुरुओं के द्वारा शिक्षीत किया गया है। वीरों के द्वारा उत्साहित किया गया है इस लिये यह शुर वीर योद्धा बन कर हमारे अन्दर आया है और सभी कार्य करता है मात्री भूमी की उपासना करने वाला यह वीर भुख और प्यास कसे कभी कष्ट को प्राप्त ना है। जो ज्ञानी पुरुष अपने मन और आखों से बद्ध स्थित में रहते हुए, सभी प्राणियों को अनुकम्पा की दृष्टी से देखते है। उनको ही विश्व का निर्माण करने वाला और प्रजावों में रमने वाले है उनको ही प्रकाश मय देव सबसे पहले मुक्त करता है। जो ज्ञानी पुरुष सब शरीर में संचार करने वाले प्राण को सब अंगों और अवययों से इकट्ठा करके अपने अधिकार में लाते है। वे ही ज्ञानी पुरुष शरीर से सुदृढ़ होते है। वे ही गमन करते हुए सीधे दिव्य मार्ग से स्वर्ग को जाते है और प्रकाश का स्थान प्राप्त करते है और जो अन्न खाते हुये भी श्रेष्ठ कर्तव्यों को नहीं करते है, जिसके कारण उनके वुद्धियों में रहने वाली अत्मा रूपी अग्नि बड़ा पश्चाताप करती है और दुःखों को उपलब्ध करती है। उनके जो दोष है वह सुधर जाये और विश्वकर्ता परमेश्वर की कृपा से वे हमारे सत्त कर्मो में सम्लित हो। इस जगत में अपना संरक्षण मनुष्य को स्वयं करना चाहिए यह बात पुकार–पुकार कर सभी श्रेष्ठ और आप्त पुरुष करते है। हे मनुष्य तुम अग्निवत तेजस्वी बनो औरअपना प्रकाश जगत में फैलावो, यह तभी संभव होगा जब ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान को धारण करने में सक्षम होगे। हे मनुष्यों! जो वेद वाणी को धारण करने वाला विद्वान पंडित नाश रहित दिव्य ज्ञान को विषेश रूप से अपनी वुद्धी में धारण करता है, वही मुक्ती का श्रेष्ठ साधन के बारे में और उस नित्य चेतन ब्रह्म का शिघ्र गुण कर्म स्वभावो के सहित उपदेश करता है। औऱ जो इस ब्रह्मज्ञान में कल्याण कि भावना के हितार्थ स्थित जानने योग्य तीन उत्पत्ती, स्थिती, प्रलय, भुत, भविष्य, वर्तमान काल है। उनको अच्छी प्रकार से जानता है। वही पिता स्वरूप सर्वरक्षक परमेश्वर का ज्ञान देने का आस्तिक्ता से रक्षक बनता है।

दयुलोक, पृथिवीलोक, दिन, रात्री, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ब्रह्मज्ञानी, योद्धा, सत्य, अनृत, भुत भविष्य आदि सब किसी से भा डरते नहीं है इसी लिये यह विनाश कभी प्राप्त नहीं होते है। इससे कैवल्य ज्ञान मिलता है कि हम निर्भय वृत्ति से रह कर ही अपने विनाश से बचने की संभावन है। अतः हे प्राण तू इस शरीर में निर्भय वृत्ती के साथ रह और अप मृत्यु के भय को दूर कर।

जिस प्रकार से यह जगत जो जागते हुए निरंतर गती कर रहा है। अपनी विविधता को त्याग कर एक रुपपता को धारण करता है और जिस परम तत्व का निवास हृदय में है। उस परम तत्व को मानव भाव से ही अपने हृदय में साक्षात देखता है, इस प्रकृती ने उसी एक आत्मा की विविध शक्तियों को निचोड़ कर उत्पन्न होने वाले विविध जगत का निर्माण किया है।

इसलिये आत्मज्ञानी मनुष्य सदा उस आत्मा की ही गुण गान करते है। जिस प्रकार से अपने हृदय में उपस्थित उस परम अमृत तत्व के परम धाम का वर्णन केवल आत्मज्ञानी संयमी वक्ता ही कर सकता है। जिसके तीन पाद है ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान हृदय में गुप्त है जो उनको जानता है, वही ब्रह्मज्ञानी होता है। वहीं हम सब का पिता, जन्म दाता और भाई के

समान है। वही सभी प्राणियों को सभी अवस्थाओं में यथावत जानता है। वह केवल अकेला ही एक है उसी के अनेक अग्नि आदि सम्पूर्ण अन्य देवों के नाम प्राप्त होते है। अर्थात उसी को दिये जाते है, जिज्ञासु जन उसी के विषय में बारम्बार प्रश्न पुछते है और अन्त में उसी को प्राप्त होते है।

पृथ्वी सूर्य समेत अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर जो अनन्त पदार्थ है उन सब का निरीक्षण करने के बाद पता लगता है कि अटल शाश्वत नियमों का पहला प्रवर्तक एक ही परमात्मा है। इसलिये मैं उसी परमात्मा की प्रार्थना और उपासना करता हूं। जिस प्रका वक्ता में वाणी विद्यमान रहती है, उसी प्रका जग के सभी पदार्थों में अथवा सभी प्राणियों में उपस्थित हो कर सबका धारण पालन पोषण कर्ता के रूप में एक आत्म रहता है। उसको अग्नि भी कहते है, जिस प्रकार अग्नि लकड़ी में गुप्त रूप से विद्यमान रहती है, उसी प्रकार से वह परमेश्वर गुप्त रूप से सभी पदार्थो में अदृश्य हो कर व्यापता है।

जिस एक परमेश्वर में अग्नि, वायु, सूर्यादि देव समान रीति से आश्रित है और जिसकी अमृत मई शक्ति सम्पूर्ण उक्त देवों में कार्य कर रही है। वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक काल जई सत्य है। उसी का साक्षात्कार करने के लिये मैने सब वस्तु का निरीक्षण किया। जिसके पश्चात मैने पाया की वह सबके अन्दर एक सूत्र की तरह फैला हुआ है जिस तरह से एक माला में फुल कई प्रकार के होते है यद्यपी उनको एक साथ जोड़ने वाला तागा एक ही है। इसको मैने अनुभव किया, इसके साथ जीवन की अनन्त कलायें भी है। इन सब का निवस स्थान मध्य लोक अन्तरीक्ष है, जहाँ यह सब शक्तियाँ प्रकट होती है और वहीं पर यह अदृश्य भी हो जाती है।

21 मैं ज्ञानियों का ब्रह्मज्ञान हूं।

यज्ञमानस्य पशुन पाहिं = काम क्रोधादि वाशनाओं पर नियंत्रण बना के रखों। जिस प्रकार से यह ईख नामक वनस्पत्ति स्वभाव से मधुर मीठी है, उसका लगाने वाला और उखाड़ने वाला भी मधुरता की भावना से ही उसको लगाता और उखाड़ता है। जिस प्रकार यह वनस्पत्ति परमात्मा से यह मिठास अपने साथ ले कर आती है। उसी प्रकार से हम सब भी अपने जीवन में परमात्मा से मिठास और मधुरता को प्राप्त कर के अपने जीवन को मीठा और मधुर बनाये। मेरी जीभ्भा के मुख्य भाग में मधुरता रहे, जीभ्भा के अग्र भाग में और जीभ्भा के मध्य भाग में भी मधुरता हमेंशा बनी रहे। मेरे कर्म में मधुरता रहे, मेरा चित्त मधुर विचारों का ही चिन्तन और मनन हमेशा करता रहे। मेरा चाल चलन हमेशा मधुर और मिठा हो, मेरा आना जाना मिठा हो, मेरे इसारे और भाव तथा मेरें शब्द भी मीठे दूसरे को सुख देने वाले हो। ऐसा होने से मैं अन्दर बाहर से मिठास की मुर्ती बनुगां। मैं शहद से भी मिठा बनता हू मैं मिठाई से भी मिठा बनता हूं, इस प्रकार जीस प्रकार से मधुर फल वाली शाखा को पक्षी प्रेम करते है तू भी मुझ से प्रेम कर। कोई किसी का द्वेष ना करें इस उद्देश्य से व्यापक मधुर विचारों की-की चार दिवारी चारों ओर बनाता हूँ जिससे इस चार दिवारी में सब ओर मधुरता ही बढ़े सब एक दूसरे से हमेंशा प्रेम करें और विद्वेष से कोई किसी से विमुख ना हो।

जो विद्युत के समान है जिस तरह से बल्ब फ्युज होता है। मगर विद्युत निश्चित रहती है। उसी प्रकार से हमारी शरीर बल्ब के समान फ्युज होती है मगर जो इसकी चेतना विद्युत के समान है वह हमेंशा उपस्थित रहती है। यह एक बात निश्चित जान ले कि मेरे आत्म मन जो भी तुम्हे मिलता है इसको तुमने बहुत परिश्रम से कमाया है, मुफ्त में तुम्हे यहाँ कुछ भी नहीं मिलता है। कांटों के समान पिड़ा देने वाले अथाह दुःख, ताप, संस्कार या फिर फुलों के समान हल्के सुख और आनन्द देने वाले परिणाम गुण संस्कार यहीं दो कोटि हैं। किसी भी मनुष्य को दोनो कभी साथ में नहीं मिलते यह प्रकाश और अंधकार की आते जाते रहते है। कोई फुलों के लालाइत है तो कोई काटों से भागना चाहता है।

कभी भी इनको देख कर भागना मत इनको भोगना जो भी हो सुख या दुःख तुम्हारे हिस्सें में जो भी आये यह एक कषौटी तुम्हारे धैर्य के असली परीक्षा की। जो दोनों को सहने के लिए तैयार है परमेश्वर का पुरुष्कार मान कर और अपने कर्मों का फल समझ कर, वहीं जीवन का सच्चा सुख पाता है। जिसने स्वयंको पत्थर के समान दृढ़ और मजबुत और फौलाद जैसा स्वयं को बना लिया है। यह जीवन उसी को प्रसन्न करता है जिसने एक-एक कदम मृत्यु को अपने सामर्थ से पिछे धकेल देता है।

ब्रह्म जो विद्युत से सुक्ष्म विद्युत के समान है। जो अपनी वाणी से ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ती करता है और अपनी इसी वाणी से दुष्ट व़्त्तियों वालों जीवों को संतप्त करता है। जिस प्रकार से आकाशिय विजली की मात्र भयंकर आवाज को सुन कर कितने प्राणियों का हृदय भय व्याप्त हो जाता और वह कापंने लगता है। उसी प्रकार वह परमेश्वर मानव मन में भय, लज्जा, शोक, मातम जैसी वेदनाओं आदि के भावों को उत्पन्न कर के उनको ग़लत कार्यों को करने से निरंतर रोकता है। जो सज्जनो के आदर सत्कार नमस्कार के योग्य है। जो हमारें लिये बभिन्न प्रकार के सुख और ऐश्वर्यों को प्रकट करता है। जिसको प्राप्त करने के लिये जो सज्जन विद्वान पुरुष है वह अपने जीवन में संयम को धारण करके उसको प्राप्त करने के लिये निरंतर उसकी उपासना प्रार्थना स्तुती करते है। उसको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूं।

मेरे हृदय के मन मीत तुम किसी भी समय अपने आप को स्वयं से ताकत वर किसी को मत समझना ना ही तुम किसी को अपने से कमजोर ही समझने का भुल पालना। जो जीवन के इस भाव को जानता है और समझता है। जो नियमीत इसका अभ्यास करता है। जीवन एक निश्चित धुरी पर काम करता है। जिस प्रकार से दीपक का प्रकाश है उसके पिछे एक विज्ञान है जिस प्रकार विद्युत का एक सिद्धान्त है। विद्युत दिखाइ नहीं देती है यद्यपी उसके क्रिया शक्ति का सही उपयोग करके उसको सिद्ध किया जा सकता है। जिस दिन भी मानव को यह समझ में आ जायेगा कि यह ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान एक शाश्वत सत्य है उसी दीन यह मानव मृत्यु से मुक्त हो जायेगा, सम्पूर्ण मानवता और यह जीवन स्वर्ग की स्थापना यही भुमंडल पर ही कर देगा और सभी को अमृत तत्व उपलब्ध होगा। जैसा की मंत्र कहता है कि अमृत तत्व मनुष्यों के लिये ही है। वह मनुष्य कैसे है जो अमृत तत्व को उपलब्ध होते है? तीन प्रकार के मुख्य कष्ट, बन्धन या दुःख माना गया है। जिनसे मुक्त होने के लिये इस त्रयी विद्या वेद का ज्ञान होता है, अर्थात ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान का जिसको मुक्ती का साधन के रूप में विद्वान जन प्रकट करते है।

ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान एक परमाणु के तीन अणु के समान है। इसको समय के साथ सबने अपनी-अपनी तरह से परिभाषित किया है। इसका मुख्य श्रोत प्राचिन वेद है और इन्ही को समझाने के लिये परमेश्वर ने वेदों की रचना की है। जैसा कि ऋषियों की मान्यता है कि यह ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान अद्भुत सामर्थ वान है। इनके लिये ही शब्दों को ब्रह्म कहा गया है, वेदों में ज्ञान को तीन भागों में विभाजित किया गया है। पहला ज्ञान जो पशुओं को मिलता है किसी के प्रेरण से, जिसे इड़ा कहते है। दूसरा ज्ञान जो शाश्त्रों और विद्वानों से मिलता है, जिसको सरस्वती कहते है। तीसरा जो सबसे श्रेष्ट ज्ञान है उसे मही कहते है। इसलिये वेदों के गुरु मंत्र गायत्री में मही रुपी ज्ञान की कामना की गयी है। जिसको हम सिधा परमेश्वर के साक्षात्कार ही प्राप्त कर सकते है। वेदों में तीन प्रकार का ज्ञान है जीसको त्रयी विद्या कहते है। ज्ञान, कर्म, उफासना। यहीं तीन सत्ताये है सर्व प्रथम प्रकृती दूसरी जीव तीसरी सत्ता परमेश्वर की है। ईश्वर ज्ञान मय है जीव विज्ञान मय है और प्रकृती ब्रह्मज्ञान मय है। इसी प्रकार से तीन प्रकार की दूरी भी होती है पहली दूरी ज्ञान की दूरी है, दूसरी समय की दूरी, तीसरी धन की दूरी। ईश्वर को प्राप्त करने में सबसे बड़ी दूरी ज्ञान की दूरी बताई गई है। इसी तीन तत्व को भौतिक वैज्ञानिक इलेक्ट्रान, न्युट्रान, प्राट्रान के नाम से पुकारते है। इन तीन तत्वों के रहस्य और इनका कितने प्रकार का रूप है वह आज तक पूरी तरह से व्यक्त नहीं किया जा सका है। मुख्य रूप से तीन प्रकार के दुःख भी है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक दुःख, यह तीन का आकड़ा अद्भुत है। इन तीन प्रकार के दुःखों से मुक्त होने के लिये केवल एक मार्ग है, जिसे पुरुषार्थ कहते है। जिस प्रकार से अन्न एक है लेकिन जब यह हमारे शरीर में जाता है तो इससे सात धातुयें बनती है। सबसे पहले रस बनता है, फिर रस से खुन बनता है, खुन से मान्स बनता है, मान्स से मज्जा बनता है, मज्जा से मेद बनता है, मेद से हड्डी बनती है और हड्डी से विर्य बनता है जिससे किसी मानव समेत किसी भी प्राणी का शरीर बनती है। शरीर का सम्बंध भौतीक ज्ञान से है यह एक यन्त्र की तरह है, मन का सम्बंध विज्ञान से है जिस पर नियंत्रित करने के लिये ही मंत्रों को इजात किया गया है। यह मंत्र जब मन के द्वारा बार-बार स्मरण किये जाते है तो उससे एक प्रकार का कंपन पैदा होता है। जिससे मन को निकृष्ट विषय से हटा कर श्रेष्ठ विषय परमेश्वर में तल्लिन किया जाता है। आत्मा का सम्बंध ब्रह्मज्ञान से है, जिसके लिये पंतजली अष्टांग योग का निर्धारण करते है। इस अष्टांग योग में दो अंग है एक बाहरी है जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार है और अष्टांग योग के तीन अंत रंग है जिसे धारणा, ध्यान, समाधि कहते है। यह जो धारणा, ध्यान, समाधि है इसी को मैं ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान कहता हू। यह अन्तर्यात्रा के प्रथम अलौकि सोपान है। मन, वचन, कर्म अर्थात शरीर को ज्ञान से समझ कर विवेक से धारण करना है, मन से मनन करना है सत्य का अर्थात मंत्रों का स्मरण करना है। जिससे आत्मा स्वयं की समस्यायों का समाधान करने के लिये समाधि को उपलब्ध कर सके.

ईश्वर अर्थात इसमें जो ऐश्वर्य है या फिर इसमें जो स्वर है, स्वर को भी तीन भागों में बिभक्त किया गया है ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। जीव भी तीन प्रकार की वृत्तियों वाला है जिसके सात्विक, राजसिक, तामसिक कहा गया है। मनुष्य शरीर पांच तत्वो से बनी है (क्षीत जल पावक गगन समिरा पंच तत्व से बना शरीरा) छठा मन है सातवा आत्मा है। हर परमाणु में यह मुख्य

तीन तत्व है जिसे हम ईश्वर, जीव, प्रकृती कहते है। एक परमाणु के पहले तीन अणु है यह अब यह एक-एक सात कणों के रूप में हो गये, पहले एक अणु का जिससे अन्न बनता है और अन्न से विर्य बनता है। दूसरे अणु के सात कणों से प्रकृती के पांच भुत बनते है छठां आत्मा सातवा परमात्मा बनता है। तीसरे अंतीम अणु के सात हिस्सों से सात ज्ञान के ऋषि बनते है। जो सात ज्ञानेन्द्रियों के रूप में है पांच ज्ञानेद्रिय क्रमशः आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, आत्मा और परमात्मा यह मुख्य एक्किस विभाग परमाणु के है।

इस एक परमाणु तत्व को अनेक नामों से जानते है। जैसा की वेद कहता है (एकं सद्विविप्रा वदन्ती) इन परमाणुओ के योग से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बन रहा है और इसमें विद्यमान हर वस्तु का अंतिम इकाई परमाणु ही है। जैसे वैदिक भाषा में इन्द्र अर्थात इन्द्रियों का स्वामी जो इस मानव शरीर में ही रहती है। पांच कर्म इन्द्रियाँ है पांच ज्ञान इन्द्रिया है ग्यारहवां मन है। यह आत्मा के वश में अर्थात इन्द्र का इनके उपर अधिकार है। यह सब इन्द्रिया आत्मा की सहगामी है मित्र तन्मात्रायें के साथ वरुण अर्थात जल इसके भी सात रूप है अग्नि भी अपने सांत रूपों में है और यह दिव्य सुवर्ण चमकने वाले पदार्थ के समान गरुत्मान जो अपना कार्य आत्मा और मन के साथ मिल कर अंधकार में करते है। यम अर्थातत जो मृत्यु का देवता यमराज है। चेतना जो कभी मरती नहीं जो मृत्युलोक पर ही अपना राज्य करता है। मात रिस्वा अर्थात सब का जन्म दाता, मात रिस्वा माता के समान जो सारे रसों की माता है। रस भी कई प्रकार के होते है जिसको हम सद् गुणो के नाम से भी जानते है। जो सारे खजाने का मुख्य श्रोत है उसे मनुष्य कहते है। जो इस ब्रह्माण्ड का स्वामी है, मनुष्यों में भी चार प्रकार के मनुष्य होते है। प्रथम कोटी के मनुष्यों को ब्राह्मण कहते है जिसके जिम्मे ब्रह्माण्ड की रक्षा का दाइत्व दिया गया है। जिसको ब्रह्मज्ञान हो गया है जो ब्रह्म को जानता है और जिसके लिये यह आवश्यक है कि वह ब्रह्म का उपदेश दे कर लोगों में दिव्य ज्ञान का प्रसार निरंतर करता रहें। वही इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्म का दान करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सहायता के साथ पालन पोषण संहार करता है। अर्थात यह ब्राह्मण जो इस ब्रह्माण्ड में मनुष्यों में सर्वोपरि उच्य कोटी का मनुष्य है। जिनके कर्मों पर ही इस ब्रह्माण्ड को सुरक्षित रखने की गम्भिर जीम्मेदारी है। वह यदि अपनी जीम्मे दारियों का उचित तरिके से वहन नहीं कर सके तो यह नष्ट भी हो सकता है और इसका दण्ड उन ब्रह्मणों को ही भोगना पड़ेगा। दूसरें कोटी के मनुष्य को क्षत्रीय कहते है अर्थात जो छात्र शक्तीी है जो अमृत रूपी छाया के समान है जो क्षेत्रों अर्थात जो सारी जमीन का पृथिवी के रक्षक है। तीसरे कोटी का मनुष्य व्यापारी है जिसे वैश्य कहते जिसके जिम्मे सम्पूर्ण भुमंडल के प्राणियों का भोजन उफलब्ध कराने की जीम्मे दारी दी गइ है और एक दूसरे के विच व्यापार लेन देन काराय सम्पन्न करने के लिये जिम्मे दार है। चौथी कोटी का मनुष्य शुद्र कहा गया है जो सबसे अधिक सहनशिल है पृथिवी के समान है जो सबकी सेवा करता है सबके कार्य भार का वहन करता है। जो मुर्ख है जिसका प्रमुख गुण मुर्खता है इसी गुण को वह धारण करके वह स्वयं को इस शरीर रूपी संसार से मुक्त कर लेता है और परमेश्वर को उपलब्ध हो जाता है। वह सब पर अधिकार कर लेता है क्योकि वह सब का कार्य करता है। बहुत थोड़ा कर लेकर जिस प्रकार से यह पृथिवी सम्पूर्ण मानव जाती समेत सभी प्राणियों का बहुत प्रकार का उपकार करती है और बदले में वह उन सब से बहुत थोड़ा कर के रूप में उनके सद् गुणों को ग्रहण कर लेती है। यही कार्य ब्रह्माण्ड भी करता है अर्थात ब्राह्मण से उसके सद्गुण और तपस्या का फल ले लेता है। जो इसके जीने के लिये जीवन उर्जा खाद्य के समान है जिसको ही हम यहाँ पर ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान कहते है। इसको दार्शीनिक एक शब्द में संयम कहते है, जो सभी प्रकार की सिद्धियों का मुख्य श्रोत है। संयम को ही धारणा ध्यान समाधि कहा गया है इसी को अष्टांग योग का अंतरंग कहा गया है।

ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान एक परमाणु के समान है जिस प्रकार एक परमाणु में तिन अणु होते है। उसी प्रकार से एक अणु में सात कण होते है। इस प्रकार से कुल एक्सिस कण मिल कर ही इस श्रृष्टी की रचना करते है। इस श्रृष्टी में हम सब मानव है और हम सब मानव की शरीर है जो एक प्रकार परमाणुओं से मिल कर ही बनी है। परमाणुओं से ही इस जगत का सारी वस्तु बनी है। उसमे सुन्दर ताज महल भी है दिल्ली का लाल किला भी है अमेरिका ह्वाइट हाउस भी इन्ही परमाणुओं से मील कर बना है। कार, बाइक, प्लेन, ट्रेन, कम्प्युटर, ग्रह, उपग्रह, पृथिवी, सूर्य, ब्रह्माण्ड सब कुछ इसी परमाणुओं से मिल कर ही बना है। यह परमाणु विद्युत उर्जा से बना है और यह विद्युत उर्जा ध्वनी उर्जा शब्दों की शक्ति से बना है। इस प्रकार से यह विश्व ब्रह्माण्ड का मुख्य श्रोत यह शब्द ही है इसी लिये शब्द को ब्रह्म कहते है। इस परमाणु को जब तोण दिया जाता है तो यह परमाणु बमा बन जाता है। जो इस पृथिवी को लिये एक बहुत बड़ा अभिश्राप बन जाता है। परमाणु बम ठीक उसी प्रकार से काम करता है जिस पर्कार से एक आग का तीनका दूसरें तीनके को अपने में समेट कर स्वयं को और अधिक शक्ति शाली बना लेता है। जिस प्रकार से एक आग का कण हिमालय जैसे लकड़ी के ढेर को कुछ समय में ही उनको जला कर राख का ढेर बना देता है। ऐसे ही इस मानव शरीर में एक अग्नि का अणु है जो अपने सात कणों के रूप में सप्त ऋषि सात चक्रों पर पहरा देते है और वही पूरे शरीर से क्रिया कलापों को नियंत्रित करते है। जिनके देख रेख में शरीर के सात चक्रों की रीफाइनरी मसिन में अन्न को शुद्ध करके उससे विर्य बनाते है और इस विर्य से ही नयें

मानव की शरीर का निर्माण होता है। यह भी शरीर की सात धातुओं में सबसे प्रमुख धातु है। यह जो विर्य का कण है जिसे अंडाणु और शुक्राणु के रीप में जानते है। इन दोनों का सिंचन माँ के गर्भ में होता है। जिसका एक अस्तर तक विकास होता है फिर उनका पतन होने लगता है।

इसी प्रकार से इस विर्य से तेज उत्पन्न होता है जिसे आत्मा धारण करती है। यह आत्मा भी एक अग्नि ही है जो परमात्मा के साथ शरीर में विद्यमान रहती है। यह अग्नि सुक्ष्म से सुक्ष्मतर होती जाती है। जो परमात्मा रुपी प्रमुख अग्नि है उसके पास ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने का सामर्थ विद्यमान है और इस ब्रह्माण्ड को नषट करने का सामार्थ भी उसी परमात्मा में ही है। जिस प्रकार से परमाणुओं के जोड़ योग से मानव शरीर समेत ब्रह्माण्ड की निवार्ण करता है। ठीक इसी प्रकार से परमाणुओं का वियोग करके वह ब्रह्माण्ड का नामों निशान मिटा देता है। यह गुण मनुष्यों में भी उसकी योग्यता के आधार पर हस्तान्तरित हो जाता है। एक समय ऐसा भी होता है जब इस ब्रह्माण्ड की रक्षा और संहार मानव के द्वारा परमेश्वर कराता है। इसमें दो बातें है परमेंश्वर की भावना हमेशा कल्याण की होती है। संहार में भी वह कल्याण ही करता है। मानव के साथ ऐसा नहीं है इर्श्या वश भी संहार करने के लिये लोभ में आकर भी दूसरें के अस्तित्व को समाप्त करने के लिये मानव उतावला हो जाता है। जिस प्रकार से मानव शरीर का एक निश्चित समय है। इसमें एक सर्त भी है जब वह स्वयं के मन और इन्द्रियों के संयम को धारण करने में सामर्थ होता है। अर्थात जब वह अत्यधिक विर्यवान होता है तो वह अपने जीवन को नियंत्रित करता है और लम्बा जीवन जीता है। ऐसा नहीं होने पर मानव का जीवन अल्प होता है और अल्प काल में हर प्रकार का ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान को धारण नहीं कर सकता है इसलिये उसे कइ जन्म लेना पड़ता है। इस तरह से वह एक तरफ जन्म लेता है दूसरी तरफ वह मृत्यु में समाने लगता है। उसमें इस जगत में स्थित रहने के लिए जो सामर्थ चाहिए नहीं होता है। जिस प्रकार से तपते तावें पर पानी की कुछ बुदें थोड़े ही पल में वास्प बन जाती है और जब पानी की मात्रा अधिक होगी भले ही वह जलते तावें पर ही क्यो ना हो उसे समय मिल ही जाता है पर्याप्त मात्रा में इस भुमंडल पर रहने के लिये। जिस प्रकार से रावण का नाम आता है कि वह इस पृथिवी पर चार हजार सलों तक जिन्दा रहा। उसने चार चौकणी राज्इय किया था अर्थात चार हजार साल तक इसके पिछे मुल कारण था कि वह बहुत बड़ा विर्यवान और ब्रह्मचारी पुरष था। वह स्वयं एक सिद्ध पुरुष विश्व श्रवा का पुत्र और ऋषि पुलूस्त का पोता था। राम ग्यारह सौ साल तक जीन्दा था क्योंकि राम ने ग्यारह अश्वमेध यज्ञ किया था अपने जीवन में, पहले समय में कोई अपने सौ साल के जीवन में कोई एक बार ही अश्वमेध यज्ञ कर सकता था। राम के जीवन का मुल उद्देश्य केवल एक था कि वह रावण को मारना चाहते थे। महाभारत कालिन भी विर योद्धा तीन सौ से अधिक सालों तक जीन्दा रहते थे। महाभारत के रचना कार और वेदों के विभाजन कर्ता ऋषि वेद व्यास भी तीन सौ से अधिक जीन्दा थे। वह वेदों के जानकार थे वेदों में भी तीन सौ से चार सौ साल तक जीने की बात कही जा रही है।

इस ज्ञान की सहायता से ही अर्थात ज्ञान विज्ञान ब्रह्माज्ञान से ही दयुलोक अन्तरिक्षलोक पृथिवीलोक के अन्तर्गत सम्पूर्ण पदार्थ जल अग्नि औषधियाँ सोम वायु सब दिशाओं में रहने वाले सब पदार्थ सूर्य आदि सब देव हित कारक सुखकारक सुख वर्धक होते है। आरोग्य बढ़ाकर व्याधियों से होने वाले कष्टों को दूर करते है।

ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान के द्वारा ही तुम्हे मैं वृद्धा वस्था की पूर्ण आयु तक ले जाता हूं। इसी ज्ञान से तेरे पास से सभी रोग दूर भाग जाते है। यह चिकित्सा का कार्य जो जानते है वही इसे प्रविणता से निभा सकता है। बारम्बार चिकित्सा करते रहने से जो प्रारम्भ में साधारण चिकित्सक रहता है आगे चल कर-कर वहीं कुशल विशेषज्ञ चिकित्सक बन जाता है। ऐसा श्रेष्ट चिकित्सक अन्य चिकित्सको की सम्मती से उत्तम प्रकार की दूर्लभ चिकित्सा करने में सफल होता है।

तृणादि मनुष्य पर्यन्त श्रृष्टी की माता यह पृथ्वी है और पिता पर्जन्य मित्र, वरूण, चन्द्र, सूर्य यह पांच है। अर्थात पंच तत्व की सहायता से ही विर्य बनता है। इसमें अनन्त बल है इसके बलों का उचित उपयोग करने से ही मानव महामानव बन जाता है और इसके कारण ही मानव शरीर में आरोग्यता स्थिर रहती है। मनुष्य का जीवन दीर्घ होता है और उसके शरीर से सब दोष बाहर आजाते है। यह प्राकृतिक इलाज है इस औषधी का नाम ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान है। जल उनके लिए माँ बहन के समान हित कारक होता है। जो इसका उत्तम उपयोग करना जानते है। जल की नदियाँ बह रहीं है मानो वह दुध में शहद मिला रही है। जो जल सूर्य की क्रणों से शुद्ध बनता है। अथवा जिसकी पवित्रता स्वयं सूर्य शुद्ध करता है। वह जल हमारा आरोग्य सिद्ध करें जलो में अमृत है। जल के शुभ गुण से मानव बलवान बनता है। जिस प्रकार माँ का दुध उसके पुत्र के लिये सबसे बड़ी औषधि के समान है उसी प्रकार जल से हम सब को उसके अन्दर विद्यमान सुख वर्धक रस हमें प्राप्त होता है। यह सूर्य आदि देवताओं को शान्ती प्रदान करने वाला है। प्रभु ईश्वर सब जगत में विराजता है सबका सर्वोपरी शाशक वहीं है। इसलिए उसकी इच्छा ही सर्वदा सत्य सिद्ध होती है। अर्थात उसकी आज्ञा के विपरीत कोई भी नहीं जा सकता जो जाने का प्रयश करता है उसके वह अपने दण्ड से नियन्त्रित करता है। तथा ज्ञान के जानने वाला मैं ज्ञान विज्ञान

ब्रह्मज्ञान की सहायता से तुम्हे उस परमेश्वर के क्रोध से छुड़ाता हूं। जिस प्रकार मन वेग से किसी विषय में गिरता है जिस प्रकार वायु और पक्षी वेग से आकाश में चलते है। उसी प्रकार अ नाम की चेतना का हृदय ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान से युक्त हो। वायु और बादलों को चिर कर के उसके आवरण से प्रथम बाहर निकला तेज्स्वी सूर्य वारिष और दहाड़ता हुआ मेघ गर्जना के साथ आ रहा है वह अपनी सिधी गती से दोषों और रोगों को दूर करता है। वह हमारी शरीर की निरोगता को बढ़ाता हैऔर हमे सुख को देता है। जिस प्रकार नदियाँ मिल कर बहती है, वायु मिल कर बहते है, पक्षी मिल कर उड़ते है। उसी प्रकार दिव्य जन भी मेरे ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान रूपी यज्ञ से मिल कर सम्लित हो क्योकि मैं संगटन के बढ़ाने वालों के अर्पण से ही यह संगठन का महा यज्ञ कर रहा हूं। सिधे मेरे इस ज्ञान विज्ञान ब्रह्मज्ञान संघटन के महा यज्ञ में आवो और हे संगठन के साधक वक्ता लोगों। तुम अपने उत्तम संगठन बढ़ाने वाले व्यक्तृत्व से इस संगठन महा यज्ञ को फैला दो। जो हम सब में पशु भाव हो वह यहाँ इस-इस ज्ञान यज्ञ में आवे और हम सब में धन्यता का भाव चिर काल तक निवास करे। जो नदियों के अक्षय आश्रय श्रोत इस संगठन महा यज्ञ में बह रहे है। उन सब श्रोतो से हम अपना धन संगठन द्वारा बढ़ावे।

सिर पर अथवा शरीर पर जो कुलक्षण हो उनको दूर करना चाहिए तथा अन्त करण में कंजुसी आदि जो दूर्गुण है उनको भी दूर करना चाहिए और जो सुलक्षण है उनका अपने तथा संतानो के पास स्थित करना अथवा बढ़ाना चाहिये। तुम्हारी आत्मा, मन और शरीर के वस्त्रों दृष्टी में जो बुरे निकृष्ट भाव जो कुलक्षण हो जो कुछ दूर्गुण हो उनको हम वचन से हटाते है। परमेश्वर तुम्हे उत्तम और शुभ लक्षणों से हमेशा युक्त करें।

कोई भी हमारा मित्र या शत्रु हमारी जाती वाला या पर जाती वाला बडा या छोटा कोई भी क्यों नाहो? यदि वह हमे दाश बनाने का प्रयाश करता है, या हमारा नाश करने की चेष्टा करता है तो उसका नाश शस्त्रों से करना योग्य है। जो प्रकट या छुपा हुआ हमारा शत्रु है और वह हमरा नाश करने चाहता है, या हमें बुरे ओर कड़वे शब्द बोलता है। सब सज्जन उस दुष्ट वृत्ती के मनुष्य को समाज से दूर करें। मेरा आन्तरिक कवच मेरा सत्य ज्ञान ही है अर्थात ब्रह्मज्ञान ही है।